['प्रियदर्शी अशोक' का अनुक्रमिक उपन्यास]

लेखक

धूमकेतु

अनुवादक

श्यामू संन्यासी

वोरा एण्ड कंपनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड

३, राउंड बिल्डिग, कालबादेवी रोड, बम्बई–२

प्रकाशकीय

धूमकेतु की समकालीन उपन्यास-माला के अन्तर्गत यह उपन्यास 'प्रियदर्शी अशोक' के बाद की कृति है। महान् अशोक के पश्चात् भारतीय राजनीति मे पुनः ब्राह्मण-धर्म का अभ्युदय होता है। बौद्धधर्म कुछ तो अपनी ही आन्तरिक दुर्बलता के कारण और बहुत कुछ निकम्मे राजाओ के कारण जन-साधारण मे अप्रिय हो चला था। अहिंसा की वास्तविक शक्ति और उसका मूल स्वरूप नष्ट होकर केवल आडम्बर रह गया। देश मे विदेशी आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करने की सामर्थ्य ही नही रह गई। ऐसे समय महाबलाधिकृत पुष्यमित्र ने तत्कालीन मगधपति राजा बृहद्रथ को पदच्युत कर शासनाधिकार ग्रहण किया। बृहद्रथ पदच्युत ही नहीं किया गया, भरी सभा मे उसका वध भी हुआ। पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ भी किया था। नन्द राजाओं के समय मे चले आते कई अनुचित कार्यो को उसने उठा दिया। देश में आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न की। इसी पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र था, जिस पर महाकवि कालिदास ने अपना सुप्रसिद्ध नाटक 'मालविकाग्निमित्र' लिखा। पुष्यमित्र का पौत्र वसुमित्र था, जो भारतीय इतिहास मे एक प्रसिद्ध सेनानी और राजा हुआ।

जिस समय का इस उपन्यास मे अंकन हुआ वह बड़ी मार-धाड़ और अराजकता का युग था। मगध का राज्य दुर्बल हो गया था। उसके सामन्त और योद्धा सिर उठाने लगे थे। यूनानी और अन्य यवन भारत पर अधिकार करने के लिए सभी सम्भव-असम्भव प्रयत्न कर रहे थे। चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित एक केन्द्रीय भारत छिन्न-भिन्न हो गया था। ऐसे समय अकेले पुष्यमित्र ने पुनः भारत को एक केन्द्र के अन्तर्गत संगठित कर सभी-देशी और विदेशी आक्रान्ताओं को पराभूत किया। यही कथा इस उपन्यास में कही गई है।

सूची

प्रवेश

महाराज अशोक की मृत्यु के पच्चीस वर्ष बाद ही मगध के महान् साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। कई प्रदेशों के शासकों ने अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये।

प्रारम्भ हुआ भारत के पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश से। यह वायव्य दिशा भारत के लिए सदैव भय का कारण रही है। प्रायः सभी विदेशी आक्रमण-कारियों ने इसी ओर से भारत पर हमले किये। रानी सेमिरामिस, अलक्षेन्द्र, शक, हूण, तुर्क—सभी इसी दिशा से आये।

इतिहास का पुनरावर्तन प्रकृति का अटल नियम है। काल सब को आत्म-सात कर लेता है, परन्तु काल को कोई आत्मसात नहीं कर सकता। इतिहास का पुनरावर्तन महाकाल की एक अगम्य लीला है। यह पुनरावर्तन पुकार-पुकारकर कहता है कि भारत को अपनी वायव्य दिशा की ओर से सतत सजग रहना होगा।

काश्मीर में जालौक ने अपना स्वतन्त्र और शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया था। गान्धार में सुभागसेन का राज्य था। यूनानी इतिहासकार उसे 'सोफागसेनस' कहकर पुकारते थे। सेल्युकस नाइकेटर के एक वंशज एंटि-योकस ने ही सुभागसेन के समय भारत पर आक्रमण किया था और दंड-स्वरूप डेढ़ सौ हाथी लेकर लौटा था। एंटियोकस की महत्त्वाकांक्षा तो भारत का चक्रवर्ती सम्राट् बनने की थी, लेकिन उसी के अपने राज्य के एक प्रदेश, बल्ख में विद्रोह हो गया, इसलिए उसे लौटना पड़ा। वह तो लौट गया, लेकिन भारतवर्ष पर यूनानी आक्रमणों का सिलसिला फिर से शुरू हो गया।

उसके कुछ ही वर्ष बाद दिमित्रियस ने भारत पर प्रबल आक्रमण किया और बड़ी दूर तक देश के अन्दर घुस आया। 'गर्ग-संहिता' के अनुसार उसने पांचाल को रौंदा, साकेत और मथुरा पर आक्रमण किये और उसकी सेना ठेठ 'कुसुमध्वज' पाटलिपुत्र तक जा पहुँची। महाभाष्यकार पतंजलि ने उसका उल्लेख 'अरुणद्यवनः साकेतम्'—इन शब्दों में किया है। यदि उसके अपने ही घर में विद्रोह न हो जाता और 'उक्रेडाइटिस'—युक्रेदाइतिस से युद्ध करने को विवश न होना पड़ता तो उसने पाटलिपुत्र को जीत ही लिया था।

यह दिमित्रियस गज-चर्म का राजमुकुट पहनता था और सिन्धु-सौवीर प्रदेश में उसने 'दातामित्रि' नाम का एक नगर भी बसाया था। दिमित्रियस के कुछ सिक्के भी मिले हैं और यह अनुमान किया जाता है कि वह कभी शैव धर्मावलम्बी रहा होगा।

उसके आक्रमण के समय मगध के सिंहासन पर शतधनुष नाम का राजा राज्य करता था। महाराज अशोक के बाद वह छठवाँ राजा था। अशोक के बाद अल्प समय में ही कई राजा हुए। किसी-किसी का शासन-काल तो एक वर्ष से भी कम रहा। शतधनुष के पूर्ववर्ती शालिशुक ने राज्य तो केवल एक ही वर्ष किया, परन्तु मगध-साम्राज्य को इतनी हानि पहुँचाई, जितनी किसी राजा ने किसी राज्य को सौ वर्षों में भी नहीं पहुँचाई होगी। उसके बाद मगध की निरन्तर अवनति होती गई, उन्नति की कोई भी आशा नहीं रह गई। स्थिति यहाँ तक बिगड़ी कि किसी विप्लव अथवा सैनिक-क्रान्ति के ही द्वारा मगध को बचाया जा सकता था।

शतधनुष के बाद मगध के सिंहासन पर बृहद्रथ बैठा। उसका एक नाम बृहदश्व भी था। वह शतधनुष का भाई था। उसी के समय मगध में महान् राज्यक्रान्ति हुई, जिसके परिणाम-स्वरूप मगध यवनों (यूनानियों) के हाथ में जाने से बच गया।

सेनापति पुष्यमित्र उस राज्यक्रान्ति का प्रणेता और जनक था। वह भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न ब्राह्मण था। परशुराम, द्रोण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य की भाँति ब्राह्मण होते हुए भी क्षात्रधर्म का पालन करनेवाला और मगध का ब्राह्मण सेनापति था। यदि उसने उस संकट के समय आगे आकर

मगध की रक्षा न की होती तो भारतवर्ष का इतिहास ही बदल जाता।

बहुत सम्भव है कि यूनानियों ने पाटलिपुत्र को जीत लिया होता और भारत में यूनानी साम्राज्य की स्थापना का सिकन्दर का स्वप्न पूर्ण हो जाता लेकिन ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने प्राणों की बाजी लगाकर यूनानी आक्रमण को विफल कर दिया।

इसी पुष्यमित्र के जेठे बेटे अग्निमित्र पर महाकवि कालिदास ने अपना सुप्रसिद्ध नाटक 'मालविकाग्निमित्र' लिखा।

यूनानियों को पांचाल प्रदेश में पराजित करनेवाला इतिहास-प्रसिद्ध वसु-मित्र इसी पुष्यमित्र का पोता और अग्निमित्र का बेटा था। जिन दिनों यूना-नियों से उसका युद्ध हुआ पुष्यमित्र अश्वमेध-यज्ञ कर रहा था और अग्निमित्र विदिशा में था। विदिशा उन दिनों पूर्व अवन्ती की राजधानी थी। उज्जयिनी और विदिशा दोनो ही उस समय के प्रसिद्ध नगर थे। महाकवि कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्र' में इन दोनो ही नगरों की प्रसिद्धि का उल्लेख किया है।

पाटलिपुत्र का अन्तिम राजा बृहद्रथ अपने पूर्ववर्ती शालिशुक जितना ही मूर्ख और 'धर्मवादी अधार्मिक' था। वह धर्म और धार्मिकता की डींगे तो बहुत हाँकता, परन्तु कर्म के नाम पर शून्य था। ढोंग करता था भगवान् तथागत के शान्ति-धर्म का, परन्तु वैयक्तिक और व्यावहारिक जीवन में बड़ा भीरु और इसी लिए कलह-प्रेमी था। धर्म के बाहरी आडम्बरों का पूरी पाबन्दी से पालन करता, लेकिन वास्तव में हद दर्जे का विलासी था। यदि उसने अशोक की भाँति 'धर्म-विजय', अहिंसा, धार्मिकता और शान्ति का ढोंग न किया होता तो उसके दुर्गुण इतने भयानक और अनिष्टकारी कदापि न होते। परन्तु प्रकाश के बाद अन्धकार तो इतिहास के क्रम की अनिवार्य परिणति है; प्रत्येक महापुरुष के बाद उनका अनुकरण करनेवाले बहुरुपिये, उनके नाम का ढोल बजानेवाले दाम्भिक होते ही हैं। ऐसे लोग महापुरुषों के नाम और रीति-भाँति की ओट में अपना उल्लू सीधा किया करते हैं और देश तथा जाति को विनाश के महागर्त में ढकेल देते हैं।

महान् अशोक के बाद उनके सभी अनुयायियों ने 'धर्म-विजय' की बातें

कीं, लेकिन वे कोरी बातें ही रहीं। उनमें से एक भी 'धर्म-विजय' न कर सका और न अपनी प्रजा की रक्षा ही कर पाया, जो राजा का परम धर्म है। सब-के-सब यूनानी आक्रमणकारियों के आगे घुटने टेकते गये। ये सब-के-सब महाभारत में वर्णित 'अरक्षितारं राजानम्'—प्रजा की रक्षा करने मे असमर्थ अथवा अयोग्य राजा थे, जिन्हे देश से निर्वासित किये जानेवाले छह प्रकार के पुरुषों में गिना गया है।

मगध का अन्तिम राजा बृहद्रथ भी ऐसा ही 'अरक्षितारं राजानम्' था। देश पर यूनानी आक्रमण का भय छाया हुआ था, प्रजा चिन्तित और व्याकुल थी। उस समय देश की स्थिति का पता 'गर्ग-संहिता' के निम्न श्लोक से चलता है :

'ततस्तु मगधेकृतस्ने गंगासन्ने सुदारुणम्।
रक्तपातं महायुद्धं भविष्यन्ति तु पश्चिमम् ॥'

गंगा-यमुना के पावन प्रदेश में महायुद्ध और दारुण रक्तपात की आशंका से सभी के मन आकुल-व्याकुल हो रहे थे; लेकिन प्रजा को आश्वासन देनेवाला, धीरज बँधानेवाला कोई नहीं था। मिथ्याचारी दम्भी राजा 'धर्म-विजय' की डींगें हाँक रहा था और सारी प्रजा एक मन से चाहती थी कि उस ढोंगी राजा का मुँह काला हो और देश तथा प्रजा की रक्षा करनेवाला कोई शक्तिशाली पुरुष आगे आये।

उस समय समस्त देश में ऐसा एक ही पुरुष था—सेनापति पुष्यमित्र। महाबलाधिकृत फल्गुदेव का वह योग्य पुत्र था। लेकिन वह राज्यतंत्र का प्रबल समर्थक और राजा का परम भक्त था। वह मगधपति बृहद्रथ के गौरव को स्थापित करने के लिए भगीरथ प्रयत्न कर रहा था। वह मगध के महान् साम्राज्य को पुनः स्थापित करना चाहता था। उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति इस कार्य में लगा दी थी; लेकिन जैसे बालू से तेल नहीं निकलता, पानी बिलोने से मक्खन हाथ नहीं आता, उसी प्रकार उसके समस्त प्रयत्न निष्फल हो रहे थे। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा सोच रहा था कि अब आगे क्या करे, तभी सहसा उसके वृद्ध पिता महाबलाधिकृत फल्गुदेव का परवाना आ पहुँचा। वृद्ध महाबलाधिकृत अपनी मृत्यु-शय्या पर पड़े-पड़े अपने पुत्र के असमंजस और

दुविधा को चिन्तापूर्वक देख रहे थे। वह चाहते थे कि उनकी मृत्यु से पहले पुष्यमित्र किसी निर्णय पर पहुँच जाये। यदि पुष्यमित्र किसी निर्णय पर नहीं पहुँचता तो देश की दशा तूफान में बिन नाविक की टूटी पतवार की नौका-जैसी हो जाती।

जिन दिनों पाटलिपुत्र का वातावरण ऐसा भयसंकुल और अनिश्चयात्मक था उन्हीं दिनों विदिशा नगर के समीपस्थ गोनाई और भरहुत का एक प्रवासी पाटलिपुत्र आया। उस यात्री का नाम था पतंजलि। यह पतंजलि 'पातंजलयोगदर्शन' के रचयिता नहीं, पाणिनी के भाष्यकार थे। यह पतंजलि शब्द-शास्त्र के महान् ज्ञाता और उच्चकोटि के विद्वान तथा वैयाकरण थे। तक्षशिला में महाबलाधिकृत फल्गुदेव के वे सहपाठी रह चुके थे। जब यह पता चला कि फल्गुदेव रुग्ण हैं और मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं तो मुनि पतंजलि उनसे मिलने के लिए अपने आश्रम से चल पड़े।

वह पाटलिपुत्र पहुँचते हैं और यह उपन्यास प्रारम्भ होता है।

१ : महाबलाधिकृत फल्गुदेव

महाबलाधिकृत फल्गुदेव असाध्य रोग से ग्रस्त, अपनी मृत्यु-शय्या पर पड़े, अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे थे। भिषग्वर सर्वदेव उन्हें बचाने के लिए दौड़-धूप कर रहा था। कभी वह रुग्णालय से बाहर आता, अनुचरों को कोई महत्त्व-पूर्ण सूचना देता और फिर उलटे पाँवों अन्दर दौड़ जाता।

महाबलाधिकृत के भवन के चारों ओर लोक-समुदाय जमा होता जा रहा था। प्रतिक्षण भीड़ बढ़ती जा रही थी। सभी चिन्तित और शोकाकुल थे और महाबलाधिकृत के स्वास्थ्य-समाचारों के लिए उत्कंठित हो रहे थे।

फल्गुदेव अपने समय के बड़े ही लोकप्रिय सेनानी थे। घोर अव्यवस्था और भयंकर अराजकता के समय उन्होंने मगध को बचाया और किसी सीमा तक व्यवस्था स्थापित की थी। आज पाटलिपुत्र का अस्तित्व और उसकी स्वतन्त्रता भी उन्हीं की आभारी थी। ऐसे शूरवीर और सर्वलोकप्रिय बलाधिकृत की आसन्न मृत्यु सभी के लिए अपार चिन्ता और दुस्सह भय का कारण हो रही थी।

शोकाकुल भीड़ के नेत्रों के समक्ष आज से दो दशाब्दियों पहले का दृश्य नाच रहा था। मूर्ख शालिशुक मगध के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ ही था और उसने अपनी वज्रमूर्खताओं से मगध-साम्राज्य के अस्तित्व को संकट मे डाल दिया था। जन-समुदाय पाटलिपुत्र नगर के ही अस्तित्व और स्थिति के सम्बन्ध में आशंकित हो उठे थे।

अपने एक ही वर्ष के अल्प शासन-काल में उस मूर्ख ने महाराज अशोक की 'धर्म-विजय' की नीति का अन्धानुकरण करते हुए बड़े ही विचित्र और

अव्यावहारिक आदेश प्रचारित किये। उसने सेनानायकों को पीत-वस्त्रधारी भिक्खु बनने के लिए प्रेरित किया; उसने सभी प्रकार के अपराधियों को भिक्खु बन जाने पर क्षमा कर देने का आश्वासन दिया।

अपने ही सगे बड़े भाई की नृशंस हत्या के जघन्य कार्य के द्वारा वह सिंहासन का अधिकारी बना था और अब जन-सामान्य उसके उस अपराध को भूल जाये इसलिए धर्म, धार्मिकता और धर्माचरण का आडम्बर किये हुए था।

इधर तो वह यों अपनी धार्मिकता का ढिंढोरा पीट रहा था और उधर महान् मगध-साम्राज्य पर यूनानियों के दुर्धर्ष आक्रमण आरम्भ हो गये थे। विदेशी आक्रान्ता कान्यकुब्ज तक धावे मारने लगे थे। देश-व्यापी अराजकता से उत्साहित होकर काश्मीर के प्रदेशपति जालौक ने कान्यकुब्ज तक का प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया था और पाटलिपुत्र का स्वतन्त्र अस्तित्व संकट में पड़ गया था। उस समय महाबलाधिकृत फल्गुदेव ने ही आगे बढ़कर मगध और पाटलिपुत्र की रक्षा की थी।

उन्होंने जालौक को समझाया कि उसका कार्य मगध के प्रदेशों को हड़पना नहीं, यूनानी आक्रान्ताओं से भारत की एकता और अखंडता की रक्षा करना है। उन्होंने जालौक को उद्‌बोधित किया कि गृह-कलह से मगध छिन्न-भिन्न हो जायेगा और शत्रु अधिपति बन बैठेंगे। उनके समझाने का ही प्रताप था कि जालौक ने अपनी सारी शक्ति यूनानी आक्रमणकारियों के विरुद्ध लगा दी और उस समय पाटलिपुत्र की रक्षा हो सकी।

परन्तु संकट का स्थायी रूप से निवारण न हुआ। विदेशी आक्रमण का भय पाटलिपुत्र पर निरन्तर मँडराता रहा और जन-साधारण के कलेजे मुँह को आते रहे। महाराज अशोक के बाद जितने भी राजा मगध के सिंहासन पर आये वे धर्म को समझे बिना धर्म का जो ढोल पीटते और अन्धानुकरण करते रहे, उसी का यह अवश्यम्भावी परिणाम था।

महाबलाधिकृत फल्गुदेव अपनी मृत्यु-शय्या पर पड़े इन्हीं सब विचारों से व्यथित हो रहे थे। किसी भी तरह उनके मन को शान्ति नहीं मिल रही थी। जिस नगर की महानता और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उन्होंने अपना सारा [illegible] खपा दिया, आज उसी नगर का भविष्य अन्धकारमय था। महान्

मगध-साम्राज्य उन्हें अपनी आँखों के आगे विनष्ट होता दिखाई दे रहा था; और इसी की वेदना के मारे उनके प्राण छटपटा रहे थे।

समीप ही, उनकी शय्या से कुछ हटकर, उनका पुत्र बलाधिकृत पुष्यमित्र बैठा था। वह अपने पिता के मनोमन्थन को चिन्तापूर्वक देख रहा था। अन्त समय में पिता को कुछ सान्त्वना मिले, इस उद्देश्य से उसने अपने पिता के बाल्य-बन्धु और सहपाठी, शास्त्रों के ज्ञाता मुनिवर्य पतंजलि को विदिशा से बुला भेजा था।

पतंजलि और फल्गुदेव तक्षशिला में साथ-साथ पढ़े और बड़े हुए थे। उन्होंने शस्त्रों और शास्त्रों का ज्ञान साथ-ही-साथ अर्जित किया था। देश के अन्धकारपूर्ण वर्तमान और भविष्य पर साथ-ही-साथ चिन्तित और निराश होते रहे थे। अध्ययन समाप्त करने के बाद पतंजलि विदिशा चले गये और फल्गुदेव ने पाटलिपुत्र आकर सेना की कमान सँभाली।

मगध के महाबलाधिकृत के नाते फल्गुदेव ने घनघोर अव्यवस्था और अराजकता के बीच व्यवस्था स्थापित करने का भगीरथ प्रयत्न किया, लेकिन केवल आंशिक सफलता ही उनके हाथ लगी, वह कभी पूर्ण रूपेण अपने प्रयत्नों में सफल न हो सके। कारण यह था कि अशोक के बाद जितने भी राजा मगध के सिंहासन पर आये वे निरे दांभिक और धर्मनीति के अन्धानुयायी थे। उनके सारे प्रयत्न पानी बिलोकर उससे मक्खन निकालने की भाँति व्यर्थ थे। अशोक की महनीयता, संयम, विदग्धता और जागरूकता किसी में नाम को भी न थी। उनकी धर्म, अहिंसा और शान्ति की सारी बातें केवल तोता-रटन्त थीं। उनके व्यक्तिगत जीवन बिन पतवार की नौका के समान थे। महाराज सम्प्रति ने संन्यास ले लिया था और शालिशुक ने सिंहासन पर अधिकार करने के साथ ही मगध को रसातल में पहुँचा दिया था।

क्षात्रधर्म का तेज किसी में न रहा। आततायी को दंड देने और प्रजा की रक्षा करने का राजधर्म सर्वथा विलुप्त हो गया। न किसी को शस्त्र में श्रद्धा रही और न शास्त्र में। मैदानी वीरता का विलोप होने के साथ ही डींगें मारनेवाले बातूनी वीरों की बन आई। राजा उठते-बैठते शान्ति और अहिंसा का जाप करने लगे तो उनके मंत्री और सेनानायक पल-पल पर अहिंसा

टेर लगाने लगे। स्थिति यहाँ तक बिगड़ी कि यूनानी आक्रमणकारी गाँवों और नगरों को जलाते, निरीह प्रजा को तलवार के घाट उतारते पाटलिपुत्र तक टक्करें मारने लगे और राजा-सचिव-सेनानियों की मूर्ख-मंडली शान्ति और अहिंसा के अभेद्य दुर्ग से उनके प्रतिरोध के मनसूबे करती रही। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जिस स्वप्न को महान् सिकन्दर भी मूर्त न कर सका वह अनायास ही चरितार्थ हो जायेगा।

देश की यह दशा थी और उद्धारक कोई न था। लोग किसी अशोक अथवा किसी चन्द्रगुप्त की खोज में थे, परन्तु कोई ढूँढ़े नहीं मिल रहा था।

फल्गुदेव को यह चिन्ता जीवन-भर सताती रही और अब अन्त समय में उसने बड़ा ही उग्र रूप धारण कर लिया था। तक्षशिला का वह योग्य विद्यार्थी, चाणक्य और चन्द्रगुप्त की महान् परम्परा का वह कट्टर समर्थक इस समय देश के भविष्य की चिन्ता से व्यथित मृत्यु-शय्या पर पड़ा छटपटा रहा था। वह सोच रहा था कि क्या भारतवर्ष का उन्नत मस्तक सदा के लिए भूलुंठित हो जायेगा? क्या यूनानी आक्रमणकारी पवित्र जन्मभूमि को रौंद ही डालेंगे? क्या आर्य, आर्यत्व और आर्यावर्त का नामशेष ही हो जायेगा?

वह व्यग्र होकर अपने चारों ओर देख रहा था। उसकी आँखों में अपार वेदना और अकथनीय निराशा थी। इतने में भिषग्वर सर्वदेव एक पात्र में औषधि लेकर वहाँ आया। उसने कहा—महाबलाधिकृत, इसे पी लीजिए; मन शान्त हो जायेगा और गाढ़ी नींद आयेगी।

फल्गुदेव ने अपने क्षीण स्वर में पूछा—सर्वदेव, क्या मुनि पतंजलि आ गये? उनके कोई समाचार हैं?

पुष्यमित्र ने आगे आकर कहा—पिताजी, मुनिवर्य आते ही होंगे। शीघ्रातिशीघ्र आ पहुँचें, ऐसा ही सन्देश भेजा था।

'तो ठीक है। सर्वदेव, मुझे अभी घड़ी-दो घड़ी जागृत ही रहने दो। मन की कुछ बातें कह लेना चाहता हूँ; पता नहीं, कब विस्मृति के गर्त में जा गिरूँ! पुष्यमित्र, मुझे तो कहीं एक भी कौटिल्य आज दिखाई नहीं देता। तुझे दीख रहा है?'

पुष्यमित्र ने अस्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया।

'तो अपना उत्तरदायित्व हमें निभाना होगा। ब्राह्मण होकर भी हमने क्षात्रधर्म को स्वीकार किया है; यदि हमने प्रजा की रक्षा नहीं की, तो रौरव नर्क में भी ठौर नहीं मिलेगी, बेटा!'

'समझता हूँ, पिताजी, आपकी मनोवेदना को मैं समझता हूँ!'

'तू ही समझता होता तो फिर रोना काहे का था! यह इस प्रकार कितने दिन चलेगा? कोई आक्रान्ता इस छिन्न-भिन्न साम्राज्य पर अधिकार कर ले इसके पहले कुछ हो सके तो करना होगा....'

तभी एक यवनी अन्दर आती दिखाई दी। फल्गुदेव ने प्रश्नसूचक नेत्रों से उसकी ओर देखा।

यवनी ने प्रणामकर धीमे स्वर में कहा—महाबलाधिकृत देव की जय हो! द्वारपाल ने पतंजलि नाम के किसी मुनि के आगमन की सूचना दी है।

'उन्हें तत्काल यहाँ लाया जाये....' फल्गुदेव शय्या पर आधे उठ आये।

सर्वदेव ने दौड़कर उन्हें सँभालते और शान्त करते हुए कहा—देव, इस समय आपका सर्वथा शान्त और निरुद्वेग रहना नितान्त आवश्यक है। प्रत्येक गति और प्रत्येक पल आपके जीवन रथ के चक्र हैं।

फल्गुदेव उसी समय शान्तिपूर्वक लेट गये। लेकिन उनके नेत्र द्वार की ओर ही लगे रहे।

पुष्यमित्र पतंजलि मुनि की अगवानी के लिए वहाँ से बाहर जा चुका था।

फल्गुदेव ने भिषग्वर सर्वदेव को संकेत से अपने समीप बुलाकर स्थिर स्वर में पूछा—मैं कितनी देर और जीवित रहूँगा?

सर्वदेव ने सिर झुकाकर निवेदन किया—देव, मृत्यु अनिवार्य है, परन्तु जीवन महान् है। और जब तक देव की मनोवांछा पूर्ण नहीं हो जाती, देव के निर्भय रहने का मेरा वचन विद्यमान है। देव निश्चिन्त रहें और इस औषधि को ग्रहण करने की कृपा करें।

फल्गुदेव ने औषधि का पान करने के उपरान्त मन्द स्वर में कहा—मेरी इच्छा है कि थोड़े समय हम तीनों को अकेला रहने दिया जाये।

उसी समय भिषग्वर सर्वदेव वहाँ से चला गया और द्वार पर खड़ी यवनी भी हट गई।

अब अलिन्द में अकेले फल्गुदेव रह गये।

थोड़ी देर बाद महामुनि पतंजलि वहाँ आते दिखाई दिये। बलाधिकृत पुष्यमित्र उनके पीछे-पीछे चला आ रहा था।

२ : महामुनि पतंजलि

महामुनि पतंजलि के वहाँ आते ही महाबलाधिकृत फल्गुदेव को अपना विद्यार्थी जीवन याद हो आया और उनके नेत्र नयी ज्योति से जगमगा उठे।

मुनि पतंजलि गौरवर्ण के तेजस्वी, उत्तुंगकाय, शक्तिशाली और भव्य पुरुष थे। वह इस युग के नहीं प्रतीत होते थे। उनकी शिखा भगवान् कौटिल्य की ही भाँति पीठ पर खुली हुई लहरा रही थी। तेजोपूर्ण मुखमंडल बड़ा ही प्रतापी लग रहा था। प्रशस्त भाल विद्या और ज्ञान की गरिमा से आलोकित था। गरुड़-जैसी नुकीली नासिका और पतले ओंठ उनके दृढ़ मनोबल के परिचायक थे। शब्द-शास्त्र के वह प्रकांड पंडित थे। एक-एक शब्द की व्युत्पत्ति, ध्वनि, अर्थ और भावार्थ की उन्होंने पूरी-पूरी शोध-खोज की थी। उनके निकट प्रत्येक शब्द सजीव, देहधारी था। शब्दों का उच्चारण इस प्रकार करते थे कि किसी भी शब्द का व्यक्तित्व, तेज, ध्वनि और अर्थ खंडित नहीं होने पाता था। शब्दों का शुद्ध और ध्वन्यात्मक उच्चारण उनकी बात को एक अद्भुत अर्थ-सम्पदा से मंडित कर देता था। उनके उच्चरित शब्दो के आगे दूसरों के बोले हुए शब्द अनगढ़ और ग्राम्य प्रतीत होते थे। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि उनके मुख में प्रत्येक शब्द अपना विशिष्ट मांसल रूप ग्रहण कर लेता था। शब्दों का वह रूप, वह व्यक्तित्व और वह ध्वनि दूसरे किसी के पास नहीं थी।

वह फल्गुदेव की शय्या के समीप आकर खड़े हो गये और प्रेमपूर्वक उनके सिर पर हाथ फेरने लगे। फल्गुदेव के नेत्रों में व्याप्त गहन मनोव्यथा को भी उन्होंने देखा और अनुभव किया।

'हमारे....स्वप्न....महामुनि....' फल्गुदेव केवल इतना ही कह पाये।

महामुनि पतंजलि ने फल्गुदेव का हाथ अपने हाथ में ले लिया और अपने विश्वासोत्पादक, दृढ़, गूँज-भरे, शान्त और स्निग्ध स्वर मे बोले—

फल्गुदेव ! अपने स्वप्नों को स्वयं सार्थक करने की अभिलाषा अनार्यता ही कही जायेगी। हमारे स्वप्न हमारी सन्तति चरितार्थ करती है—आर्यों की परम्परा तो यही है। हमारे स्वप्नों को मूर्त रूप देनेवाला यह रहा....

महामुनि ने पुष्यमित्र के माथे पर वात्सल्यपूर्वक हाथ रखते हुए आगे कहा—यह पुष्यमित्र बलाधिकृत। अब सारा भार इसी पर है—अकेले इस नगर का ही नहीं, केवल मगध का ही नहीं, समस्त भारतवर्ष और भारत के समग्र प्रजाजनों का भी। इतना तो स्पष्ट ही है कि यदि भारतवर्ष को जीवित रहना है तो यहाँ एक केन्द्रीभूत, शक्तिशाली, व्यवस्थित शासन, एक महान् मन्त्रि-परिषद् और एक समर्थ शासक होना चाहिए। इन कार्यों को अब यह सम्पन्न करेगा। फल्गुदेव, सच्चे स्वप्न कभी मिथ्या नहीं होते। स्वप्न अन्ततः हैं क्या? अनुच्चरित तेजोपूर्ण शब्द ही न ! और शब्दों का आत्मा अमर होता है, अनश्वर होता है। इसलिए, मित्र, शान्त हो जाओ, निश्चिन्त हो जाओ, स्वास्थ्य-लाभ करो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि बलाधिकृत पुष्यमित्र तुम्हारे स्वप्नों को पूरा करेगा। मैं इस बात को इसकी आँखों में देख रहा हूँ। आज जो वस्तु केवल मुझे ही दिखाई देती है, एक दिन वह सहस्रों को दीखेगी....

'नहीं, मुनिवर, इसमें वह तेजस्विता नहीं जो भगवान् कौटिल्य में थी। यह तो अभी खोज ही रहा है।'

'खोज रहा है? क्या खोज रहा है? किसे खोज रहा है?'

'मगध की राजभक्ति इसे प्रेरित कर रही है....'

'काहे के लिए प्रेरित कर रही है? क्यों बलाधिकृत, क्या खोज रहे हो?'

पुष्यमित्र ने एक क्षण पीछे की ओर मुड़कर देखा—वहाँ कोई न था। तब वह आगे बढ़ आया और अत्यन्त मन्द स्वर में, मानो स्वगत बोल रहा हो, कहा—भगवन्, द्रोणात्मज अश्वत्थामा ने विश्वासघात किया। परिणाम क्या हुआ? वह मृत्यु के पीछे भागता फिरा, मृत्यु की प्रतिपल कामना करता रहा, लेकिन उसे मृत्यु-लाभ न हुआ और न कभी होगा। हम लोग तीन-तीन पीढ़ियों से जिस वंश की सेवा करते आये हैं उसका एक सद्यःजात शिशु भी मिल जाये तो उसे सिंहासनारूढ़ करके उसके नाम पर सैन्य-संचालन करना ही मेरा परम कर्त्तव्य है। उसके एक विनम्र बलाधिकृत के रूप में यूनानी

आक्रान्ताओं को मैं मार भगाऊँगा; लेकिन उसके साथ विश्वासघात ? नहीं, नहीं; यह न भूतो न भविष्यति ! इसी लिए मगध के सिंहासन पर अधिकार करने की बात मैं कभी सोच नहीं पाता ! मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ गान्धार के सुभागसेन की। मैंने सुना है कि वह महाराज अशोक का वंशज है। काश्मीर के अधिपति जालौक के पुत्र दामोदर की भी मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। वह भी मगध का वंशज है। इन दोनों मे से किसी का भी राज्याभिषेक किया जा सके तो देश का उद्धार हो जाये।

'तो क्या यह विश्वासघात न होगा ? तुम सुभागसेन पर भरोसा किये बैठे हो ? दामोदर की प्रतीक्षा कर रहे हो ? कर चुके वे यवनो का प्रतिरोध !'

'सुभागसेन वही तो नहीं जिसने यवनो से प्राण बचाने के लिए डेढ़ सौ हाथी देकर समझौता किया ? सुना है कि उसने हाथियों के साथ धन भी दिया। इतना धन दिया कि दात्तामित्र को लौटते समय सब-का-सब अपने साथ ले जाना भारी पड़ गया। अन्ततः अपने सेनापति को सौंपकर उसे घर की लगी को बुझाने के लिए भागना पड़ा। सुभागसेन वही न, या कोई और !'

'जी, वही....परन्तु वह मौर्य है....'

'हाँ, होगा। तुम उसे मौर्य कहते हो, मैं तो अनार्य ही कहूँगा। जो झुकता है वह अनार्य; जो धरती को बेचता है वह अनार्य। सुभागसेन भी ऐसा ही अनार्य है और यदि उसका बस चल गया तो वह समूचे मगध राज्य को ही बेच देगा। कहाँ है उसमे प्राण ? कहाँ है उसमें ओज ? वह ओज जो आंभिराज में था, जो पौरव में था, जो मालवगण में था ? प्राण और ओज था उस संन्यासी मे, जो अलक्षेन्द्र के आक्रमण के समय जल मरा। ऐसे ओज और प्राण के बिना कहीं यवनों-यूनानियों को निष्कासित किया जा सकता है ? वह तो इतना क्लीव और कापुरुष है कि तुम रणक्षेत्र में प्राणों की बाजी लगाये रहोगे और वह चुपके-चुपके किसी यवनी को भेजकर आक्रमण-कारियों से सन्धि कर लेगा। डेढ़ सौ के स्थान पर तीन सौ हाथी देकर दासत्व को गले लगायेगा। तुम किस भ्रम में पड़े हो बलाधिकृत पुष्यमित्र ? तुमने क्षात्रधर्म को अंगीकार किया है—वह क्षात्रधर्म जिसके सम्बन्ध में महाभारत-कार ने कहा है—सर्वधर्मवरं क्षात्रं लोकश्रेष्ठं सनातनम् ! तुमने शस्त्र ग्रहण-

कर प्रजा को रक्षा का आश्वासन दिया है। तुम्हारे आश्वासन से लोक-समस्त अनुप्राणित हुआ है; लोक को विश्वास है कि तुम उसकी रक्षा करने में समर्थ हो। यदि आज तुम रक्षा नहीं करते तो वह भयंकर विश्वासघात होगा।'

'सुन पुष्यमित्र, सुन! ये शब्द अन्य किसी के नहीं, स्वयं गुरुदेव पतंजलि के हैं।'

'लेकिन मैं मगधराज के साथ विश्वासघात नहीं करूँगा। मैं उन्हें बचाने के लिए आकाश-पाताल एक कर दूँगा। मैं उनकी सोयी आत्मा और सोये गौरव को जगाऊँगा।'

'जाग चुका वह!'

'मोह के वश मे होकर निर्बल राजा को सहने और निभानेवाला प्रजा-द्रोही होता है।' पतंजलि ने जोर देकर कहा।

पुष्यमित्र सोच-विचार में पड़ गया। उसकी दृष्टि भूमि की ओर झुक गई। चेहरा निराशा के अन्धकार से धूमिल पड़ गया। अपने मन में तो वह भी समझता था कि बृहद्रथ वज्रमूर्ख है और उसे समझाना या बदलना आकाश के सितारे तोड़ने की तरह असम्भव है। वह यह भी जानता था कि मगध की प्रजा का असन्तोष दिन-दूना बढ़ता जा रहा है।

'और सुनो बलाधिकृत, यदि तुमने मगधराज को अपदस्थ नहीं किया तो प्रजा स्वयं उसे अपदस्थ कर देगी। मेरी बात गाँठ बाँध लो; प्रजा उसे अब एक क्षण भी सहने को तैयार नहीं। अन्तर इतना ही होगा कि तुमने अपदस्थ किया तो व्यवस्था बनी रहेगी; प्रजा ने अपदस्थ किया तो घोर अव्यवस्था और अन्धाधुन्धी मच जायेगी। स्वयं सोच देखो। एक-एक क्षण का मूल्य और महत्त्व है। फल्गुदेव को अपनी अन्तिम घड़ी में आश्वासन चाहिए। वह देना तुम्हारा पुत्र-धर्म है। जो निर्बल को सबल द्वारा उत्पीड़ित होते देखता रहे, शस्त्रधारी होकर भी शस्त्र का उपयोग न करे, वह मनुष्य-तनधारी होकर भी मानव नहीं। तुमने क्षात्रधर्म का अंगीकार किया है। फल्गुदेव को उनकी मरण-शय्या पर वचन देना तुम्हारा पुनीत धर्म है।'

'परन्तु विश्वासघात तो सबसे बड़ा पाप है देव! इस पाप का कभी प्रायश्चित्त नहीं हो सकता, रौरव नर्क से भी नहीं।'

'तुम इसे विश्वासघात कहते हो ? यदि यह विश्वासघात है तो तुम्हारे स्थान पर मुझे रौरव नर्क मिले। तुम भूलते हो बलाधिकृत ! तुम मंत्री नहीं, महामात्य नहीं, तुम हो सेनापति। अभी, उचित समय पर यदि तुम शस्त्र उठाते हो तो वह गौरव और शोभा की बात होगी; लेकिन यदि किसी अन्य ने शस्त्र उठाया तो वह चांडाल-कर्म से भी हीन हो जायेगा। और मरणोन्मुख पिता को आश्वासन देना क्या तुम्हारा धर्म नहीं है ? निश्चय करने के लिए केवल दो पल का समय तुम्हारे पास है। उसके पश्चात् तो फल्गुदेव को तुम्हारे आश्वासन की कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी। अपने पुत्र-धर्म को विस्मरण न करो पुष्यमित्र ! जो पिता के अपूर्ण कार्य को पूरा करने का दायित्व नहीं लेता वह पुत्र नहीं। तुम्हें फल्गुदेव के अधूरे काम को पूरा करना है। अन्धी राजभक्ति के उन्माद में मगध का सर्वनाश न करो। अभी तो समय है, भली प्रकार सोचकर निर्णय करो। दो पल के बाद निर्णय करना-न करना बराबर होगा। देश को बचाओ सेनापति; देश रहा तो देशपति कई मिल जायेंगे।'

पुष्यमित्र बड़ी देर तक धरती की ओर टक लगाये देखता रहा। उसके मन में मन्थन होता रहा। बृहद्रथ के साथ वह खेला था। बृहद्रथ ने ही उसे सेनापति नियुक्त किया था। आज उसी बृहद्रथ को वह अपदस्थ कर दे, उसका वध कर डाले ? घोर विश्वासघात ! ब्राह्मण होकर जघन्य चांडाल-कर्म ! सूर्य, चन्द्र और अग्नि को साक्षी कर जिसकी रक्षा का व्रत लिया था उसी की ग्रीवा पर कृपाण चलाये ? तब देश की रक्षा कौन करेगा ? यवनों के आसन्न आक्रमण के समय देश का नेतृत्व कौन करेगा ?

तभी महर्षि पतंजलि ने उसे विचार-समाधि से जाग्रत करते हुए कहा— मैंने विदिशा में भी सुना है कि वर्तमान मगधपति भोग-विलास का दास है; उसे नित नूतन विलास और आमोद-प्रमोद चाहिए। धर्म का वह नित नया ढिंढोरा पीटता है। विलास और त्याग की उसने रामनामी ओढ़ रखी है। धर्म और मूर्खता, अधर्म और वाक्पटुता का उसने आश्चर्यजनक तालमेल साध रखा है। ऐसे में तो किसी दिन कोई यूनानी यवनी ही उसका वध कर डालेगी और तुम देखते रह जाओगे।

यूनानी यवनी का नाम सुनते ही पुष्यमित्र चौंक पड़ा। दुर्वाक ने उसे

बताया था कि मगधपति इन दिनों माद्री नामक यूनानी यवनी पर लट्टू है। पता नहीं वह मद्र देश की है या कहीं और की, पर है यूनानी यवनी। कहीं से गुप्त संवाद लेकर आई है, महामात्य ने प्रेरित किया है या यवनराज की भेजी हुई है—यह कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। निश्चित केवल इतना है कि मगधपति उस पर लट्टू है। क्या आश्चर्य यदि वह या उसी-जैसी कोई और मगधपति की हत्या कर डाले? दैव-दुर्विपाक से ऐसा हो गया तो मगध का क्या होगा? कैसी अन्धाधुन्धी मच जायेगी! तब कौन मगध की रक्षा करेगा? आज भी कुछ कम अराजकता नहीं है। स्वर्ण द्रम्म के बिना किसी को न्याय नहीं मिलता। दुर्जन को दंड नहीं दिया जाता। सज्जन की कोई बात नहीं पूछता। आज जो केवल पाटलिपुत्र में हो रहा है, कल वह देश-व्यापी हो जायेगा। सर्वत्र हाहाकार मच जायेगा। सहस्रों बालक अनाथ हो जायेंगे। अगणित नारियाँ भ्रष्ट की जायेंगी। असंख्य युवक मौत के घाट उतार दिये जायेंगे! इस सब का पाप किसको लगेगा? मुझको, हाय, मुझी को! क्या मैं इसी लिए सेनापति बना हूँ? इतने बड़े पाप का भागी होने की अपेक्षा तो अच्छा है कि अयोग्य राजा को ही अपदस्थ कर दिया जाये....

पुष्यमित्र सोचते-सोचते काँप उठा और पिता की शय्या के सामने खड़े होकर महर्षि पतंजलि से बोला—भगवन्, मैं तो अन्धकार में भटक रहा हूँ। आप ही मार्ग दिखाइए।

पतंजलि ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा—वत्स, जो उचित समय पर शस्त्र ग्रहण नहीं करता वह क्षुद्र है, क्लीव है, प्रजा का द्रोही है। समय बीत जाने पर वे शस्त्र उसी की हत्या कर डालते हैं। तुम भगवान् कौटिल्य के बताये हुए मार्ग का अनुसरण करो। राज-मार्ग वही है। जिस पर तुम चल रहे हो वह उचित मार्ग नहीं। शस्त्र कभी बुरे नहीं होते; बुरे होते हैं उनका उपयोग करनेवाले। शस्त्र धारण करनेवाले मनुष्य हों, राक्षस नहीं, तो कोई बुराई नहीं होती। इस सत्य को सदैव लक्ष्य में रखो, तुम्हारा कल्याण होगा।

फल्गुदेव की डूबती दृष्टि उसी पर टिकी हुई थी। पुष्यमित्र ने उन नेत्रों में पिता की अन्तिम इच्छा को स्पष्ट लिखा देखा और शीघ्रता से आगे बढ़कर उसने पिता का हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया।

'देव ! महान् पिता !' वह गद्गद हो उठा, 'मैं, पुष्यमित्र, आपका अकिंचन पुत्र, मगध का सेनापति, गंगोदक लेकर, शस्त्र और शास्त्र की साक्षी में, महामुनि पतंजलि के सान्निध्य में आपको वचन देता हूँ कि जब भी आवश्यकता होगी मगधपति को अपदस्थ कर दूँगा, लेकिन नगर को नष्ट न होने दूँगा, देश का विनिपात न होने दूँगा। परन्तु एक शर्त है।'

'क्या ?' पतंजलि ने उत्सुकता से पूछा।

'यही कि मैं कभी राजा नहीं बनूँगा, अपना राज्याभिषेक नहीं कराऊँगा, राजपद को धारण नहीं करूँगा। मैं सेनापति हूँ और सेनापति ही रहूँगा....'

'लेकिन किसके सेनापति ?'

'जो राजा हो उसका। कोई न हुआ तो अपने ही पुत्र अग्निमित्र का....'

'राजा शब्द तो केवल एक प्रतीक है पुष्यमित्र। राजा वह है जो प्रजारंजन करे, प्रजा को निर्भयता प्रदान करे, चाहे वह राजत्व को या राजपद को धारण न भी करे। यदि तुम यह चाहते हो तो यही हो।' और पतंजलि ने उच्च स्वर में घोषणा की, 'सेनापति पुष्यमित्र की जय हो !'

फल्गुदेव ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा—पुष्यमित्र, मैं निश्चिन्त हुआ। अब भले ही मृत्यु आये।

सहसा एक स्वर सुनाई दिया और सभी चौंक पड़े।

३ : विदर्भ का सन्देशवाहक

द्वार में एक योद्धा खड़ा था। वेश-भूषा से वह विदर्भ की ओर का लगता था। सब-के-सब सोचने लगे कि यह कौन है और क्यों आया है ?

आगन्तुक सेनानायक या कोई उच्चपदस्थ सैन्य-अधिकारी प्रतीत होता था। वह नख-शिख आयुधों से सज्ज था। उसकी रीति-भाँति ऐसी थी मानो किसी स्वतन्त्र राजा का सर्वाधिकार-सम्पन्न प्रतिनिधि सन्धि-चर्चा के लिए आया था। देखने में भी बड़ा दबंग था। उन्नत सिर और आत्मविश्वास से भरी चाल से वह चलता हुआ वहाँ आया था।

पुष्यमित्र उसकी ओर देखता हुआ सोच रहा था कि यह कौन है ? सहसा उसे स्मरण हो आया कि विदर्भ का प्रदेशपति अत्यन्त गर्वीष्ठ और

स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति है। उसे अपने पिता की यह भविष्यवाणी, कि मगध का राज्य छिन्न-भिन्न हुआ ही चाहता है, सत्य होती प्रतीत हुई। उसने वहीं-के-वहीं मन में यह दृढ़ निश्चय किया कि पिता की मरण-शय्या के समक्ष जो प्रण किया है उसे पूरा करना होगा। जिस राज्य के प्रदेशपति और प्रदेश-अनुचर इस तरह गर्व और दर्प का प्रदर्शन करें उस राज्य की रक्षा राज्य-परिवर्तन के द्वारा ही हो सकती है। आगन्तुक सेनानायक की गर्व-भरी रीति-भाँति उसकी आँखों मे कणिका की भाँति खटकने लगी। परन्तु अभी वह रुग्णालय में था, कुछ कर नहीं सकता था, इसलिए मन मारकर रह गया और आगन्तुक को आगे आने का संकेत किया।

जब वह निकट आ गया तो पुष्यमित्र को स्मरण हो आया कि स्वयं उसी ने तो विदर्भ के सेनानायक को वहाँ से सेना लेकर आने का आदेश दिया था। उसने पूछा—कहो सेनानायक, सेना ले आये ? आपका नाम भद्रघोष तो नहीं ?

भद्रघोष ने बड़े ही अक्खड़ स्वर मे उत्तर दिया—जी हाँ, मैं भद्रघोष ही हूँ। और यही कहने के लिए स्वयं आया हूँ कि विदर्भ से सेना नहीं आ सकती।

'सेना नहीं आ सकती ? क्या मतलब ?'

'मतलब यही कि वहाँ से सेना नहीं आ सकती और कोई सेना लेकर नहीं आयेगा।' उत्तर जितना ही संक्षिप्त था उतना ही पैना भी।

'लेकिन महाराज का आदेश तो मिला ही होगा। उसमे सेना लेकर किसी को भेजने की बात बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कही गई थी। फिर मैंने भी विशेष रूप से सन्देश भेजा था। क्या आप लोगों को नहीं मिला ?'

'मिला था।' इस बार उत्तर और भी संक्षिप्त था और उसमें उपेक्षा के साथ ही अपमान की ध्वनि भी थी। पुष्यमित्र को बुरा तो बहुत लगा, लेकिन पिता का विचार करके वह चुप रह गया।

फल्गुदेव पुत्र के वचन से सन्तुष्ट करवट बदलकर शान्तिपूर्वक लेटे हुए थे। इसलिए पुष्यमित्र ने बात को बढ़ाये बिना वहीं-के-वहीं समाप्त कर देने के विचार से अत्यन्त धीमे स्वर में कहा—तो फिर क्या हुआ ? सेना क्यों नहीं आयेगी ? कलिंगराज खारवेल की तो कोई हलचल नहीं ?

'जी नहीं ! अभी तो उसकी ऐसी कोई हलचल नहीं। लेकिन सेना क्यों नहीं आई और क्यों नहीं आयेगी यही कहने के लिए महाराज विदर्भराज ने मुझे भेजा है।'

तड़ित्-वेग से पुष्यमित्र भद्रघोष के समीप आ खड़ा हुआ। अहंकार के इस प्रदर्शन ने उसके तन-बदन में आग लगा दी। विदर्भ के एक सामान्य प्रादेशिक का यह साहस और दर्प कि अपने-आपको महाराज विदर्भराज कहे ! कहाँ से पैदा हो गया यह विदर्भराज ? विदर्भ के गोप्ता यज्ञसेन को उसके औद्धत्य के लिए दंड देना ही होगा। उसके राजद्रोह की भनक तो पुष्यमित्र को पहले भी मिल चुकी थी, परन्तु वह नहीं जानता था कि मामला यहाँ तक तूल पकड़ गया है। लेकिन अभी तो कुछ किया नहीं जा सकता था, इसलिए उसने भद्रघोष के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—प्रतीत होता है कि तुम अतीव महत्त्वपूर्ण संवाद लेकर आये हो। उसे निश्चिन्त होकर सावकाश सुना जायेगा। अभी तो तुम विश्राम करो।

और उसने धीरे से ताली बजाई। एक यवनी निःशब्द वहाँ दौड़ी आई।

'दुर्वांक से कहकर राजदुर्ग के अतिथिगृह में इनके निवास और विश्राम की व्यवस्था करवाओ। भद्रघोष, हम लोग कुछ ठहरकर बातें करेंगे। अभी तो पिताजी अस्वस्थ हैं।'

'लेकिन मेरा सन्देश तो अतीव संक्षिप्त है। दो क्षण भी न लगेंगे।' भद्रघोष ने कहा।

'तो हमारा प्रत्युत्तर भी संक्षिप्त ही होगा। लेकिन अभी तो समय नहीं है। आज हो भी नहीं सकता। हम कल सायंकाल मिलेंगे, महाराज के सान्निध्य में....'

तभी दुर्वांक आ गया और भद्रघोष उसके साथ वहाँ से बाहर चला गया।

पुष्यमित्र उसे जाते हुए देखता रहा। फिर सोचने लगा, पिता ने सच ही कहा था—अराजकता मगध के अंग-उपांग में व्याप्त हो गई है; प्रत्येक प्रादेशिक अपने-आपको मगधपति समझने लगा है; भगवान् कौटिल्य द्वारा स्थापित चक्रवर्ती शासन-प्रणाली का जैसे अन्त ही हो गया है।

वह चुपचाप पतंजलि के पास लौट आया। इस बीच भिषग्वर सर्वदेव भी

वहाँ आ गया था और मरणोन्मुख फल्गुदेव की ओर टक लगाये देख रहा था।

फल्गुदेव शान्तिपूर्वक गहन निद्रा में निमग्न थे।

पतजलि ने कहा—वत्स पुष्यमित्र, तुम्हारे आश्वासन ने महाबलाधिकृत के हृदय का सारा भार उतार दिया। देखो, कैसी गाढ़ निद्रा में सोये हैं।

'और संभवतः उसी आश्वासन के साथ विदा भी हो जायेंगे।' सर्वदेव ने फल्गुदेव की नाड़ी टटोलते हुए कहा।

पुष्यमित्र की आँखें भर आईं। उसने हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा—हे पिता, मुझे अपनी सामर्थ्य प्रदान करो! आपका परलोक-पथ सुखद और प्रशस्त हो!

और उसका गला रुँध गया।

उसी रात महाबलाधिकृत फल्गुदेव ने नश्वर देह का परित्याग कर दिया।

४ : पतंजलि का अवशिष्ट कार्य

महामुनि पतंजलि का कार्य अवशिष्ट था; कहना चाहिए कि अब आरम्भ हो रहा था। वह आये थे फल्गुदेव से मिलने, लेकिन संयोग की बात कि उनके जीवन के अन्तिम क्षणों में ही भेंट हो सकी। फल्गुदेव की अन्तिम अभिलाषा यह थी कि उनके पुत्र पुष्यमित्र के विचारों और सिद्धान्तों में आमूल परिवर्तन हो; क्योंकि उसके बिना मगध का उद्धार और उसकी रक्षा असम्भव ही थी। फल्गुदेव के बाद अब यह दायित्व महामुनि पतंजलि पर था; और इसी लिए उनका कार्य अब आरम्भ हो रहा था।

पुष्यमित्र ने भद्रघोष को दूसरे दिन सायंकाल के समय मगधपति के सान्निध्य में मिलने के लिए बुलाया था। उद्देश्य यह था कि मगधपति को अपने पतन का कुछ अनुमान हो सके। पितृ-शोक के रहते हुए भी पुष्यमित्र इस पूर्व निर्धारित कार्यक्रम को तत्परता से निबाहने के लिए उत्सुक था, क्योंकि स्थिति ही ऐसी थी और प्रश्न केवल एक प्रादेशिक का नहीं, सभी प्रदेशपतियों का था और सब-के-सब सिर उठाने लगे थे।

मगधपति को अपने पतन का भान हो या न हो, उसका पतन तो अनिवार्य था। इधर कुछ समय पहले जो यूनानी आक्रमण हुए थे उन्होंने राजा

में प्रजा का विश्वास और आस्था को जड़-मूल से हिला दिया था। इस विश्वास को पुनः-स्थापित करने के लिए पुष्यमित्र ने एक विशाल सैन्य-महोत्सव आयोजित किया था। उसने सभी प्रदेशपतियों को अपने-अपने सेनानायकों सहित सेनाएँ लेकर पाटलिपुत्र में एकत्रित होने का सन्देश भेजा था। इसी आशय का मगधपति की मुद्रावाला आदेश भी प्रचारित किया गया था। पाटलिपुत्र में महोत्सव की जबर्दस्त तैयारियाँ और बड़े पैमाने पर सैनिक हल-चल भी हो रही थी। मगध की सैनिक-शक्ति को देखकर प्रजा का लुप्त होता हुआ आत्मविश्वास कुछ तो लौटता ही। साम्राज्य के कोने-कोने से गजसेना, अश्वारोही, पदाति और रथारोही बुलाने का निश्चय किया गया था।

लेकिन स्वयं मगधपति का आदेश होते हुए भी विदर्भ से न सेना आई न सेनानायक। आया था अकेला भद्रघोष, जो वहाँ के गोप्ता (प्रदेशपति) यज्ञसेन का कोई औद्धत्यपूर्ण सन्देश लाया था। सन्देश का तो अभी पता नहीं चला था, लेकिन यह बात स्पष्ट हो गई थी कि वहाँ से सेना नहीं आयेगी।

विदर्भ का गोप्ता यज्ञसेन मगध के तत्कालीन महामात्य कौंडिन्य का परम विश्वसनीय मित्र था। पुष्यमित्र को इन दोनो के सम्बन्ध में यह भनक मिल चुकी थी कि वे मिलकर मगधपति को अपदस्थ करना और स्वयं मगधपति बनना या मगध-साम्राज्य को आपस में बाँट लेना चाहते थे। पुष्यमित्र को यह समाचार स्वयं उसके अपने अत्यन्त विश्वसनीय चरपुरुष ने दिये थे।

उनके षड्यन्त्र का पूरा विवरण तो अभी नहीं मिला था। लेकिन मोटी-मोटी रूप-रेखा मालूम हो गई थी। दोनो-के-दोनो षड्यन्त्रकारी सामने-आये बिना ही अपने अभीष्ट की सिद्धि चाहते थे। एक ओर वे लोकप्रियता अर्जित कर रहे थे और दूसरी ओर ऐसा जाल बिछा रहे थे कि कोई अन्य पुरुष मगध-पति बृहद्रथ की हत्या कर डालें। इस प्रकार वे हत्या के पाप से बच जायें और प्रजा उनकी लोकप्रियता के कारण, बृहद्रथ के न रहने पर, उन्हीं से शासन-भार सँभालने के लिए कह सके। बृहद्रथ का अपना कोई पुत्र या उत्तराधिकारी नहीं था। इसलिए भी उनके लिए शासन-भार सँभालना सरल हो जाता। हत्यारे को तो प्रजा शासनकर्ता का पवित्र पद ग्रहण करने न देती। फिर उन्हें जालौक के पुत्र दामोदर का भी भय था। जालौक स्वयं तो अब

निवृत्त हो गया था, लेकिन उसका पुत्र दामोदर बड़ा ही पराक्रमी था; साथ ही वह मगध का वंशज भी था। दूसरा भय उन्हें सुभागसेन का था। वह भी मगध का वंशज था। ऐसे दो-दो वंशजों के रहते भी उन्हें शासन करने का अधिकार तभी मिल सकता था जब कि हत्या का पाप उनके माथे पर न चढ़ता।

लेकिन सेनापति पुष्यमित्र उनके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा था। वह एक चट्टान की भाँति उनकी राह रोके खड़ा था। अपनी राजभक्ति से प्रेरित उसने अपने पुत्र अग्निमित्र को बृहद्रथ की रक्षा का भार सौंपा था और वह अहर्निश राजा की रक्षा में प्रवृत्त भी था। अग्निमित्र के रहते कोई मगधराज बृहद्रथ का बाल बाँका नहीं कर सकता था।

पुष्यमित्र की ऐसी राजभक्ति महामात्य कौण्डिन्य को फूटी आँखों नहीं सुहाती थी। यह बात विदर्भ के यज्ञसेन को भी शूल की भाँति खटकती रहती थी। दोनो ही उचित अवसर की ताक में थे। जब पुष्यमित्र ने सैन्य-महोत्सव के आयोजन की घोषणा की तो मनचीता अवसर आया जानकर यज्ञसेन ने उसकी अवहेलना का निश्चय किया। इस अवसर से लाभ उठाकर उसने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करने का निश्चय कर लिया। विदर्भ एक बार स्वतन्त्र हो जाये तो मगधपति को उठाकर फेंकते क्या देर लगती!

इतना तो वह भी समझ रहा था कि बृहद्रथ अधिक समय तक टिका नहीं रह सकता। उसके ऐसा समझने का कारण था। राजा बृहद्रथ बड़ा ही विचित्र और परस्परविरोधी विचारों और आचरणवाला व्यक्ति था। कभी वह धार्मिकता की बातें करता तो कभी अधार्मिकता की। कभी वह बातों मे विद्वानों के भी कान काटता और कभी मूर्खों को भी लज्जित कर देता। कभी उसका व्यवहार साधुतापूर्ण होता, तो कभी दुष्टता से भरा हुआ। उसके निकट सम्पर्क में रहने-वाले भी यह नहीं जान पाये थे कि वह वस्तुतः क्या है—धार्मिक या अधार्मिक, शूरवीर या भीरु, साधु या दुष्ट! अपनी बहक में वह भयंकर-से-भयंकर शत्रु को क्षमा प्रदान कर देता और अभिन्न मित्र की भी हत्या कर डालता था। ऐसे अस्थिर और मूर्ख व्यक्ति की अग्निमित्र कब तक रक्षा करता! इसी लिए यज्ञसेन चाहता था कि अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करके मगधपति के शासन

को उतार फेंके; और इसके लिए उसे यही समय उपयुक्त प्रतीत होता था। यदि पुष्यमित्र ने बाधा न डाली तब तो सारा काम यों चुटकी बजाते हो जाने की आशा थी।

परन्तु पुष्यमित्र की राजभक्ति अटल थी। उसके पिता फल्गुदेव को अपने अन्तिम समय तक इसी बात की चिन्ता लगी रही। इसी अन्धी राजभक्ति से उसे मोड़ने के लिए उन्होंने विदेश से महामुनि पतंजलि को बुलाया था और पुष्यमित्र ने अपने मत-परिवर्तन का अभी किंचित् आभास दिया ही था कि फल्गुदेव चल भी बसे।

यज्ञसेन और कौटिल्य की दुरभिसन्धियों से पतंजलि भी अवगत थे। यज्ञ-सेन के बारे मे तो उन्हें विदिशा में ही पता चल गया था। यहाँ आकर उन्हें कौटिल्य के बारे में भी मालूम हुआ और उन्होंने यह भी देखा कि कौंडिन्य के हाथ मे विस्तृत अधिकार हैं और वह सर्वसत्ताधीश की भाँति व्यव-हार करता है। ऐसी स्थिति मे यदि पुष्यमित्र ने कोई कड़ा कदम नहीं उठाया और दुविधा में पडा रहा तो मगध का पतन होते देर न लगेगी।

यद्यपि पुष्यमित्र ने अपने पिता की मरण-शय्या के समक्ष मगध की रक्षा का प्रण लिया था, परन्तु पतंजलि आश्वस्त नहीं हो सके थे। उन्हें अपना काम बड़ा ही कठिन लग रहा था। वह जानते थे कि आदमी के मन का परिवर्तन सरलता से नहीं हुआ करता। इसलिए उन्होंने पुष्यमित्र से एक बार पुनः दिल खोलकर बातें करने का निश्चय किया। वह उसके मन को अच्छी तरह टटोल लेना चाहते थे। लेकिन अभी इसके लिए समय नहीं था। पुष्य-मित्र भद्रघोष को लेकर व्यस्त था। ठीक है, पतंजलि ने सोचा, पहले भद्रघोष का सन्देश सुन लिया जाये; उसके बाद ही पुष्यमित्र से चर्चा करना उचित होगा।

वह महाबलाधिकृत के अतिथिगृह में बैठे प्रतीक्षा करते रहे। यह अतिथिगृह पुष्यमित्र के उद्यान मे ही ऐसे स्थान पर था, जहाँ से वह आते-जाते प्रत्येक व्यक्ति को देख सकते थे। वह अनेक लोगों को आते-जाते देखते और बैठे विचार करते रहे। पाटलिपुत्र का तो उन्हें कोई भविष्य दिखाई नहीं देता था। उनकी दृष्टि में आनेवाले समय में विदिशा ही महान् और महत्त्व-पूर्ण नगर बनने को था। इधर कई दिनों से कलिंग के राजा खारवेल ने

पाटलिपुत्र पर अपनी गृद्ध-दृष्टि लगा रखी थी। कलिंग के आक्रमण को या तो विदर्भ या अवन्ती ही रोक सकते थे। इसके लिए आवश्यक था कि दोनो स्थानों में मगध के विश्वसनीय और शक्तिशाली प्रादेशिक होने चाहिए। और कहीं पूर्व से कलिंग ने और पश्चिम से यूनानियों ने एक साथ आक्रमण कर दिया तब तो न केवल पाटलिपुत्र, अपितु मगध-साम्राज्य, मगधराज और मौर्य-वंश ही नष्ट हो जायेगा, और सारे देश मे अराजकता व्याप्त हो जायेगी। विदर्भ से तो सहायता की कोई आशा थी नहीं; केवल अवन्ती-विदिशा बचे थे और भविष्य विदिशा के ही हाथ में था।

महामुनि पतंजलि अतिथिगृह के अपने कक्ष में बैठे यही सब सोच रहे थे और महाबलाधिकृत के भवन के मुख्य द्वार की ओर देखते भी जाते थे।

सहसा उन्होंने भद्रघोष को आते देखा। एक बार वह उसे फल्गुदेव की मृत्यु-शय्या के निकट पहले भी देख चुके थे, इसलिए इस बार देखते ही पहचान गये। वह सुन चुके थे कि भद्रघोष यज्ञसेन का अति संक्षिप्त परन्तु महत्त्वपूर्ण सन्देश लाया है। संक्षिप्त सन्देश 'हाँ' अथवा 'ना' के अतिरिक्त क्या हो सकता है? लेकिन कैसे पता चले कि 'हाँ' है या 'ना'? वह जो भी हो, इतना तो मानकर ही चलना होगा कि बिना पूरी तैयारियों के कोई ऐसा संक्षिप्त सन्देश नहीं भेजेगा। तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि मगधपति पर शीघ्र ही कोई वार किय जायेगा।

उसी समय एक शिविका आती दिखाई दी, वह खाली थी, और महाबलाधिकृत भवन के मुख्य द्वार के आगे आकर खड़ी हो गई। थोड़ी देर में पुष्यमित्र बाहर निकला। भद्रघोप भी उसके पीछे-पीछे बाहर आया। दोनो उस शि[illegible]का में बैठ गये और भारवाहक उसे उठाकर ले चले।

महामुनि पतंजलि समझ गये कि वे दोनो मगधपति से मिलने जा रहे हैं। सम्भवतः पुष्यमित्र आसन्न संकट को जान गया था और कोई आक्रमण करे उसके पहले ही स्थिति को सँभाल लेना चहता था।

जब शिविका आँखों से ओझल हो गई तो महामुनि भी शब्द-शास्त्र के अपने प्रिय विषय के चिन्तन-मनन में निमग्न हो गये। वह सोच रहे थे कि जो प्रजा समर्थ और शक्ति-सम्पन्न होती है उसी के शब्द सशक्त हो सकते हैं,

शक्ति के बिना शब्दों में सामर्थ्य आयेगी कहाँ से ? जब प्रजा का पतन होता है तो उसकी भाषा और उसके शब्द भी पतित हो जाते हैं। देववाणी संस्कृत के सम्बन्ध में पतन की इस प्रक्रिया को वह अपनी आँखों के सामने घटित होते हुए देख रहे थे। गरिमामयी देवभाषा को धकियाकर कई ग्राम्यभाषाएँ अपना सिर उठाने लगी थीं। महामुनि को यह भय सताने लगा था कि कहीं इस देश की जनता देवभाषा को सदा के लिए विस्मृत ही न कर दे।

इधर महामुनि बैठे भाषा-शास्त्र और शब्द-विज्ञान का चिन्तन करते रहे, उधर शिविका पुष्यमित्र और भद्रघोष को लेकर राजप्रासाद के सिंहपौर पर पहुँच गई।

पुष्यमित्र का संकेत पाते ही एक यवनी महाराज बृहद्रथ को सेनापति और सन्देशवाहक के आगमन की सूचना देने के लिए अन्दर दौड़ी गई।

लेकिन वहाँ एक शिविका और भी रखी हुई थी। पुष्यमित्र ने उसे पहचाना। वह महामात्य कौंडिन्य की शिविका थी। उसे आश्चर्य हुआ कि इस समय कौंडिन्य के यहाँ आने का क्या प्रयोजन हो सकता है! मस्तिष्क पर थोड़ा जोर डालते ही पुष्यमित्र समझ गया कि यज्ञसेन का कोई सन्देश कौंडिन्य को भी मिला है और वह बाढ़ के पहले बाँध बनाने के उद्देश्य से भागा आया है। कहीं मूर्ख मगधराज उसी का कहना न मान ले ? हो सकता है कि अपनी बहक में वह विदर्भराज के अपमानजनक सन्देश को चुपचाप सुन ले और यहाँ से किसी को शान्ति का उपदेश देने के लिए विदर्भ भेजने का निश्चय करे। पुष्यमित्र को अपने चारों ओर कूटनीति के जाल बिछते दिखाई दिये। उसे कूटनीति का तो इतना डर नहीं था, लेकिन यह आशंका अवश्य हो रही थी कि कहीं मगधराज उसी को शान्ति का उपदेशक बनकर जाने की आज्ञा न दे बैठे।

मान लो कि उसने आज्ञा दे ही दी तो मुझे क्या करना होगा ? जाना उचित होगा या नहीं ? और तत्काल क्या उत्तर देना समीचीन होगा ? कौंडिन्य अवश्यमेव पहले से ऐसा जाल बिछाकर रखेगा कि वहाँ जाने के लिए मेरा ही नाम प्रस्तावित हो और मेरी अन्य कोई बात सुनी ही न जाये। तब क्या करना उचित होगा ?

अभी वह सोच ही रहा था और किसी निर्णय पर पहुँच नहीं पाया था कि यवनी लौटती दिखाई दी।

मगधराज ने दोनों सेनानायकों को बुलाया था।

५ : महामात्य कौंडिन्य

पुष्यमित्र ने मंत्रणागृह में प्रवेश किया तो राजा बृहद्रथ उसे वहाँ दिखाई नहीं दिया। यह देख उसे बड़ा विस्मय हुआ। महामात्य के सम्बन्ध में तो उसका अनुमान सोलहों आने सही निकला। वह वहाँ आया बैठा था। लेकिन राजा कहाँ चला गया? क्यों नहीं आया? क्या बात हुई? उसने ध्यान से चारों ओर देखा। नहीं, राजा कहीं नहीं था। वह अचरज में भरा खड़ा सोच ही रहा था कि महामात्य ने दोनों को आगे आने का संकेत किया।

दोनों आगे बढ़ आये और महामात्य का अभिवादन कर अपने निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गये। बैठे-बैठे कुछ समय बीत गया, लेकिन राजा के वहाँ आने के कोई चिन्ह नहीं दिखाई दिये। पुष्यमित्र बड़े असमंजस में पड़ गया। पूछना उचित होगा या नहीं—वह कोई निर्णय नहीं कर सका। बस बैठा व्यग्र भाव से महामात्य के चेहरे की ओर देखता रहा।

महामात्य कौंडिन्य का कद नाटा, गरदन छोटी और आँखें कुछ कंजी थीं। उसका समूचा व्यक्तित्व किसी भी दर्शक के लिए एक पहेली के समान था। बिल्ली-जैसी कंजी आँखों से कोई भाव प्रकट नहीं होता था। चेहरा कुछ फैला हुआ, पर नाक बिलकुल ही विचित्र प्रकार की थी। मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में उसकी नासिका का प्रमुख स्थान होता है। लेकिन कौंडिन्य की नाक से उसकी आँखों की ही भाँति किसी बात का पता नहीं चलता था। उसकी ओर घंटों देखते रहने के बाद भी दर्शक, चाहे विदेशी हो या भारतवासी, यह निर्णय नहीं कर पाता था कि उसे क्या समझा जाये—भला या बुरा, वीर या कापुरुष, चतुर या मूर्ख, कुशल या ठग? उसका अपना कोई निश्चित व्यक्तित्व नहीं था, फिर भी वह अनेकविध व्यक्तित्वों का भ्रमजाल खड़ा कर देता था। उसे देखकर सहसा यह विश्वास करने को जी नहीं चाहता था कि वह मगध-जैसे महान् साम्राज्य का, और सो भी आज की विकट परि-

स्थिति में, महामात्य होगा ! परन्तु मगध का महामात्य तो वह था ही और राजा बृहद्रथ का उस पर सम्पूर्ण विश्वास भी था।

हाँ, उसकी बोली बड़ी मीठी थी। वाणी क्या थी, मधुरता का सागर ही लहराने लगता था ! सुनते-सुनते श्रोता अपनी सुध-बुध ही बिसार बैठता और कभी उभर नहीं पाता था। पुष्यगुप्त महामात्य की इस विशेषता से परिचित था और उसके सान्निध्य में सदैव सतर्क रहता था। इस समय भी वह अपने को सतर्क कर ही रहा था कि महामात्य का मधु-सिंचित स्वर सुनाई दिया :

'पधारिए महाबलाधिकृत पुष्यमित्र ! कहिए क्या बात है ? महाराज से तत्काल भेंट करने की ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी और वह भी विदर्भ के सेनानायक इन भद्रघोष महोदय के साथ ? पितृ-शोक से व्यथित रहते हुए भी जब आपने महाराज से भेंट करने की इच्छा प्रदर्शित की और महाराज ने इस आशय का सन्देश मेरे पास भेजा तो मैं भी तत्काल दौड़ा आया। अब कहिए, क्या बात है ? हम बातें करें, तब तक महाराज भी पधार जायेंगे। अभी अन्दर विराजमान हैं। गान्धार से साधु आये हैं। उनके साथ ज्ञान-चर्चा हो रही है। शीघ्र ही पधारेंगे। कहिए भद्रघोष महोदय, विदर्भ में सब कुशल तो है ? वहाँ से सेना आ तो रही है ? आपके अतिरिक्त कौन-कौन सेनानायक आ रहे हैं ? हमारे महाबलाधिकृत पुष्यमित्रदेव ने प्रजा के हृदय में विश्वास प्रेरित करने के साधु उद्देश्य से सैन्य-महोत्सव आयोजित किया है। सन्देश तो आपको भी मिल ही गया होगा। हमारे महाराज की ऐसी इच्छा है कि सभी प्रदेशपति उस महोत्सव में सम्मिलित हों। हमारे विदर्भ-गोप्ता यज्ञसेन कब आ रहे हैं ? चल तो दिये हैं न ? आपने वहाँ से कब प्रस्थान किया ? आपके साथ और कौन हैं ? वहाँ से तो सभी आयेंगे पुष्यमित्रदेव, सभी आयेंगे। सबके निवास और आतिथ्य के लिए हमारा विशाल राजोद्यान भी छोटा पड़ जायेगा। कई प्रदेशपति तो प्रस्थान कर भी चुके हैं।'

महामात्य ने मीठा-मीठा बोलते हुए एक साथ कई प्रश्नों की झड़ी लगा दी। इन सभी प्रश्नों का उत्तर उसे ज्ञात था। वह केवल पूछने की खातिर पूछ रहा था। वह जानता था कि न तो विदर्भ का गोप्ता यज्ञसेन आयेगा और न उसके यहाँ से सैनिक अथवा सेनानायक ही आयेंगे।

उसने फिर पूछा—आपके साथ कौन आया है भद्रघोष महोदय ?

'मेरे साथ तो कोई नहीं आया देव !' भद्रघोष ने हाथ जोडकर कहा, 'और कोई आ भी नहीं सकेगा ।'

'क्यों ? विदर्भ-गोप्ता यज्ञसेन तो आयेंगे न ?'

पुष्यमित्र सुनता रहा । वह जानता था कि यह केवल पूछने की खातिर पूछा जा रहा है और केवल उत्तर देने की खातिर पूछी बातों का उत्तर दिया जा रहा है ।

'देव, यही तो बताने के लिए मैं आया हूँ ।' भद्रघोष ने हाथ जोड़कर कहा, 'चारों ओर परिस्थितिँ तेजी से बदलती जा रही है । हम भी समय के परिवर्तन से अछूते नहीं रह सकते । हमारे यहाँ कलिंगपति की शक्तिशाली सेना ने बड़ी धाक जमा रखी है । मगध की सेना तो उसके सामने पासंग बराबर भी नहीं । सुना है कि इधर, आपके यहाँ भी, शाकलपति यवनराज दात्तामित्रि का प्रभाव बढ़ता जा रहा है । दक्षिण में सिन्धु-सौवीर तक वह बढ़ आया है । यह भी सुना है कि उसका एक सेनापति, या स्यात् उसका कोई स्वजन उससे भी अधिक शक्तिशाली है । अच्छा-सा नाम है उसका....'

'मिलिन्द—मेनण्ड्रस या मिनेण्डर !'

'जी हाँ, मिलिन्द ही । सुना है कि वह परम शक्तिवान और बड़ा निर्भीक योद्धा है । और यह भी सुना है कि वह भगवान् तथागत का भक्त है और उनकी जन्म तथा विहार-भूमि के दर्शन करना चाहता है ।'

'उसी ओर का कोई बौद्ध भिक्षु महाराज से मिलने आया है और महाराज इस समय उसी से ज्ञान-चर्चा कर रहे हैं । सम्भवतः मिलिन्द ने ही उसे भेजा है । वह इस ओर शाकल के शासन का प्रतिनिधि है और मगध के साथ मैत्री करना चाहता है । मगध का भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है । मिलिन्द भगवान् तथागत के सिद्धान्तों और उपदेशों को यहाँ आकर सुनना चाहता है । इसी लिए उसने बौद्ध भिक्षु को भेजा है । यह सब तो ठीक है, परन्तु आप क्या कह रहे थे कि विदर्भ-गोप्ता यज्ञसेन आयेंगे नहीं ?'

'जी हाँ, मैं यही निवेदन करने के लिए आया हूँ । विदर्भ से यहाँ कोई आ न सकेगा ।'

'भला क्यों ? कारण क्या है ?'

'कारण भी मैं निवेदन कर चुका हूँ। कलिंग की गजसेना ही कारण है। और मगध तथा कलिंग के बीच अकेला विदर्भ ही तो है।'

'मगध का भविष्य तो बड़ा ही उज्ज्वल और महान् है भद्रघोष ! वह दिन दूर नहीं जब महाराज बृहद्रथ अशोक की भाँति समस्त विश्व में शान्ति और अहिंसा का लोकोपकारी सन्देश प्रचारित करेंगे। मुझे तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। हमारे महाराज असंदिग्ध रूपेण धर्म-विजय करेंगे। आज जिस प्रकार शाकलराज का सन्देश आया है उसी प्रकार एक दिन कलिंगराज का सन्देश भी आयेगा।'

यह कहकर कौंडिन्य ने पुष्यमित्र की ओर एक अर्थपूर्ण दृष्टि डाली। लेकिन पुष्यमित्र चुप बैठा रहा। वह इस सारे नाटक की वास्तविकता को जानता था।

'आयेगा क्यों नहीं प्रभु, अवश्य आयेगा। जब मगध के महामात्य स्वयं कह रहे हैं तो अवश्यमेव आयेगा। लेकिन प्रभु, राजनीति यह कहती है कि हमें आग लगने से पहले ही कुआँ खोद लेना चाहिए। मैं इसी लिए आया हूँ। मेरा विनम्र निवेदन है कि अब विदर्भ के गोप्ता का केवल गोप्ता-पद पर बने रहना उचित न होगा। इससे हानि मगध की ही होगी। मेरा अनुरोध है कि अब महाराज मगधपति को विदर्भ के गोप्ता-पद को अधिक सम्मानित करना चाहिए, विशेष आदर देना चाहिए।'

भद्रघोष का यह वक्तव्य सुनकर पुष्यमित्र चौंक पड़ा। यों वह जानता था कि देर-अबेर भद्रघोष इस तरह का प्रस्ताव करता ही। लेकिन स्वयं उसकी उपस्थिति में महामात्य के समक्ष यह प्रस्ताव इतना शीघ्र रख दिया जायेगा, इसकी उसे जरा भी आशा नहीं थी। इसका तो यही अभिप्राय होना चाहिए कि महामात्य इस सारी योजना में सम्मिलित है, सम्भवतः वही इसका प्रणेता हो और यह भद्रघोष भी इसी लिए आया हो कि उसे हटाया जा सके।

लेकिन कौंडिन्य ने ऐसा अभिनय किया मानो कुछ जनता ही न हो। बिलकुल अनजान की तरह उसने पूछा—विशेष आदर देना चाहिए अर्थात क्या करना चाहिए ? क्या वहाँ विशेष सेना रखी जाये ? महाराज को भला

क्या आपत्ति हो सकती है ? विशेष सेना अवश्य रखी जा सकती है।

'जी नहीं, मेरा अभिप्राय यह कदापि नहीं ! मेरा कहना तो यह है कि देव गोप्ता-पद को गौरवान्वित करें। यही समझ लिया जाये कि मैं आपके पास विदर्भ के गोप्ता के यहाँ से नहीं, महाराज विदर्भराज के यहाँ से आया हूँ।'

कौंडिन्य ने मानो कोई अनहोनी बात सुन ली हो इस प्रकार थोड़ी देर भद्रघोष की ओर कठोर दृष्टि से देखता रहा। तब उसने कहा—भद्रघोष, यह क्या कहा तुमने ? तुम विदर्भराज के यहाँ से आ रहे हो ? कौन है यह विदर्भ-राज ?

'विदर्भराज यानी महाराज विदर्भराज ?' भद्रघोष ने जरा भी घबराये बिना आत्मविश्वास से पूर्ण स्वर में कहा, 'यदि आज आपने विदर्भ के गोप्ता को गौरवान्वित नहीं किया, स्वेच्छा से उन्हे उस प्रदेश का स्वतन्त्र अधिपति स्वीकार नहीं किया, तो मगध का भविष्य अन्धकार-पूर्ण हो जायेगा।'

'तुम्हारे कहने से ?'

'नहीं, मेरे कहने से नहीं। मैंने कलिंग की गजसेना देखी है, उस सेना की सन्नद्धता और गतिविधि को मैं जानता हूँ। उसकी व्यवस्था और शक्ति का परिचय मुझे है; इसलिए मैंने यह बात कही है और पुनः कह रहा हूँ कि यदि विदर्भ स्वतन्त्र हुआ तो वह कलिंग से निपट लेगा। विदर्भ के स्वतन्त्र अधिपति को हटाकर कलिंग का यहाँ दौड़े आना सम्भव नहीं, सरल भी नहीं। लेकिन मगध के गोप्ता को हराते उसे कोई देर न लगेगी। फिर मगध के एक प्रदेश के रूप में विदर्भ पर उसका आक्रमण समूचे मगध पर आक्रमण होगा। लेकिन स्वतन्त्र विदर्भ देश पर आक्रमण करने से पहले उसे हजार बार सोचना होगा। यह डर भी रहेगा कि स्वतन्त्र विदर्भ पर आक्रमण किया तो उसके अड़ोसी-पड़ोसी और हितु-मित्र सहायतार्थ चढ़ दौड़ेंगे। यही सब सोचकर मैंने कहा कि यों समझ लीजिए कि मैं महाराज विदर्भराज की ओर से आ रहा हूँ।'

'लेकिन यह विदर्भराज है कौन ? हम तो किसी विदर्भराज को जानते नहीं !'

'विदर्भ के वर्तमान गोप्ता स्वयं यज्ञसेनदेव ही महाराज विदर्भराज हैं। उनके अतिरिक्त और कौन विदर्भराज हो सकता है !'

महामात्य ने ऐसा नाट्य किया मानो इस बात ने उसे स्तम्भित कर दिया हो। दो क्षण स्तब्ध रहने के बाद उसने आदेशात्मक स्वर में इस प्रकार कहा, मानो मगध का महामात्य रोष प्रकट कर रहा हो। पुष्यमित्र इस सारे नाटक को चुपचाप बैठा देख रहा था।

'भद्रघोष, मगध कोई छोटा-मोटा राज्य अथवा राज्जुक-प्रदेश नहीं है कि वह अपना कोई प्रदेश किसी को यों सौंप दे और स्वतन्त्र हो जाने दे। तुम विदर्भ के स्वतन्त्र अधिपति बन बैठो, यह मेरे जीते-जी तो कभी होने का नहीं। उसके बाद की बात महाराज मगधपति जानें या हमारे यह महाबलाधिकृत जानें। क्यों महाबलाधिकृत पुष्यमित्रदेव, आप कुछ भी क्यों नहीं बोलते ? काश्मीर पृथक् हो गया, लेकिन उसकी स्थिति भिन्न थी, समस्या भी भिन्न थी। देखा-देखी विदर्भ भी पृथक् हो जाये और हम हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहें, ऐसा कभी हो नहीं सकता। सेनानायक भद्रघोष, तुम अपने मन से ऐसे सभी विचारों को निकाल फेंको। मगध के गजराज अभी बलवान हैं।'

'लेकिन कलिंग के हाथी उनसे भी बलवान हैं देव !' भद्रघोष ने प्रत्युत्तर दिया।

'इसका तो यही अर्थ हुआ कि यज्ञसेन कलिंग की सहायता लेकर मगध का सामना करना चाहता है। क्या हम यही समझें ?

'जी नहीं, आपको यह समझना होगा कि कलिंग को मगध पर आक्रमण करने से रोकने के लिए ही विदर्भ शक्तिशाली होना चाहता है। आज तक यज्ञसेनदेव मगध के गोप्ता थे, प्रदेशपति थे। मगध के एक अंग थे। अब वह विदर्भराज हैं, अपने देश के स्वतन्त्र अधिपति, साथ ही मगध के गाढ़े मित्र भी। मगध पर होनेवाले किसी भी आक्रमण का निवारण करने के लिए वह सदैव प्रस्तुत हैं। प्रश्न केवल उनके पद और प्रतिष्ठा के परिवर्तन का है। वह गोप्ता नहीं, प्रदेशपति नहीं, मगध के आज्ञाकारी नहीं, हितैषी है। यों समझिए कि आज्ञाकारी प्रदेशपति के स्थान पर अब वह हितचिन्तक मित्र हैं। बस, बात केवल इतनी-सी ही है, मानना-न-मानना आपकी इच्छा पर निर्भर है।'

'मान लीजिए कि आपका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया तो आप

क्या करेंगे ? ऐसी स्थिति में आपको क्या प्रत्युत्तर देने के लिए कहा गया है ?' अब पुष्यमित्र ने सीधा प्रश्न किया। वह समझ गया था कि इस सारी योजना मे स्वयं उसे पाटलिपुत्र से दूर हटा देने का षड्यन्त्र निहित है। उसके हटाये जाते ही दोनो मिलकर मगधपति को किसी भ्रमजाल में फँसा लेंगे और उसका वध करके सिंहासन पर अपना अधिकार कर लेंगे। कौंडिन्य की सारी योजना का मूल उद्देश्य यही था। इसी लिए पुष्यमित्र ने सीधा प्रश्न किया था जिसमें सही बात का पता चल सके।

'आप नहीं करना चाहते तो आप की मर्जी....' भद्रघोष ने उपेक्षा-भरे स्वर में कहा, 'लेकिन अब हमारे यहाँ आपकी कोई आज्ञा चल नहीं सकेगी। न आपको कोई प्रत्युत्तर ही मिलेगा। परिवर्तन के लिए प्रस्तुत न होकर आप अपनी ही हानि करेंगे, विदर्भराज की मैत्री गँवा बैठेंगे। फिर मगध पर कलिंग का आक्रमण हो या न हो, हमारी बला से। इतना समझ लीजिए कि विदर्भ मगध पर होनेवाले किसी भी आक्रमण का निवारण नहीं करेगा। मगध की दोनो दिशाओं में दो शक्तिशाली शत्रु खड़े हैं और इस बात का विचार करना अब आपका काम है, महाबलाधिकृत !'

'इसका तो यही अर्थ हुआ कि तुम स्थिति से अनुचित लाभ उठाकर राजद्रोह करना चाहते हो। शत्रु कितने ही हों, मगध को उनका डर नहीं। डर तुम्हें होना चाहिए, क्योंकि सम्भवतः तुम राजद्रोह का परिणाम नहीं जानते !'

पुष्यमित्र सहसा उत्तेजित हो उठा था। उसके स्वर में चुनौती भरी हुई थी। कौंडिन्य आनन्दित हो उठा। यह ध्यान में आते ही पुष्यमित्र सावधान हो गया। असल में तो वह इस विवाद मे पड़ना ही नहीं चाहता था।

'जानते हैं।' भद्रघोष ने उत्तर दिया।

'क्या ?'

'कलिंग के हाथों मगध का सर्वनाश और यूनानी आक्रान्ताओं के हाथों प्रजा का सर्वनाश।'

इसके बाद कोई कुछ न बोला। अलिन्द में शान्ति छायी रही। भद्रघोष की इस बात का उत्तर केवल मगधपति ही दे सकते थे। प्रणाली यही थी।

कौंडिन्य ने अन्दर दृष्टि डाली। महाराज बृहद्रथ स्वयं आ रहे थे।

६ : धर्मवादी अधार्मिक

राजा बृहद्रथ की बातें मनोरंजक होते हुए भी किसी क्रूर परिहास से कम न थीं। मगध का महान् राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा है, इस बात को वह जानता था। परन्तु फिर भी उसे अभिनव अभ्युदय के चिह्न दिखाई देते थे। महामात्य के आते ही वह महान् अशोक की 'धर्म-विजय' के किस्से छेड़ देता। उसका खयाल था कि वह स्वयं भी उसी मार्ग पर बढ़ा जा रहा है। महामात्य उसकी इन भ्रान्तियों का पोषण करता और हर प्रकार से बढ़ावा देता रहता था। गप्पें मारने और डींगे हाँकने के दोनो ही शौकीन थे और इस समान व्यसन ने उनकी मैत्री को दृढ़ कर दिया था।

महामात्य कौंडिन्य राजा बृहद्रथ की तारीफों के पुल बाँधता हुआ कहता कि महाराज मगधपति की धर्म-विजय के किस्से पुनः गान्धार, काश्मीर, पारस-देश और उसके आगे तक भी कहे-सुने जाने लगे हैं। यह सुनकर बृहद्रथ फूलकर कुप्पा हो जाता और मान बैठता कि महाराज अशोक की भाँति स्थान-स्थान पर धर्मादेश और धर्म-आज्ञाएँ उत्कीर्ण करवाने और शिलालेख खड़े करवाने का समय आ गया है। वह काकनद (साँची) के चतुर कलाकारों और कारीगरों को बुलाने की बात सोचने लगता, जो चाँदी-सोने के तारो और हाथीदाँत के तन्तुओं के ताने-बाने से सुन्दर-सुन्दर आसन बुनकर देश की कला को उजागर कर रहे थे। उन्हीं से साँची के स्तम्भ बनवाने की बात राजा के मन में थी। इस प्रकार राजा और महामात्य एक-दूसरे के पूरक थे।

परन्तु कौंडिन्य यह भी जानता था कि अब मगध टिका नहीं रह सकता। उसकी एकता कभी की खंडित हो गई थी और अलग-अलग सात हिस्सों मे बँट चुकी थी। प्रदेश केवल नाम के रह गये थे और सभी जानते थे कि काश्मीर मे तो अब मगधपति की कोई बात भी नहीं पूछता। गान्धार में उसकी आज्ञा का कोई मूल्य नहीं रह गया था। कलिंगराज स्वतन्त्र हो ही चुका था। सिन्धु-सौवीर पर बार-बार यूनानियो के आक्रमण होने लगे थे और सागल—शाकल में तो जैसा कि गर्ग-संहिता मे उल्लेख है—सप्त राजानो भविष्यन्ति महाबलाः (सात-सात शक्तिशाली राजा थे)। आन्ध्र हाथ से निकल ही गया

था। और विदर्भ भी साम्राज्य में से निकल जाने की धमकियाँ दे रहा था। परन्तु राजा बृहद्रथ अपने साम्राज्य के विस्तार के सुख-स्वप्न देखने में मग्न था। वह यही मानता था कि सभी प्रदेशों में मगध की धर्म-विजय का विस्तार और स्थापना होती जा रही है। वह नित नयी धर्म-आज्ञाएँ प्रचारित करता रहता और उसे विश्वास था कि सर्वत्र भगवान् तथागत के नाम का आकर्षण और उनके प्रताप की धूम है!

सागल और उसके निकटवर्ती प्रदेश में उन दिनों सात यूनानी प्रदेशपति थे। वे कभी आपस में लड़ते, पर बहुधा साथ मिलकर आगे बढ़ने का प्रयत्न करते थे। अपने सामूहिक प्रयत्नो के बल वे ठेठ मध्यमिका (चित्तौड़) नगरी तक बढ़ आये थे। उनमें से कई भारतवर्ष की संस्कृति से प्रभावित होकर यहाँ के धर्म और दर्शन में गहन रुचि भी लेने लगे थे। मिनेण्डर या मिलिन्द ऐसे ही प्रदेशपतियों में से एक था। वह बड़ा महत्त्वाकाङ्क्षी था और भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहता था और इस दिशा में चुपके-चुपके और धीरे-धीरे प्रयत्न भी कर रहा था। अभी तो उसकी यह आकांक्षा बीज रूप में ही थी, अंकुरित भी नहीं होने पायी थी, क्योंकि सागल में ही उसके और भी प्रतिद्वन्द्वी थे। परन्तु मगध पर उसकी गृद्ध-दृष्टि अभी से पड़ने लगी थी। उसी की प्रेरणा से गान्धार से एक बौद्ध भिक्षु राजा बृहद्रथ के पास उन दिनों धर्म-चर्चा के लिए आया था। वह कई धार्मिक प्रश्न लेकर आया था और धर्मवादी राजा से उनका निराकरण करवाना चाहता था।

राजा बृहद्रथ अन्दर से जब अपने मंत्रणागृह में आया तो उसके साथ वह बौद्ध भिक्षु भी चला आ रहा था। महामात्य ने उसे देखते ही पहचान लिया। उसका नाम भिक्खु लोहन था। गान्धार के श्रेष्ठ और सिद्ध भिक्खुओं में उसका नाम सर्वोपरि था। उसे कई सिद्धियाँ प्राप्त थीं। उसी के भांजे भिक्षु नागसेन के साथ मिनाण्डर ने धर्म-चर्चा की थी, जो बौद्ध वाङ्मय मे 'मिलिन्द प्रश्न' के नाम से प्रसिद्ध है। लोहन इन दिनों अधिकांश पाटलिपुत्र में ही रहने लगा था और राजा बृहद्रथ के साथ धर्म-चर्चा और वाद-विवाद मे संलग्न रहता था।

तेजी से चलता हुआ राजा बृहद्रथ अपने मंत्रणागृह में आया। वह ऊँचा,

गोरा, छरहरा और सुन्दर-सुडौल व्यक्ति था। लेकिन राजसी गौरव और तेजस्विता का उसमें नितान्त अभाव था। उसकी सुन्दरता फीकी और निर्बल प्रतीत होती थी। चेहरे पर स्पष्ट रूप से मूर्खता और अव्यावहारिकता की छाप थी। उसका लम्बोतरा, पतला, गोरा और सूखा-सूखा-सा चेहरा उसकी स्वभावगत उग्रता और उतावलेपन का परिचायक था। उसे देखकर मुद्रा-विज्ञान के जानकार यही कहते कि वह घोड़े-जैसे लम्बोतरे चेहरेवाला मूर्ख है।

तेजी से चलता हुआ वह आया और अपने सिंहासन पर बैठ गया। भिक्खु लोहन से उसने अपने सामने एक आसन पर बैठने के लिए कहा। पुष्यमित्र ने विदर्भ के सम्भावित राजद्रोह की ओर राजा का ध्यान आकर्षित किया था, इसी लिए वह भद्रघोष को उससे मिलाने के लिए लाया भी था, लेकिन राजा की मनोदशा में उसे कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दिया। गम्भीरता तो वहाँ नाम को भी न थी, वैसा ही उतावलापन परिलक्षित हो रहा था। यह देखकर पुष्यमित्र को बड़ी निराशा और दुःख भी हुआ।

जब कुछ स्थिर हुआ तो राजा ने भद्रघोष को सम्बोधितकर कहा—कहो भद्रघोष, कब आये? विदर्भ के क्या समाचार हैं? हमारे शान्ति के धर्म-सन्देश को लोक में प्रसारित करने का कार्य तो वहाँ बराबर हो रहा है न? यहाँ महाबलाधिकृत पुष्यमित्रदेव ने एक महान् सैन्य महोत्सव का आयोजन किया है। उस महोत्सव का प्रयोजन भी यही है। यदि प्रजा के सभी वर्ग शान्तिपूर्वक एक-दूसरे को समझ सकें तो शस्त्रों की शोभा सर्वथा नया रूप धारण कर लेगी, अनुपम दृश्य दिखाई देने लगेगा। वस्तु कोई भी बुरी नहीं, यदि व्यक्ति में समझ हो। हमारा सैन्य-महोत्सव इसी लिए है। महाबलाधिकृत और हम सभी अभी शोक मना रहे हैं, इसलिए महोत्सव का समय कुछ आगे बढ़ाना आवश्यक होगा। लेकिन गोप्ता यज्ञसेन उसमें सम्मिलित होने के लिए आ तो रहे हैं न? उनका आना आवश्यक है।

पुष्यमित्र मन-ही-मन झुँझला रहा था। जब साफ-साफ बात करने की आवश्यकता हो उस समय भी घुमा-फिराकर बोलना और शान्ति के ढोल पीटते रहना उसे नहीं सुहा रहा था। जब राजद्रोह का सन्देश आया हो उस समय शान्ति और अहिंसा की बातें मूर्खता नहीं तो और क्या है!

तभी उसे भद्रघोष का प्रत्युत्तर सुनाई दिया। वह हाथ जोड़कर कह रहा था—महाराज, यज्ञसेनदेव वहाँ से आ नहीं सकते।

'अच्छा! नहीं आ सकते तो कोई हानि नहीं। प्रदर्शन और दिखावे में कुछ नहीं धरा है। असल बात तो लोगों की समझ है। सारा आयोजन इसी-लिए है कि लोग समझ सकें। समझ पैदा करना ही सबसे बड़ा लोकोपकारी कार्य है। क्यों महामात्य, ठीक है न? यज्ञसेनदेव चाहे तो आयें, चाहें तो न आयें। परन्तु सेना तो वहाँ से प्रस्थान कर चुकी है न? कितने हाथी आ रहे हैं? धूम-धड़ाका और प्रदर्शन अवश्य जोरदार होना चाहिए।'

'परन्तु महाराज, न तो यज्ञसेनदेव आ सकते हैं और न सेना ही। कोई सेनानायक भी नहीं आ सकेगा। मैं यही निवेदन करने के लिए आया हूँ।'

'अच्छा? तो क्या तुम भी वहाँ ऐसा ही कोई महोत्सव कर रहे हो?'

भद्रघोष समझ गया कि जब तक स्पष्ट शब्दों में नहीं कहा जायेगा मगध-राज की समझ में कुछ न आयेगा। वह यहाँ से जल्दी ही लौट जाना चाहता था। योजना यह थी कि उसके यहाँ से जाते ही कौंडिन्य मगधराज की हत्या करवा डाले और तब विदर्भराज शासनाधिकार ग्रहण करने के लिए आ पहुँचे। उसके चेहरे पर यही भाव परिलक्षित हो रहे थे। पुष्यमित्र उसके एक-एक भाव-परिवर्तन को ध्यान से देख रहा था। वह जल्दी भागना चाहता था और इसलिए पुष्यमित्र ने निश्चय कर लिया था कि वह उसे यहाँ से जाने न देगा।

और उधर बृहद्रथ कहे जा रहा था—यदि कोई आ नहीं सकता तब भी कोई हानि नहीं। परन्तु वहाँ जो आटविक हैं उन्हें भी प्रेम से समझा-बुझाकर ही अपने वश में करना चाहिए, शस्त्रास्त्रों के द्वारा नहीं। प्रायः होता यह है कि वह एक बात को अपने ढंग से समझते हैं और हम अपने ढंग से, और इसी कारण झगड़ा उठ खड़ा होता है। तात्पर्य यह कि महत्त्व समस्या का नहीं, समझ का है। इसलिए यह आवश्यक है कि यज्ञसेनदेव आटविकों से प्रेमपूर्वक मिलते रहें। सेना भी अवश्य साथ में रखें, लेकिन कोई प्रश्न हो तो उसे प्रेमपूर्वक ही निपटायें। क्या यज्ञसेनदेव यहाँ इसी लिए नहीं आ सकते कि वहाँ आटविकों की समस्या है?

'नहीं महाराज, यह बात नहीं है।' भद्रघोष ने प्रत्युत्तर दिया, 'देव मेरी बात को ठीक से समझ नहीं सके।'

'वाह, क्या बात कही है, भद्रघोष, तुमने ! हमें एक-दूसरे के विचारों और वक्तव्यों को भली प्रकार समझना चाहिए। आनन्द तो पारस्परिक समझ में ही है....'

पुष्यमित्र का इन मूर्खतापूर्ण बातों को सुनकर खून खौलने लगा था। महामात्य कौंडिन्य मन-ही-मन मुदित हो रहा था। भिक्षु लोहन शान्तिपूर्वक बैठा सुन रहा था।

'तुम अपनी बात हमें ठीक से समझाओ।'

'बात बड़ी संक्षिप्त है देव....'

'सत्य सदैव संक्षिप्त होता है; विस्तार से तो वक्तव्य में वक्रता आ जाती है। तुम हमें अपनी बात समझाओ।'

'बात इतनी-सी है देव, कि विदर्भ के गोप्ता यज्ञसेन अपने-आपको गोप्ता नहीं मानते।'

'बस, इतनी-सी बात है ! यह तो और भी अच्छा है। यदि हमारे राज्याधिकारी अधिकार का गर्व छोड़ दें और लोक-सम्पर्क का नया अधिकार स्थापित कर सकें तो सारा झगड़ा ही समाप्त हो जाये। अच्छा, यज्ञसेनदेव अब स्वयं को गोप्ता के स्थान पर क्या कहलवाना चाहते हैं ?'

'विदर्भराज !' भद्रघोष का संक्षिप्त उत्तर रूखा और कठोर हो गया था।

मगधराज ने अपना सिर खुजलाते हुए सेनापति पुष्यमित्र की ओर देखा और कहा—महाबलाधिकृत, आप इसी के लिए हमसे मिलना चाहते थे ? इसमें ऐसी क्या बात है ? हमें तो कोई नयी बात मालूम नहीं पड़ती। क्यों भद्रघोष, विदर्भराज शब्द मे क्या कोई नयी बात है ?

'जी हाँ, देव ! नयी बात केवल इतनी है कि....' पुष्पमित्र ने कुछ झुँझलाकर कहा। उसका सारा धैर्य समाप्त हो चुका था और वह यह देखकर व्यग्र हो उठा था कि मगधपति को अपने पद-मर्यादा और गौरव का रंच-मात्र भी ध्यान नहीं। इसलिए उसने साफ-साफ शब्दों में कहा, 'यज्ञसेनदेव आज तक हमारे गोप्ता थे, मगध के प्रदेशपति थे और अब लोकपति बन गये हैं।'

'अर्थात् लोगों से अधिक हिलेंगे-मिलेंगे, यही न ? तो भले ही स्वयं को लोकपति कहलवायें....इसमें ऐसी क्या बात है !'

पुष्यमित्र ने पुनः राजा को समझाने का प्रयत्न किया। उसकी व्यग्रता देखकर कौंडिन्य मुदित हो रहा था। वह जानता था कि अन्ततः राजा बृहद्रथ पुष्यमित्र से ही कहेंगे कि अच्छा, यदि ऐसी बात है तो तुम्हीं यज्ञसेनदेव को समझाने के लिए जाओ !

पुष्यमित्र ने कहा—बात यह है प्रभु, कि अब विदर्भ मगध को अपना अधिपति नहीं मानता। विदर्भ अब मगध के अन्तर्गत मगधराज का प्रदेश नहीं रहा। यज्ञसेनदेव प्रदेशपति या गोप्ता नहीं रहे। वह हो गये विदर्भ देश के स्वतन्त्र राजा; इसी लिए वह अपने-आपको विदर्भराज कहलवाना पसन्द करते हैं। इसी आशय का सन्देश उन्होंने भेजा है। भद्रघोष ने आपके समक्ष यही निवेदन किया है। यह तो साफ-साफ राजद्रोह हुआ। हमें इसका प्रत्युत्तर देना चाहिए।

'अच्छा, यह बात है ! क्यों भद्रघोष, तुम यही कहना चाहते हो ? आनन्द इसी में है कि हम परस्पर एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ सकें। हमें अशान्ति नहीं चाहिए; राजद्रोह भी हम नहीं चाहते। दूसरे स्वतन्त्र होना चाहें तो खुशी से हों, प्रसन्नतापूर्वक अपनी स्वतन्त्रता की स्थापना करें। स्वतन्त्र होने से ही कोई हमारा शत्रु थोड़े हो जाता है, मित्र तो वह रहेगा ही।'

यह उत्तर भद्रघोष के सर्वथा अनुकूल था, इसी लिए उसने शीघ्रतापूर्वक कहा—जी हाँ, यही तो मैं तब से महाबलाधिकृत को समझा रहा हूँ। कलिंग ने आप पर आक्रमण किया तो....

'अब हमें ऐसी व्यवस्था स्थापित करनी चाहिए कि कलिंग या कोई भी किसी पर आक्रमण न कर सके।'

'परन्तु महाराज, यह तो साफ-साफ राजद्रोह हुआ।' सेनापति पुष्यमित्र ने गम्भीरतापूर्वक कहा, 'विदर्भ भी काश्मीर की भाँति अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर रहा है। यज्ञसेनदेव अब हमारे प्रदेशपति नहीं रहना चाहते, वह अपने प्रदेश के स्वतन्त्र, सार्वभौम राजा बन रहे हैं। बात बड़ी....'

'फिर तो आपको ही वहाँ जाना चाहिए महाबलाधिकृत ! आप स्वयं

जाकर यज्ञसेनदेव को समझाइए। बात ठीक से उनकी समझ में नहीं आ रही है। इस तरह तो सब बँट जायेंगे, बिखर जायेंगे। सब दुःखी होंगे। और हम नहीं चाहते कि हमारे राज्य में कोई दुःखी हो। जो भटक रहे हैं उन्हें समझाना और सुराह पर लाना हमारा कर्त्तव्य है। इसलिए पुष्यमित्रदेव, आप तत्काल चले जाइए। आनन्द पारस्परिक समझ मे ही है।'

'अहा-हा, क्या बात कही है महाराज ने! मेरा भी ठीक यही कहना है देव!' अब इतनी देर बाद कौंडिन्य बोला। उसके नेत्रों में क्रूर व्यंग्य की झलक थी। 'महाबलाधिकृत, महाराज ने यथार्थ ही कहा है कि आनन्द पारस्परिक समझ में है। महाराज का यह सूत्र शीघ्र ही विश्वव्यापी होगा। आप यज्ञसेनदेव को समझाने के लिए चले जाइए... भद्रघोष भी अब जा सकते हैं....'

'परन्तु महामात्य देव, यह तो स्पष्ट राजद्रोह है और हम राजद्रोह को इतने हलके ढंग से....'

'कठोरता अनुचित है पुष्यमित्रदेव! महाराज अशोक कह गये हैं कि हमें कठोरता को अपने जीवन में कभी प्रश्रय नहीं देना चाहिए। कठोरता हम कर नहीं सकते, करना चाहते भी नहीं....'

'वाह, क्या बात कही है महाराज ने! मेरा भी ठीक यही कहना है देव!' कौंडिन्य ने पुनः कहा।

इस ठकुरसुहाती ने पुष्यमित्र के तन-बदन में आग लगा दी। उसे कौंडिन्य के नेत्रों में प्रवंचना और धूर्तता का महासागर हिलोरें लेता दिखाई दिया। वह समझ गया कि मैं जितनी ही दृढ़ता और स्पष्टता से प्रयत्न करूँगा धूर्त महामात्य और मूर्ख राजा उतना ही वाद-विवाद कर बात को उलझाते जायेंगे। राजा को अशोक का अन्धानुकरण और ढोंग करने में मजा आ रहा था और महामात्य अपने षड्यन्त्र की सिद्धि चाहता था। इसलिए पुष्यमित्र ने बात बढ़ाने के बदले उसे वहीं समाप्त कर देना उचित समझा।

उसने कहा — ठीक है, मुझे महाराज की आज्ञा शिरोधार्य है। पिता श्री फल्गुदेव का शोक समाप्त होते ही मैं यज्ञसेनदेव को समझाने के लिए विदर्भ चला जाऊँगा। अवश्य ही उन्होंने स्थिति को गलत समझ लिया है।

'साधु, पुष्यमित्रदेव, साधु ! सच्चा मार्ग यही है । यदि आवश्यकता हुई तो हम भी वहाँ जायेंगे । क्या महाराज अशोक तक्षशिला नहीं गये थे? यज्ञसेन-देव यहाँ भले ही न आयें, हम ही वहाँ जायेंगे ।'

'थोड़े ही दिनों बाद, जैसे ही सैन्य-महोत्सव हो जाये....' पुष्यमित्र ने कहा ।

'सैन्य-महोत्सव को स्थगित ही क्यों न कर दिया जाये ?' कौंडिन्य ने कहा ।

'परन्तु अधिकांश प्रादेशिक सेनाएँ तो यहाँ के लिए प्रयाण कर भी चुकी हैं... कुछेक सेनापति पहुँच भी गये हैं....'

'तो हो ही जाये महोत्सव भी ।' राजा बृहद्रथ ने कहा ।

'तो भद्रघोष को यही प्रत्युत्तर दे दिया जाये और वह जाना चाहें तो जायें ।'

'बिलकुल ठीक । भद्रघोष जा सकते हैं ।'

'हाँ, हाँ ! भद्रघोष भले ही जायें ।' पुष्यमित्र ने भी सबकी हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहा ।

७ : पुष्यमित्र का निर्णय

पुष्यमित्र ने जान-बूझकर बात को शीघ्रतापूर्वक समाप्त किया था । बहस बढ़ाने में उसे कोई लाभ नहीं दिखाई दिया । कुछ अपने गुप्तचर दुर्वाक के समाचारों से और कुछ स्वयं अपने निरीक्षण-पर्यवेक्षण के द्वारा वह यह तो जान ही गया था कि महामात्य की योजना उसे विदर्भ भेजने की है, जिसमें मगध के सिंहासन को हस्तगत करने की उनकी योजना पूर्ण हो सके । षड्यन्त्रकारी उसकी अनुपस्थिति का उपयोग बृहद्रथ का वध करने में करना चाहते थे । शायद समझौता यह हुआ था कि विदर्भ को स्वतन्त्र राज्य और यज्ञसेन को वहाँ का सार्वभौम राजा स्वीकार कर लिया जाये और वह उस ओर से, अपनी शक्तिशाली सेना के बल पर, किसी को पाटलिपुत्र की ओर न आने दे । बृहद्रथ का उसी के अपने महल सुगंगप्रासाद में वध कर दिया जाये और कौंडिन्य पहले तो शासन कार्य चलाते रहने का ढोंग करे, फिर बृहद्रथ का उत्तरा-

धिकारी ढूँढ़ने का दिखावा करे और अन्त में स्वयं मगध का राजा बन बैठे ! यज्ञसेन के साथ-साथ महामात्य ने यूनानियों के साथ भी कोई-न-कोई गुप्त समझौता अवश्य किया होगा। क्योंकि वह कभी नहीं चाहेगा कि बृहद्रथ की हत्या और अपने सिंहासनारूढ़ होने के संक्रमण काल में कोई सेना या आक्रान्ता पाटलिपुत्र की ओर बढ़े।

लेकिन यह सारी योजना बनी कब ? निश्चय ही उस समय बनी होगी जब पुष्यमित्र पिता की रुग्ण-शय्या के पास उनकी सेवा-शुश्रूषा में लगा था। षड्यन्त्रकारियों की इस योजना का जितना दारोमदार स्वयं उस पर था उतना ही भद्रघोष पर भी। इसलिए पुष्यमित्र ने पक्का निर्णय कर लिया कि वह भद्रघोष को विदर्भ लौटने न देगा; उसे यहीं बन्दी बना लेगा।

अब खोने के लिए एक क्षण का भी समय उसके पास नहीं था। जो भी करना है शीघ्र और अविलम्ब करना होगा। इसलिए वह उठा, महाराज को प्रणाम किया और त्वरित गति से बाहर निकल आया।

घर की ओर चला तो उसके मन में तरह-तरह के विचार चक्कर लगा रहे थे।

आज उसकी रही-सही आशा भी नष्ट हो गई थी। वह राजा बृहद्रथ को मगध के महान् साम्राज्य की उदात्त कल्पना से अनुप्राणित करना चाहता था। उसे आशा थी की वह अपने प्रयत्न में देर-अबेर सफल होकर रहेगा। आज तक वह इसी दिशा में प्रयत्न करता आया था। इसी आशा के वशीभूत वह अपने पिता की अन्तिम अभिलाषा को मान्यता देने से हिचकिचा रहा था। लेकिन आज उसकी सारी आशा नष्ट हो गई थी। उसने देख लिया कि अब कोई शक्ति राजा बृहद्रथ को बचा नहीं सकती। राजा स्वयं अपने विचारों और कृत्यों के द्वारा पतन के गहरे गर्त में लुढ़का चला जा रहा था। मगध की महान् परम्परा को वहन करने की उसमें सामर्थ्य ही नहीं थी। पुष्यमित्र को अपने पिता की कही बात याद हो आई। कितना सच कहा था उन्होंने ? मगध के राजा का विनिपात कोई भी जब चाहे कर सकता है। कितनी भयकर और चिन्त्य स्थिति हो गई थी ! फिर उसे भगवान् पतंजलि के शब्द स्मरण हो आये। उन्होंने कहा था—मगधपति का यदि तुमने वध नहीं किया तो कोई भी उसका

वध कर डालेगा। लेकिन तब जो अव्यवस्था होगी वह समूचे देश को विनाश के मार्ग पर घसीटकर ले जायेगी....और दैवदुर्विपाक से ऐसा हुआ तो भगवान् चाणक्य का सारा स्वप्न ही नष्ट हो जायेगा। एक केन्द्रीभूत शासन-प्रणाली का नाश हो जायेगा। विदेशी आक्रमणकारियों की बन पटेगी। सारा देश छोटी-छोटी इकाइयों मे बँट जायेगा। प्रादेशिकता का बोल-बाला होने लगेगा। भारतवर्ष की युगों-पुरानी संस्कृति और एकता की भावना नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगी। विश्व के सांस्कृतिक गुरु का गौरवशाली पद भारत से छिन जायेगा!

भगवान् पतंजलि ने बिलकुल सच कहा था कि आज अवसर है और यदि तुम चाहो तो भारत को बचा सकते हो। कल तो अवसर हाथ से निकल जायेगा। जरा-सा भी विलम्ब देश में सर्वनाश और आन्तरिक कलह की ऐसी अग्नि प्रज्वलित कर देगा जिसे बुझाते वर्षों बीत जायेंगे और फिर भी केवल राख हाथ लगेगी। आज अवसर है और विनाश लीला को रोका जा सकता है और प्रकृति ने वह अवसर तुम्हें दिया है पुष्यमित्र, तुम्हें....

इसी तरह सोचता-विचारता पुष्यमित्र अपने भवन के समीप आ पहुँचा। उसने यह तो पक्का निर्णय कर ही लिया था कि वह भद्रघोष को विदर्भ कदापि नहीं लौटने देगा, यहीं बन्दी बना लेगा।

अपने भवन के आगे आकर उसने चारों ओर देखा। उसे एक शिविका राजमार्ग पर होकर राज-अतिथिगृह की ओर जाती दिखाई दी। वह शिविका भद्रघोष की थी। अतिथिगृह मे पहुँचने के तत्काल बाद ही यह विदर्भ के लिए चल पड़ेगा। यदि उसे रोकना है तो अभी ही रोकना होगा। उसने किसी विश्वस्त अनुचर की खोज मे अपने आस-पास देखा। अनुचर तो वहाँ कोई भी नहीं था। महाबलाधिकृत-भवन के मुख्य द्वार के आगे पारे की तरह चंचल एक तेजस्वी किशोर खड़ा था। उसके हाव-भाव से ऐसा लग रहा था, मानो उसके पास कोई महत्त्वपूर्ण समाचार हों और वह खड़ा किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो।

कहीं मेरी ही प्रतीक्षा तो नहीं कर रहा—पुष्यमित्र ने भद्रघोष की शिविका की ओर देखते हुए सोचा और उस किशोर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित

करने के लिए कमर में बँधा हुआ एक छोटा-सा शंख बजाया।

किशोर ने चौंककर पुष्यमित्र की ओर देखा और संकेत पाते ही वहाँ दौड़ा आया।

आगन्तुक किशोर तड़ित्-रेखा की भाँति चपल और तेजस्वी था। ऐसा प्रतीत होता था मानो उसकी शिराओं में रुधिर नहीं उत्साह और आवेग प्रवाहित हो रहा है। खरे हीरे-जैसी चमकीली आँखों में अनोखा आलोक जगमगा रहा था। वह उछाह, प्रेरणा और कर्मशीलता की साक्षात् मूर्ति प्रतीत होता था। उसका रूप अद्वितीय, उसकी स्फूर्ति उल्लासप्रद और उसकी तेजस्विता मनोरम थी। देखते ही भूख मिटने का मुहावरा उस पर सोलहो आने चरितार्थ होता था। निराशा और निरुत्साह तो उसके समीप फटकने भी न पाते। बूढ़े भी उसको देखकर घड़ी-भर के लिए अपना बुढ़ापा भूलकर जवान हो जाते।

वह चपल बछेरे की भाँति वहाँ दौड़ा आया और अपने हुलसते हुए स्वर में उमंगपूर्वक बोला—दादाजी, आपने मुझे बुलाया?

उसके पूछने का ढंग कुछ ऐसा था, मानो एक क्षण भी निष्क्रिय नहीं रह सकता, रहना चाहता ही नहीं।

पुष्यमित्र ने उसे वात्सल्यपूर्वक छाती से लगाते हुए कहा—हाँ वसु, तेरे ही जैसा एक काम आ पड़ा है। और तो कोई उसे कर न सकेगा।

'तो जल्दी बताइए दादाजी! मुझे दो-तीन काम और भी करने हैं।'

'अरे वसु,' पुष्यमित्र ने स्नेहपूर्वक कहा, 'तू तो बड़ा कामकाजी लगता है! इस तरह कह रहा है मानो मगध राज्य के अनेक जटिल कार्य तुझी को करने पड़ रहे हों। मगध का महाबलाधिकृत अब तुझी को होना चाहिए। तू कहे तो मैं निवृत्त हो जाऊँ।'

'होगा दादाजी, एक दिन वह भी होगा। आपका पद मुझी को तो सँभालना होगा। आप अश्वमेध-यज्ञ कर रहे होंगे तब मुझी को न महाबलाधिकृत बनना पड़ेगा।'

'अरे बेटा, यह तू क्या कह रहा है? अश्वमेध-यज्ञ? यह तुझसे किसने कह दिया?'

हुलसते हुए वसुमित्र ने अपना मुँह पुष्यमित्र के कान से सटाकर कहा—देखिए दादाजी, किसी से बताइएगा नहीं ! वह जो महर्षियों-जैसे एक विद्वान् अतिथिदेव आये हुए हैं न, वही कह रहे थे कि एक दिन या तो तेरे दादाजी को अर्थात् आपको अश्वमेध-यज्ञ करना होगा और यदि उन्होंने नहीं किया तो फिर तुझे अर्थात् मुझे करना होगा। सुनकर हँसी आती है न ? पर सच, उन्होंने ऐसा ही कहा और मुझसे आग्रहपूर्वक पूछ रहे थे कि बता, करेगा या नहीं ? यहाँ तो अश्वमेध-यज्ञ कोई करता नहीं। मगधपति की निषेधाज्ञा है। फिर उन्होंने ऐसी बात क्यों कही दादाजी ?

पुष्यमित्र अपने पौत्र को अश्वमेध-यज्ञ की निषेधाज्ञा का सारा पुरातन इतिहास सुनाने जा ही रहा था कि उसे सहसा याद हो आया, अरे, मैंने तो इसे भद्रघोष के लिए बुलाया था। उसने एकदम मुड़कर राजपथ की ओर देखा। उस पर भद्रघोष की शिविका प्रति क्षण दूर होती हुई अब भी राज-अतिथिगृह की ओर चली जा रही थी। शिविका से उतरकर उसके केवल अश्व पर बैठने की देर है, फिर तो वह पहुँच के परे हो जायेगा। विदर्भ के तीव्रगामी अश्व को पकड़ पाना कदापि सम्भव न होगा। जो कुछ जानना था उसे तो वह जान ही चुका था। यहाँ की स्थिति का आकलन उसने कर ही लिया होगा। कौंडिन्य ने उसे सारी बातें समझा ही दी होंगी। प्रत्युत्तर उसे मिल ही गया है। प्रस्थान की अनुमति भी मिल गई है। फिर वह क्यों रुकने लगा ?

पुष्यमित्र ने यह सब सोचकर वसुमित्र के माथे पर हाथ फेरते हुए कहा—वसुमित्र, तू उस जाती हुई शिविका को देख रहा है न ?

'जी हाँ, वह तो महाराज के सुगंगप्रासाद के समीपवाले राज-अतिथिगृह की ओर जाती हुई प्रतीत होती है। क्या आदेश है उसके बारे में दादाजी ?'

'तुझसे हो सकेगा ?'

'हो क्यों नहीं सकेगा ? ऐसा क्या है जिसे मैं नहीं कर सकता ? बताइए, क्या है उस शिविका में ?'

'हम अभी तक महाराज के पास उनके मंत्रणागृह में थे। इस शिविका में बैठकर जो जा रहा है उस व्यक्ति का नाम भद्रघोष है। वह भी वहीं था। विदर्भ से आया है। राज-अतिथिगृह में ठहरा हुआ है। हो सकता है कि

वहाँ उसके साथ के अश्वारोही भी हों। वह तत्काल विदर्भ लौट जाना चाहता है। बड़ी जल्दी में है। लेकिन उसे रोकना होगा। हम अभी उसे यहाँ से जाने नहीं देना चाहते।'

'ओ हो, तो इसमें क्या धरा है! अभी दौड़ा जाकर उससे कह आता हूँ। या ठहर जाइए। वह रहा मेरा अश्व तेजरस। उस पर बैठकर यह गया और वह आया। यह काम तो यों चुटकी बजाते हो जायेगा। बस यही न, या और कुछ?'

'नहीं वसुमित्र, ऐसे नहीं! उसके साथ और भी अश्वारोही होंगे। शायद न भी हों। आया तो वह अकेला ही है। यही उसने हमसे कहा है। आजकल तो यह पता लगाना असम्भव ही है कि कौन अकेला आया है और कौन किसके साथ! परन्तु जो भी हो, तू दौड़ा जा। घोडे पर नहीं, यों ही पैदल। राज-उद्यान में जाना। चुपचाप! किसी को पता न चलने पाये। लेकिन जायेगा किधर से? पीछे के मार्ग से जाना। जानता है न?'

'जी हाँ, जानता क्यों नहीं हूँ। पीछे की ओर एक गुप्त मार्ग है। मैंने देखा है। एक बार पिताजी के साथ गया था। जैसा उन्होंने कहा, वही मैंने किया। चुपचाप जाकर अतिथिगृह में बैठ गया। यवनराज का कोई गुप्तचर ज्योतिषी बनकर आया था। उसे यों चुटकी बजाते मैंने ही तो नीचे के तल-घर में धकेला था दादाजी!'

'अरे वाह, तब तो तू सब-कुछ जानता है। इस भद्रघोष को भी अतिथि-गृह के नीचेवाले तलघर में धकेल देना है।'

'धकेलकर यन्त्र बन्द कर दूँ न?'

'हाँ, अवश्य। और फिर तू यहाँ लौट आना। मैं भगवान् पतंजलि के पास मिलूँगा। वहीं बैठा तेरी प्रतीक्षा करता रहूँगा। लेकिन उसके साथ और भी अश्वारोही हुए तो तू क्या करेगा?'

'करना क्या है! अतिथिगृह तो आपने भी देखा ही है। पिछवाड़े की ओर से आदमी उसमें चुपचाप प्रवेश कर सकता है। किसी को पता भी नहीं चलेगा। दीवाल में जो गुप्त-द्वार है मैं उसी से प्रवेश करूँगा। अतिथि देवता क्या कर रहे हैं, कैसे बैठे हैं, सब देख-भाल लूँगा और दूसरे ही क्षण उन्हे

बड़े आराम से तलघर मे पहुँचा दूँगा। फिर दरवाजा बन्द हो जायेगा और जब खोलना चाहूँगा तभी खुलेगा। इस काम को निपटाने के बाद मैं अतिथि देवता के अश्वारोहियों से कहूँगा कि जाइए, आपको महामात्य कौंडिन्य ने बुलाया है। सुनते ही वे दौड़े जायेंगे। बाद मे जो होगा वह देखा जायेगा। बस ठीक है न ? यदि आपको कुछ कहना हो तो शीघ्र कहिए। वह देखिए, शिविका राज-उद्यान के निकट पहुँच ही रही है।'

'बस बेटा, तुझे इतना ही काम करना है। किसी को भनक भी नहीं पड़नी चाहिए। सब-कुछ एकदम चुपचाप हो जाना चाहिए।'

'भनक क्या पड़ेगी, किसी को कानोंकान खबर भी न होने पायेगी।'

'तेरे पिताजी को भी नहीं!'

'जी नहीं, लेकिन दादाजी....'

'केवल अभी पता नहीं चलना चाहिए, आगे तो सब-कुछ उन्हीं को करना है। लेकिन तुझे दूसरा कौन-सा काम था ?'

'महाराज का प्रधान अंगरक्षक मित्रदेव पिताजी से मिलना चाहता था?'

'क्यों ?'

'मैंने पूछा तो था, लेकिन उसने कुछ बताया नहीं। कह रहा था कि या तो पिताजी से कहा जा सकता है या दादाजी से; किसी तीसरे से नहीं। फिर मैंने भी आग्रह नहीं किया।'

'लेकिन बात क्या है ?'

'कुछ-न-कुछ तो होगी ही। अत्यन्त गुप्त और महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। हाँ, सुगंगप्रासाद के सम्बन्ध में कुछ है। मैं बाद में पता लगाकर आपको बतला दूँगा। अभी तो जाता हूँ उस शिविका के पीछे। कहीं आँखों से ओझल न हो जाये।' और वसुमित्र दौड़ता हुआ वहाँ से चला गया।

पुष्यमित्र उसे जाते हुए देखता रहा और फिर मन-ही-मन बोला—अग्निमित्र के सम्बन्ध मे तो कुछ कहा नहीं जा सकता, लेकिन उसका यह कुमार एक दिन अवश्य मगध का उद्धार करेगा। यवन आक्रमणों से यह भारत की रक्षा भी अवश्यमेव करेगा। भगवान् इसे दीर्घायु करें....कैसा बुरा समय आ गया है कि गुप्तचरों पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता। आज मुझे अपने

ही कोमलमति पौत्र से गुप्तचर का काम लेना पड़ रहा है ! घोर कलियुग है ! जब कोई किसी का विश्वास न कर सके उसी को तो कलियुग कहेंगे !

और इसके बाद पुष्यमित्र भगवान् पतंजलि से मिलने के लिए चला गया।

८ : मार्गदर्शन

पुष्यमित्र ने अपना निर्णय तो कर ही लिया था, फिर भी वह भगवान् पतंजलि के पास मार्गदर्शन के लिए जा रहा था। उसका हृदय अपार शोक से व्यथित हो रहा था। मगध-जैसे महान् राज्य को विनाश से बचाने के लिए उसके राजा का ही वध करना पड़े, इससे भयंकर और विषम परिस्थिति और क्या हो सकती थी ! या तो राजा का वध करे या देश को विनाश के अतल गर्त में लुढ़क जाने दे ! अव्यवस्था, अराजकता और अशान्ति, या राजा का वध—इन दो के अतिरिक्त और कोई मार्ग न था। मगध की रक्षा के लिए मगधपति का वध करना ही होगा !

लेकिन मगधपति का वध, जिसे स्वयं उसने अपने बच्चे की भाँति पाल-पोसकर बड़ा किया ! सभी जानते थे कि वह मगध का बलाधिकृत ही नहीं, मगधपति का गुरु और पथ-प्रदर्शक भी था। उसने मगध की महान् परम्पराओं का गौरव उसमें जगाने का प्रयत्न किया था और उसे आशा थी कि एक दिन उसका श्रम सार्थक होगा। लेकिन आज उसकी सारी आशाएँ मिट्टी में मिल चुकी थीं। या तो देश को बचाया जा सकता था या व्यक्ति को। लेकिन देश को बचाने के प्रयत्न मे क्या उसे अपने पुत्र-जैसे राजा की ही हत्या करनी होगी ? और क्या वह कर सकेगा ? मगधपति का वध वह कैसे करे ? किस तरह उसे मौत के घाट उतारे ?

बहुत सोचने पर भी कोई उपाय उसकी समझ में न आया। रह-रहकर यही विचार आता था कि यावच्चन्द्रदिवाकरौ उसके नाम पर कलंक का टीका लग जायेगा। सारा नगर इस बात को जानता था कि जब तक महाबलाधिकृत पुष्यमित्र है कोई मगधपति बृहद्रथ का बाल भी बाँका नहीं कर सकता। नहीं तो सुन्दर नारियों के रसिक, विषयलोलुप बृहद्रथ को मारना किसी के भी लिए बड़ी बात नहीं थी। सूर्यास्त से पहले ही उसका वध किया जा सकता था।

ऐसी ही एक रूप-ललना माद्री नामक यूनानी यवनसुन्दरी के रूपजाल और उसके प्रति राजा की आसक्ति की बात समूचे नगर को मालूम थी। वह सुन्दरी पेशे से नर्तकी थी। राजा उसके मोहपाश मे पड़ा हुआ था। जाननेवाले जानते थे कि महामात्य कौंडिन्य उसे राजा का वध करने के उद्देश्य से ही महलों में लाया है।

लेकिन पुष्यमित्र ने ऐसे सभी रूपजालों और मोहपाशों से राजा की रक्षा करने के लिए अपने पुत्र अग्निमित्र को राजा का प्रधान अंगरक्षक नियुक्त किया था। इस तरह राजा की सुरक्षा का प्रश्न स्वयं पुष्यमित्र की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न भी था। अब उसी पुष्यमित्र को राजा की हत्या के लिए प्रस्तुत होना पड़े, यह परिस्थिति का क्रूरतम व्यंग्य ही तो कहा जायेगा।

और हत्या करे कैसे? क्या अग्निमित्र कर्त्तव्यपालन में अपने प्राणो की बाजी नहीं लगा देगा? रक्षा का दायित्व अपने पर रहते हुए क्या वह सरलता से राजा की हत्या हो जाने देगा?

इन्हीं बातों को सोचता-विचारता पुष्यमित्र महामुनि पतंजलि से मिलने के लिए पहुँचा।

जब वह पहुँचा तो महामुनि ध्यान में मग्न अपने आसन पर बैठे हुए थे। सम्भवतः वह शब्दों की व्युत्पत्ति और उनके विकास के बारे मे विचार कर रहे थे, या हो सकता है कि देववाणी संस्कृत के शब्दों के रूप उनके मन मे गूँज रहे हों! आहट पाते ही उन्होंने आँखें खोलकर पुष्यमित्र की ओर देखा। उसकी चाल से ही वह समझ गये कि आज राजमहल मे अवश्य ही कुछ-न-कुछ अघटित घटा है।

पुष्यमित्र ने समीप आकर गुरुदेव को प्रणाम किया और चुपचाप एक आसन पर बैठ गया!

उनका संकेत पाकर पुष्यमित्र ने कहा—देव, जैसा आपने कहा था वही हुआ। मगधपति को कोई बचा नहीं सकता। अपने विनिपात को वह स्वयं ही आमंत्रित कर रहा है। उसे एक कौडिन्य छोड़ किसी की कोई बात सच नहीं प्रतीत होती। कौंडिन्य का वह अन्धभक्त है और उसकी हर बात को वेद वाक्य की तरह सच मानता है। वह मूर्ख यह देख नहीं पाता कि कौंडिन्य उसके

विनाश के बीज बो रहा है। दूसरों की सलाह सुनने तक की बुद्धि उसमें नहीं। उसका विनाश अनिवार्य है। लेकिन आश्चर्य तो यह कि उसे अभ्युदय का अरुणोदय दिखाई देता है।

'इसमें आश्चर्य की तो कोई बात नहीं है वत्स ! मैंने तुझसे कहा ही था कि मगध को बचाना हो तो महाबलाधिकृत फल्गुदेव की अन्तिम इच्छा का पालन करना ही होगा। और तो कोई उपाय नहीं है। अच्छा, यह बताओ कि राजमहल मे क्या हुआ ? कौडिन्य ने क्या कहा ? राजा क्या बोला ? विदर्भ के बारे में कोई दृढ़ निश्चय हुआ या नहीं ?'

'निश्चय वहाँ होना ही क्या था देव ? विदर्भ के यज्ञसेन ने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली है कि वह मगध की जरा-सी भी परवाह नहीं करता। महोत्सव में सेना भेजने के हमारे आदेश को उसने बिलकुल ठुकरा दिया। एक सैनिक तक तो भेजा नहीं और न भेजना चाहता है। जानते हैं उसने तर्क क्या दिया ?'

'क्या ?'

'उसका कहना है कि कलिंगराज की शक्ति दिनोंदिन बढ़ती जाती है। देर-सबेर वह मगध पर आक्रमण करेगा ही। और केवल एक स्वतन्त्र और सार्वभौम विदर्भ ही कलिंग से मगध की रक्षा कर सकता है। मगध के एक प्रदेश के रूप में विदर्भ कभी कलिंग से मगध को बचा नहीं सकता इसलिए....'

'विदर्भ को स्वतन्त्र कर दिया जाये, यही न ?'

'जी हाँ, और यज्ञसेन को विदर्भ का राजा स्वीकार कर लिया जाये।'

'पुष्यमित्र, यवन निरन्तर आगे बढ़ते आ रहे हैं। काश्मीर, सागल और गान्धार से बढ़ते-बढ़ते वे चित्रकूट और ठेठ अयोध्या तक पहुँचने लगे हैं। इधर महान् मगध का अंग-भंग हो रहा है। अवन्ती और विदर्भ पृथक् होने की तैयारियाँ कर रहे हैं। कल दूसरे प्रदेश भी सम्बन्ध-विच्छेद कर लेंगे। फिर मगध के पास रह ही क्या जायेगा ? और यह सब हो रहा है एक व्यक्ति की निर्बलता और अक्षमता के कारण। तुम उसे कब तक निभाते रहोगे ? सर्वनाश होने तक भी क्या तुम्हारी आँखें नहीं खुलेंगी ?'

पुष्यमित्र कुछ देर सोचता रहा और तब शोकमग्न स्वर में बोला—अब

तो मगधराज का वध किये विना कोई चारा नहीं रहा है देव !

'लेकिन उसका वध करेगा कौन ? क्या तू ?'

'जी नहीं, कोई हत्यारा करेगा। एक ही रात में सारा काम निपट जायेगा। लेकिन उसके पहले अग्निमित्र को राजा की सुरक्षा के दायित्व से मुक्त कर देना चाहिए, नहीं तो व्यर्थ का संघर्ष होगा।'

पतंजलि ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह थोड़ी देर सोचते रहे, फिर सिर हिलाकर बोले—नहीं पुष्यमित्र, यह उचित न होगा। भले ही कोई हत्यारा तेरी प्रेरणा से राजा की हत्या करे, पर उससे बात बनेगी नहीं। ऐसी हत्या प्रजा का निर्माण नहीं करती; यह आर्यों की परम्परा और रीति के अनुरूप भी नहीं होगा। वास्तव में तो तुझे चन्द्रगुप्त-सभा को पुनर्जीवित करना होगा। अब उसका नया नामकरण पुष्यमित्र-सभा किया जाना चाहिए। तू नगण्य है, मगधराज भी नगण्य है, प्रजाजन भी नगण्य हैं, जो कुछ है वह चन्द्रगुप्त-सभा ही है। वही कुछ करने-न करने अथवा किये को अन-किया करने की सामर्थ्य रखती है। कोई अनजान हत्यारा मगधराज को मार डाले—क्रान्ति इसका नाम नहीं। प्रजा स्वयं अपने मूर्ख अथवा दुष्ट राजा का वध करे, अनुशासन-पूर्वक उसका वध करे, चाहे वह वध तेरे ही हाथों किया जाये—यह होगी क्रान्ति। यही परिवर्तन प्रजा को शक्ति-सम्पन्न करेगा। बाकी अनजान हत्यारे के हाथों राजा का वध तो घोर अराजकता ही होगी। उससे शक्ति प्रजा के हाथ में नहीं आती। हाँ, हत्याओं का क्रम अवश्य आरम्भ हो जायेगा !

'लेकिन देव, सबसे पहले तो अग्निमित्र को समझाना होगा। जब तक वह अपने पद पर आरूढ़ है किसी को मगधपति के पास फटकने भी नहीं देगा। लेकिन उसे अपने पद से हटाया भी नहीं जा सकता। यज्ञसेन और कौडिन्य के गुप्तचरों का भय है। समय भी हमारे पास नहीं है। और यज्ञसेन देर-सवेर मगध पर आक्रमण करके रहेगा।'

'तो यज्ञसेन को रोकने के लिए अग्निमित्र को गोप्ता बनाकर अवन्ती भेजो। जब वह चला जाये तभी राजा के वध का निर्णय किया जाये। और विदर्भ का वह जो सेनानायक आया है न भद्रघोप, उसको यहीं वन्दी बना लो।

वह जाने न पाये। यहाँ की परिस्थिति के बारे में यज्ञसेन को कुछ भी मालूम नहीं होना चाहिए। भद्रघोष को तत्काल बन्दी बना लेना चाहिए।'

'उसके लिए तो मैंने वसुमित्र को भेज दिया है। वह किशोर अभी से मगध को महान् बनाने के स्वप्न देखने लगा है। हाँ, खूब याद आया, क्या आपने उसे अश्वमेध के बारे में कुछ कहा था?'

'हाँ पुष्यमित्र, कहा तो था। हमें अपनी कई पुरानी वस्तुओं को पुनर्-जीवित करना होगा। अश्वमेध भी उनमें से एक है। वास्तव में अश्वमेध तो निमित्त होगा। मुख्य बात है भारत की एकता की भावना और उसका चक्र-वर्तीत्व। बिना चक्रवर्ती शासन के तुम भारत के गौरव को पुनःस्थापित नहीं कर सकते, और न भारत टिक सकता है। गान्धार की ओर की हमारी सीमा सैकड़ों योजन तक विदेशी आक्रमणकारियों के अधिकार में है। आन्तरिक संघर्ष के कारण आज वे हम पर आक्रमण नहीं कर रहे, लेकिन हमें मानकर चलना होगा कि उनका आक्रमण आरम्भ हो गया है। इसलिए भद्रघोष को यहीं रोक लो और अग्निमित्र को गोप्ता बनाकर तत्काल अवन्ती जाने के लिए कहो....लेकिन वह कौन किशोर दौड़ा चला आ रहा है?'

'वसुमित्र ही है। लगता है कि उसने भद्रघोष को बन्दी बना लिया है।'

थोड़ी ही देर बाद वसुमित्र वहाँ आ पहुँचा और हाथ बाँधे उनके सामने खड़ा हो गया।

६ : पिता और पुत्र

पुष्यमित्र तो पहले से ही था, अब वसुमित्र की तेजस्विता देखकर भगवान् पतंजलि भी उसके पक्षपाती हो गये। वह मन-ही-मन सोचा करते थे कि मेरी कल्पनाओं के अश्वमेध-यज्ञ के अश्व की रक्षा करता हुआ यह तेजस्वी कुमार किस प्रकार भारतवर्ष की विजय-यात्राएँ करेगा! वसुमित्र को वह पहले भी विदिशा में देख चुके थे। उसकी माता धारिणीदेवी विदर्भ की ही थी। इस समय भी वह बैठे हुए वसुमित्र के भारत-विजय की ही बात सोच रहे थे।

यों उनके विचारणीय विषयों की कमी नहीं थी। अनेक कल्पनाएँ और अनेक स्वप्न उनके मन में रमा करते थे। वह अश्वमेध-यज्ञ करना चाहते थे।

मगध-साम्राज्य के विलुप्त गौरव को पुनः स्थापित करना चाहते थे। देववाणी संस्कृत को अपने पद पर पुनः प्रतिष्ठित करना चाहते थे। भगवान् कौटिल्य द्वारा निर्धारित चक्रवर्ती शासन प्रथा को पुनः प्रचलित करने की अभिलाषा भी उनके मन में थी। वह पुष्यमित्र-सभा की स्थापना करना चाहते थे और यवन-आक्रमणों को रोकना भी।

अन्य सब कार्य तो अपेक्षाकृत सरल थे, परन्तु अश्वमेध-यज्ञ करना उतना सरल नहीं था। अन्तिम अश्वमेध को अनेक वर्ष व्यतीत हो चुके थे और अब सहसा राजघोषणा करके भी अश्वमेध-यज्ञ किया नहीं जा सकता था। बीच के समय में महाराज अशोक का युग-परिवर्तनकारी काल आकर निकल चुका था और जन-मानस पर शान्ति और अहिंसा की छाप छोड़ता गया था। मनुष्य और पशु-पक्षियों को ही नहीं, पेड़-पौधो और वनस्पति तक को अभय देनेवाली उनकी धर्म-घोषणाओं की गूँज अभी तक हवा में भरी हुई थी। ऐसी परिस्थिति में अश्वमेध-यज्ञ करने का बड़ा ही अनिष्टकारी परिणाम हो सकता था—अधिकांश प्रजा विद्रोह भी कर सकती थी। इसलिए जब तक जन-मानस को बदला न जाता और प्रजा के मन में यह विश्वास बिठा न दिया जाता कि अशोक का युग, अशोक का व्यक्तित्व और अशोक की धर्म-घोषणाएँ जुदा थीं और आज का युग और अशोक के शब्दों का अनुकरण करनेवाले सर्वथा जुदा हैं और अहिंसा अशोक के युग का धर्म हो सकता था, परन्तु आज का युग-धर्म उससे सर्वथा भिन्न है, तब तक अश्वमेध की बात सोची भी नहीं जा सकती थी। प्रजा को विशेष रूप से यह बात समझाने की आवश्यकता थी कि समय बदल चुका है और मगधपति को भी बदलना होगा। आज मगध पर चारों ओर से आक्रमण की तैयारियाँ की जा रही हैं, वार करने को तलवारें तुली हुई हैं, ऐसे समय में धर्म और अहिंसा की बातें करना निरर्थक ही नहीं, घातक भी है।

भगवान् पतंजलि बैठे सोच ही रहे थे कि वसुमित्र उनके सामने आकर खड़ा हो गया। उन्होंने उसकी ओर देखते हुए कहा—क्यों वसु, तूने अपने-जैसे एक सौ राजकुमार ढूँढ़ लिये न? पूरे सौ राजकुमार चाहिए और सब-के-सब ठीक तेरे ही जैसे।

'सौ राजकुमार !' वसुमित्र चकित होकर बोला, 'सौ राजकुमार क्या होंगे देव ?'

'राजकुमारों के बिना अश्वमेध-यज्ञ के अश्व की रक्षा कौन करेगा ? वह अश्व सारे भारतवर्ष में विचरण करेगा और तुम लोग उसकी रक्षा करोगे। वास्तव मे अश्व तो निमित्त है। उस निमित्त के द्वारा तुम जान सकोगे कि देश एक-मन एक-प्राण हुआ है या नहीं। उसके द्वारा यह भी जाना जा सकेगा कि देश एक केन्द्रीभूत शासन के लिए प्रस्तुत है या नहीं। देश का जो विभाग प्रस्तुत न होगा वह सामना करेगा। इस प्रकार आक्रमण के बिना ही उस विभाग के विद्रोह की जानकारी तुम्हें हो जायेगी। अश्वमेध तो निमित्त है। उसके द्वारा तुम यह जान सकोगे कि देश में कहाँ ज्वाला सुलग रही है।'

'परन्तु गुरुदेव, आज तो यह सारा नगर ही एक ज्वालामुखी के मुँह पर बैठा हुआ है। सबसे पहले तो इसी को बचाने की आवश्यकता है। हाँ, दादा-जी, वह काम तो हो गया।' अन्तिम वाक्य उसने पुष्यमित्र को उद्देश्य कर कहा।

'हो गया ? लेकिन किसी को पता तो नहीं चला ?'

'जी नहीं !'

'बहुत अच्छा हुआ। हमें साँस लेने को थोड़ा समय मिल गया।'

'आप समय मिलने की बात कर रहे हैं और यहाँ क्षण-क्षण भारी हुआ जा रहा है। आपने सुना तो होगा ही ?'

'क्यों, क्या बात है ?'

'मैंने आपसे कहा नहीं था—मित्रदेव के बारे में ! महाराज का अंगरक्षक मित्रदेव पिताजी से कुछ कह रहा था....पता नहीं उसने ऐसा क्या कहा, जिसे सुनते ही पिताजी एकदम व्यग्र हो उठे। सम्भवतः महाराज के सम्बन्ध में कोई बात थी।'

पुष्यमित्र ने ये नये समाचार सुने तो स्वयं उसे भी बड़ी चिन्ता हुई। वह जानता था कि महामात्य कौंडिन्य ने अच्छा-खासा वाग्जाल फैला रखा है और मगधपति को दिनोंदिन उसमें फँसाता जा रहा है। वह धूर्त महामात्य सदा सतर्क और सजग रहता था, जिसमें उसकी दुरभिसन्धियों का किसी को पता न चलने पाये। वह इस बात की सावधानी भी रखता था कि उसके अति-

रिक्त किसी को भी कोई सच्चा समाचार मिल न सके। इस काम के लिए उसने कई चरपुरुष नियुक्त कर रखे थे, जो दिन-रात काम में लगे रहते थे।

ऐसी परिस्थिति में पुष्यमित्र के लिए वस्तुस्थिति का अनुमान लगा लेना तो लगभग असम्भव ही था, परन्तु इतना तो वह समझ ही गया कि कोई नया षड्यन्त्र रचा जा रहा है और स्वयं उसे उस षड्यन्त्र को रोकने या दमन करने के लिए तत्काल, सम्भवतः रातोंरात, कोई कदम उठाना पडेगा।

वसुमित्र के चेहरे पर के भाव भी यही दरशा रहे थे कि घटना-चक्र बहुत तेजी से घूम रहा है। फिर भी उसने वसुमित्र से शान्तिपूर्वक ही पूछा—क्यों वसु, क्या कुछ हो गया है?

'क्या हुआ है, यह मैं निवेदन करूँ, इसकी अपेक्षा आप पिताजी के मुँह से ही सुन लीजिए। देखिए, वह स्वयं इसी ओर चले आ रहे हैं। और अब भी व्यग्र प्रतीत होते हैं।'

सचमुच अग्निमित्र जल्दी-जल्दी इसी ओर चला आ रहा था।

वह सेनापति पुष्यमित्र का ज्येष्ठ पुत्र था। शरीर से बलवान, देखने में तेजस्वी, सेनापति के रूप में अद्वितीय। उस समय सेना का संचालन-विचालन करनेवाला उसके-जैसा अन्य कोई नहीं था। युद्ध-कौशल में भी वह परम पटु था, और उसके इन्हीं गुणों के कारण पुष्यमित्र ने अभी-अभी उसे अवन्ती भेजने का निश्चय किया था। यदि अग्निमित्र अवन्ती में जम जाये तो यज्ञसेन कभी विदर्भ से मगध की ओर बढ़ने का साहस न कर सके।

लेकिन जैसा वह वीर था, वैसा ही विलासप्रिय भी। मगध के राजप्रासाद की हवा—धर्मवाद और विलास की मिली-जुली हवा—उसे भी लग गई थी। फिर पिता-पुत्र के बीच, बहुत दिनों से, एक प्रश्न को लेकर कुछ मनोमालिन्य भी हो गया था, बिसंवाद की एक गाँठ-सी पड़ गई थी, जो किसी-न-किसी निमित्त से कसती ही जाती थी।

अग्निमित्र ने विदिशा में धारिणीदेवी नामक एक महिला के साथ जो प्रेम-सम्बन्ध स्थापित किया था, वह पुष्यमित्र को स्वीकार नहीं हुआ था। पुष्यमित्र उस सम्बन्ध को अपने कुल की शान में बट्टा लगानेवाला समझता था। इसी सम्बन्ध को लेकर पिता-पुत्र के बीच गाँठ पड़ गई थी। अब तो, खैर,

समाधान हो गया था; परन्तु पिता पुत्र को इसके लिए अभी तक क्षमा नहीं कर पाया था; उसे पुत्र की अपेक्षा पौत्र वसुमित्र पर अधिक प्रेम और अधिक विश्वास था।

अग्निमित्र को बृहद्रथ की सुरक्षा के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य से हटाकर विदिशा जाने के लिए कहना पिता-पुत्र के नये संघर्ष का कारण हो सकता था। अग्निमित्र कभी जाने को प्रस्तुत न होगा। इस संघर्ष से महामात्य कौंडिन्य अवश्य लाभ उठायेगा। परन्तु यज्ञसेन को दबाने के लिए अग्निमित्र को विदिशा भेजना भी नितान्त आवश्यक था, पारस्परिक संघर्ष का संकट सिर पर लेकर भी उसे वहाँ भेजना ही होगा। यदि वह नहीं गया तो बृहद्रथ की ढुलमुल नीति के कारण पाटलिपुत्र ही घिर जायेगा और तब जनता अपने सेनापति पुष्यमित्र को कभी क्षमा नहीं करेगी। यद्यपि पुष्यमित्र अभी थोड़ी देर पहले स्वयं विदर्भ जाने का वचन मगधपति को दे आया था, फिर भी अग्निमित्र को तो जैसे भी बने विदिशा भेजना ही होगा। परन्तु यह कठिन कार्य कैसे पूरा किया जा सकेगा?

पुष्यमित्र इस तरह की बातें सोच ही रहा था कि अग्निमित्र वहाँ आ पहुँचा। उसका चेहरा कह दे रहा था कि अवश्य कोई नयी बात हुई है। उसने वहाँ आकर गुरु और पिता को प्रणाम किया और कुछ उत्तेजित, रूखे स्वर में वसुमित्र को सम्बोधित कर बोला—वसु, तुझे तो महामात्य कौंडिन्य खोज रहे हैं और तू यहाँ है!

'मुझे खोज रहे हैं? किस लिए?'

'विदर्भ से भद्रघोष जो आया था, गुम हो गया है। बहुत ढूँढ़ा, पर कहीं पता नहीं चल रहा। तू उधर राजवाटिका में घूम रहा था, ऐसा किसी चरपुरुष ने महामात्य से कहा है। सम्भवतः उसने तुझे वहाँ देखा हो। इसी लिए महा-मात्य तुझे खोज रहे हैं। और पिताजी, महाराज का एक नया आदेश हुआ है, वह भी आपको बतलाना था।'

'क्या आदेश हुआ है?'

'महाराज राजप्रासाद में नृत्य-महोत्सव आयोजित करना चाहते हैं। मद्रदेश की माद्री नामक यूनानी यवनी उसमें प्रमुख भाग लेगी। भगवान्

तथागत के जीवन की घटनाओं को नृत्य-अभिनय के द्वारा प्रदर्शित किया जायेगा। यों समझिए कि वह आयोजन लगभग कौमुदी-महोत्सव ही होगा—एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक बराबर चलता रहेगा। जब तक यह महोत्सव समाप्त नहीं हो जाता हम सैन्य-महोत्सव को स्थगित रखें, ऐसा निर्णय किया गया है। इसमें सम्मिलित होने के लिए भद्रघोष के हाथ यज्ञसेन को निमन्त्रण देने का भी निश्चय किया गया है। यह मार्ग समझौते और शान्ति का भी होगा।'

'लेकिन यह निर्णय किया किसने, और कब ?'

'स्वयं महाराज ने महामात्य कौंडिन्य के परामर्श से किया है। देखिए, वह दुर्वाक चला आ रहा है। सम्भवतः इसी लिए आ रहा हो।'

पुष्यमित्र अविलम्ब बात की तह तक पहुँच गया। यह सारी कारस्तानी कौंडिन्य की ही प्रतीत होती थी। उस दुष्ट ने देखते-देखते सारी योजना ही बदल दी। सैन्य-महोत्सव को रोकने के लिए कौमुदी-महोत्सव आयोजित कर दिया, जिसमे यज्ञसेन को सेना लेकर तत्काल न आना पड़; वह वहाँ सेना तैयार रखे और यहाँ अकेला बिना सेना के आ सके। और कौमुदी-महोत्सव मे ही किसी हत्यारे के हाथों मगधपति का वध करवाया जा सके। कौंडिन्य ने सोची तो बहुत दूर की थी। मगधपति की हत्या के लिए उसने स्वयं मगधपति से ही सहायता प्राप्त की थी। इधर पुष्यमित्र को निरस्त भी कर दिया था। या तो वह महाराज के आदेश को माने या विरोध कर विद्रोही बने; दो के अतिरिक्त तीसरा कोई मार्ग नहीं था और दोनो ही मार्ग कंटकाकीर्ण थे। कौंडिन्य ने खासी उलझन खड़ी कर दी थी। अग्निमित्र की सहायता प्राप्त कर पुत्र को पिता के विरुद्ध भी खड़ा कर दिया था। कूटनीति की बड़ी कुटिल चाल चली थी उसने। मगधपति को आत्महत्या के लिए ही प्रेरित कर दिया था !

पुष्यमित्र ने तत्काल यह निर्णय तो कर ही लिया कि अग्निमित्र को अब यहाँ से अविलम्ब विदिशा चले जाना चाहिए। परन्तु वह अग्निमित्र से कुछ कहे उसके पहले तो दुर्वाक वहाँ आ पहुँचा और दोनो सेनापतियों का अभिवादन कर बोला :

'प्रभु, महाराज ने राजप्रासाद में कौमुदी-महोत्सव आयोजित किया है।

भिक्खु लोहन के साथ आई हुई माद्री नामक यूनानी यवनी उस उत्सव में भगवान् तथागत के कतिपय जीवन-प्रसंगों को नृत्य-अभिनय के द्वारा प्रस्तुत करेगी। महाराज ने आदेश प्रदान किया है कि समस्त राज-कर्मचारी और राजपुरुष इस उत्सव में उपस्थित हों। समस्त प्रदेशपति भी इसमें निमन्त्रित किये जायेंगे। जो प्रदेशपति अपनी सेनाओं-सहित आ रहे हैं वे सब भी इसमें सम्मिलित होंगे। सैन्य-महोत्सव अभी स्थगित कर दिया गया है। मुझे यही निवेदन करने के लिए आपकी सेवा में भेजा गया है। ओहो, कुमार वसुमित्र भी यहीं है! आप अच्छे मिल गये कुमार! महामात्य आपको याद कर रहे हैं।'

'मुझे याद कर रहे हैं ? क्यों ?'

'विदर्भ का यह सेनानायक भद्रघोष कहीं खो गया है। किसी ने कहा कि आप उसके बारे में जानते हैं।'

'मैं जानता हूँ ? किसने कहा ?'

'किसी चरपुरुष ने ही कहा होगा। आप राजवाटिका में थे और वह भी वहीं था और उसके बाद से उसका पता नहीं चल रहा है।'

एक क्षण तो वसुमित्र को कोई उत्तर नहीं सूझ पड़ा, लेकिन दूसरे ही क्षण उसने निश्चयात्मक स्वर में कहा—यह सच है कि मैं राजवाटिका में था। यह भी सच है कि सेनापति भद्रघोष भी राजवाटिका में थे। यह भी मैं जानता हूँ कि उन्हें वहाँ से जाने की जल्दी थी। मैंने उन्हें वहाँ से बाहर निकलते भी देखा; इसलिए वहीं कहीं आस-पास में ही होना चाहिए.. परन्तु यह भी तो हो सकता है कि इधर राज-कर्मचारियों का अपहरण होने लगा है। सुना गया है कि कुछ आटविक छद्मवेश में इधर आ निकले है....तो मैं चलकर पता लगाता हूँ राजवाटिका में....तुम महामात्य को वहीं भैजो। हम लोग स्वयं पता लगायेंगे। तत्काल महामात्य से जाकर यह कहो और उन्हें अविलम्ब वहाँ भेज दो, जाओ.. .

वसुमित्र एक ही साँस में ये सारी बातें कह गया और पुष्यमित्र की ओर देखने लगा। उसके चेहरे को देखकर पुष्यमित्र चकित हो उठा। अभी बच्चा ही है, परन्तु दूरदर्शिता कितनी! और चेहरे का भाव कह रहा था कि महामात्य ही नहीं, कोई आ जाये, भद्रघोष का पता कभी बताने का नहीं!

लेकिन भद्रघोष गया कहाँ ?

पर वसुमित्र की दृष्टि में तो भय का लेश भी न था !

पुष्यमित्र ने कहा—भद्रघोष कहीं विदिशा की ओर तो नहीं चल दिये ?

'जी नहीं ! महामात्य के शीघ्रगामी अश्वारोही दो-दो योजन तक ढूँढ़ आये । कहीं पता नहीं चला ।' दुर्वांक ने कहा ।

'तब तो निश्चय ही किसी आटविक ने हाथ साफ कर दिया ।' वसुमित्र ने जल्दी-जल्दी कहा, 'मैं वहीं जा रहा हूँ । पिताजी, आप भी आ जाइएगा । दुर्वांक, तुम जाकर महामात्य को वहीं भेज दो ।'

लेकिन जाने के लिए उठे हुए सब लोगों के पाँव वहीं-के-वहीं रुक गये । राज-घोषणा का स्वर सुनाई पड़ रहा था :

'सुनें, सब लोग सुनें ! कौमुदी-महोत्सव में सभी नगरवासी राजप्रासाद में आयें । महाराज का सब को निमन्त्रण है । भगवान् तथागत के जीवन-दर्शन को नृत्य-नाटिका में देखने के लिए सभी निमन्त्रित किये जाते है....सुनें.... ....सुनें....'

पुष्यमित्र चौंका । कौंडिन्य ने एक पल भी गँवाना उचित नहीं समझा ।

इधर सेनापति को प्रणाम कर दुर्वांक चला गया ।

उसके जाते ही अग्निमित्र ने वसुमित्र की ओर कठोर दृष्टि से देखकर कहा—वसु, मुझसे मित्रदेव ने कहा... उसने तुझे अपनी आँखो से देखा । यह तो अच्छा हुआ कि उसने महामात्य से कुछ कहा नहीं । परन्तु ऐसी अराजकता....'

'आप यह क्या कह रहे हैं पिताजी ?' वसुमित्र ने उसकी बात काटते हुए कहा, 'अराजकता से हमारा क्या सम्बन्ध ? हमने तो प्रजा की रक्षा का व्रत ले रखा है ।'

'लेकिन भद्रघोष को तो तूने ही तलघर की काल-कोठरी में मूँदा है न ?'

'अपने मन से नहीं, मेरे कहने से ।' पुष्यमित्र ने जवाब दिया। अब उसने बीच-बचाव करना आवश्यक समझा ।

'यह तो कृतघ्नता की सीमा हो गई पिताजी ! एक ओर हम महाराज मगधपति की सुरक्षा का दायित्व वहन करते हैं और दूसरी ओर ऐसा कृत्य....वसु

को चाहिए कि अभी तत्काल जाकर क्षमा माँगे और भद्रघोष को मुक्त कर दे। एक पल का भी विलम्ब नगर में अव्यवस्था और अराजकता फैला देगा और उसका सारा उत्तरदायित्व हम पर होगा—हम पर, जो प्रजा की रक्षा और व्यवस्था के लिए उत्तरदायी हैं।'

'अग्निमित्र, हम मगध महाराज के विश्वस्त अनुचर और स्वामिभक्त सेवक थे....'

'थे!' अग्निमित्र ने बात काटते हुए कुछ उत्तेजित स्वर में कहा, 'क्या मतलब? क्या अब नहीं हैं?'

पुष्यमित्र समझ गया कि वह जिस संघर्ष को टालना चाहता था वह सिर पर आ गया है, इसलिए उसने भी कुछ उग्र होकर कहा—नहीं, अब नहीं हैं! इस बात को, अग्निमित्र, बहुत अच्छी तरह समझ लेने की आवश्यकता है। और जितना शीघ्र समझा जाये उतना ही अच्छा! संकट सिर पर मँडराने लगा है और खोने के लिए एक पल का भी समय नहीं है। हमें अभी, तत्काल निर्णय करना होगा। इस समय चयन हमें दो में करना है—हम देश का साथ देंगे या व्यक्ति का? मगधदेश को बचाना चाहते हैं या मगध के महाराज को? दोनों को नहीं बचाया जा सकता। महाराज को बचाना चाहें तो मगध और मगध को बचाना चाहें तो महाराज को छोड़ना होगा, नष्ट हो जाने देना होगा। देख नहीं रहे हो, अभी दो घटिकाएँ भी नहीं बीतने पायीं और मगध के महाराज का मन बदल गया! राजप्रासाद से मुझे लौटकर आते देर नहीं हुई और उन्होंने कौमुदी-महोत्सव की घोषणा करवा दी। हमसे पूछा तक नहीं! यह सच है कि महामात्य सैन्य-महोत्सव को स्थगित करने के पक्ष में था। लेकिन चर्चा के उपरान्त निर्णय तो यही हुआ था कि प्रायः सभी प्रदेश-पति अपनी-अपनी सेनाओं के साथ आ रहे हैं इस लिए अब उसे स्थगित करना उचित न होगा। और यह निर्णय भी हुआ था कि विदर्भ-गोप्ता यज्ञ-सेन को समझा-बुझाकर लाने के लिए स्वयं मुझे जाना चाहिए! लेकिन मुझे वहाँ से लौटकर आते देर नहीं हुई और दोनों निर्णयों पर पानी फेर दिया गया। यह प्रमाणित करता है कि मगध का राजा कितना अस्थिर चित्त और अव्यवस्थित व्यक्ति है। वह मगध को तो डुबोयेगा ही, मागधी प्रजा को भी

रौरव नर्क में ढकेल देगा। अपनी इस अराजकता को वह सुशासन कहता है और अब इसी प्रकार का शासन सुशासन समझा भी जायेगा। इसलिए मैंने एक निर्णय किया है, मुझे विवश होकर करना पड़ा है। उस निर्णय की सफ-लता और पूर्णाहुति के लिए मुझे तेरी सहायता की अपेक्षा है। पिता श्रीफल्गु-देव की अन्तिम इच्छा भी यही थी। गुरुदेव भगवान् पतंजलि भी इसका समर्थन करते हैं। वह निर्णय यह है कि अब तुझे मगधपति की सुरक्षा के भार से मुक्त हो जाना चाहिए। कोई शक्ति मगधपति की रक्षा नहीं कर सकती, और रक्षा करने मे कोई लाभ भी नहीं।

यह सुनते ही अग्निमित्र चौंका! वह अपने कार्य को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और गौरवशाली मानता था। उसने हाथ जोड़कर कहा—पिताजी, इसमे लाभ-हानि का प्रश्न कैसा! यह तो कुल-परम्परागत गौरव की बात है। हमने स्वयं होकर मगधपति की रक्षा करने का दायित्व अपने ऊपर लिया है। मैं जानता हूँ कि मगधराज बड़ा ही विचित्र व्यक्ति है। कोई विचार, कोई बात, कोई निर्णय उसके मन मे स्थिर नहीं रहने पाता। अभी जो सोचता और कहता है एक घटिका पश्चात् ठीक उसके विपरीत सोचने-कहने लगता है। परन्तु उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व तो मैंने अपने ऊपर ले रखा है। मेरे जीते-जी कोई उसका बाल-बाँका नहीं कर सकता। उस पर आघात करनेवाले को मेरे शव पर होकर ही उस तक पहुँचना होगा।

पुष्यमित्र सतर्क हो गया। जिस संघर्ष को वह टालना चाहता था वह आखिर सिर पर आ ही पडा। लेकिन वाद-विवाद के लिए समय ही कहाँ था? उसने अग्निमित्र के चेहरे की ओर देखा। किशोर वसुमित्र की मनोव्यथा को समझा। स्थिति बड़ी ही जटिल और नाज़ुक थी। स्वयं उसे बड़ी सतर्कता बरतने की आवश्यकता थी, इसलिए उसने अत्यन्त शान्ति परन्तु दृढ़ता के साथ कहा:

'अग्निमित्र, यहाँ आ जाओ—गुरुदेव पतंजलि के पास। इन्हीं के चरणों में बैठकर आओ, हम इस समस्या का समाधान खोज निकालें। तुम्हें अपना वचन जितना प्रिय है मुझे उससे तनिक भी कम नहीं; अधिक ही होगा। परन्तु इस समय सारा प्रश्न प्रजा की सुरक्षा का है। इधर यूनानी यवन मगध पर

अधिकार जमाने के लिए आक्रमण करने को तुले बैठे हैं। उधर यज्ञसेन विदर्भ का स्वतन्त्र, सार्वभौम राजा बनने की तैयारियाँ कर रहा है। वह कहता है कि तुम मगधपति हो तो मैं भी विदर्भपति हूँ। और तुम्हारा मगधपति गाढ़ी नींद में सोया पड़ा है।'

'यज्ञसेन विदर्भराज बनना चाहता है? क्या वह गोता नहीं रहना चाहता? विदर्भ का स्वतन्त्र, सार्वभौम राजा बनना चाहता है? क्या वह मान बैठा है कि मगध में सेना नहीं और कोई सेनापति भी नहीं?'

'हाँ अग्निमित्र!' अब महामुनि पतंजलि ने शीघ्रतापूर्वक कहा, 'बात तो कुछ ऐसी ही प्रतीत हो रही है। और वत्स, यदि तुम विवाद में उलझ गये, तत्काल निर्णय नहीं किया, तो सारी बाजी ही उलट जायेगी और फिर किसी भी तरह बिगड़ी बात बनाई नहीं जा सकेगी। इसलिए मेरा कहा मानो और अविलम्ब वहाँ दौड़ चले जाओ ...'

'वहाँ कहाँ?'

'विदर्भ, विदिशा....' और महामुनि बात समाप्त करने के पूर्व ही विचार-मग्न हो गये।

उन दिनों विदिशा में एक अद्भुत नर्तकी थी। सौन्दर्य मे देश-विदेश की कोई नर्तकी उसके सामने ठहर नहीं सकती थी। रूप उसका पार्थिव होते हुए भी नृत्य-कला उसकी अलौकिक थी। वह यज्ञसेन के चचेरे भाई माधवसेन की पुत्री थी। माधवसेन और यज्ञसेन एक-दूसरे के प्राणान्तक शत्रु थे। और अग्निमित्र उस नर्तकी पर सौ-सौ प्राणों से अनुरक्त था। एक ही बार रंगशाला में देखकर वह उस पर अपने मन-प्राण लुटा बैठा था। महामुनि पतंजलि को ये सब बातें मालूम थीं और वह जानते थे कि यज्ञसेन माधवसेन को परेशान करने का कोई मौका हाथ से जाने नहीं देगा और न अग्निमित्र मालविका (इसी मालविका के सम्बन्ध मे कालिदास ने अपना सुप्रसिद्ध 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक रचा था) के प्रबल आकर्षण का निवारण कर सकेगा।

इसलिए उन्होंने एक-एक शब्द को तौलते हुए कहा—वत्स, अग्निमित्र! तेरा स्थान वहाँ अवन्ती में है, यहाँ नहीं। यहाँ की गौरवगाथा का अब अन्त

हुआ। भारत की गौरवपूर्ण कहानी का आरम्भ हुआ था यहाँ, पाटलिपुत्र में, लेकिन उसका समाहार होगा वहाँ, अवन्ती में। इसलिए, वत्स, तेरा स्थान वहीं है। वहाँ तेरे पास शक्तिशाली सेना होगी, तेरा परम मित्र माधवसेन, जो यज्ञसेन का चचेरा भाई है, तेरा सहायक और प्रबल समर्थक होगा। तेरे वहाँ पहुँचते ही परिस्थिति ऐसा रूप ग्रहण करेगी कि विदर्भ-गोप्ता यज्ञसेन के विदर्भ-राज बनने की बात तो दूर मगधराज की अवहेलना करने का भी उसका साहस न होगा। इसी तरह मगध के विघटन को रोका जा सकता है। तू यहाँ की चिन्ता मत कर। यहाँ की स्थिति को पुष्यमित्र सँभाल लेंगे। तू वहाँ की स्थिति को सँभाल। गँवाने के लिए एक क्षण भी नहीं है। मैं यज्ञसेन को जानता हूँ। वहीं से चला आ रहा हूँ। यदि तुमने तनिक भी विलम्ब किया तो वह वार कर देगा और तुम देखते रह जाओगे।

यह सुनते ही अग्निमित्र के मन में गुदगुदी-छूटने लगी। मालविका का चाँद-सा मुखड़ा उसकी आँखों में नाच गया। मन उसी समय विदिशा की राह पर दौड़ चला; परन्तु फिर भी उसने कहा—तब मगध महाराज की सुरक्षा का भार किस पर होगा? क्यों न यह दायित्व वसु को सौंपा जाये!

'वसुमित्र को तो मैं इससे भी बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण काम सौंपना चाहता हूँ। वह मगधपति की सुरक्षा का भार वहन नहीं करेगा।'

'तो फिर कौन करेगा? मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि किसी भी क्षण मगध के राजा का प्राणान्त किया जा सकता है। यदि ऐसा हुआ तो हमसे बड़ा पातकी और कृतघ्न कौन होगा? और कृतघ्न को कभी प्रजा क्षमा नहीं करती देव!'

'अग्निमित्र!' पुष्यमित्र बोला, 'बात तेरी सच है। परन्तु मगध महाराज की रक्षा अब स्वयं मगध महाराज ही करेंगे। यदि तू यज्ञसेन के लिए अंकुश बन जाये, उसे दबाकर रख सके तो मगध महाराज की सुरक्षा आप ही हो जायेगी।'

'वह कैसे?'

'महामात्य कौंडिन्य की सारी उछल-कूद यज्ञसेन की सेना के बल-भरोसे पर है। जैसे ही उसे यह ज्ञात होगा कि वह इधर नहीं आ सकता कौंडिन्य का सारा जोर ढीला पड़ जायेगा और वह शान्त होकर बैठ जायेगा। यहाँ की

स्थिति को तो हम सँभाल लेंगे। सच बात तो यह है कि यदि मगधराज शासन करना चाहता है तो पहले उसे शासन करना सीखना होगा....हमारा प्रयत्न भी यही होगा। कौमुदी-महोत्सव की ओट में महामात्य कौडिन्य कुछ भी अवाछनीय न कर बैठे—अब यह हमें देखना होगा। इसलिए, अग्निमित्र, तू आज ही महाराज की सुरक्षा का सारा उत्तरदायित्व महामात्य को सौंप दे और महाराज की अनुमति लेकर अवन्ती के लिए चल पड़। अपने साथ एक शक्तिशाली सेना भी लेता जा। यह नितान्त आवश्यक है। महामात्य को तेरा यह कृत्य फूटी आँखों भी नहीं सुहायेगा, परन्तु ऐसी तो कितनी ही बातें हैं जो उसे अच्छी नहीं लगतीं। हम कहाँ तक उसके अच्छे-बुरे लगने की चिन्ता करते रहेंगे! सेनापति तो मैं हूँ। अवन्ती में इस समय कोई गोप्ता है भी नहीं। मैं महाराज से इस सम्बन्ध में आवश्यक आज्ञा प्राप्त करता हूँ, तब तक तू अपनी सेना तैयार करने के लिए शंख-घोष....'

परन्तु पुष्यमित्र की बात अधूरी ही रह गई! एक आदमी वहाँ 'देव! देव! रक्षा! रक्षा!' चिल्लाता हुआ आया और आते ही पुष्यमित्र के पाँवों में ढेर हो गया। यह दृश्य देखकर सब-के-सब चकित-विस्मित हो उठे।

'कौन है, तू कौन है? क्या बात है? क्या हुआ है तुझे?' पुष्यमित्र ने नीचे झुककर उसे उठाने का प्रयत्न करते हुए पूछा।

लेकिन उसने सिर भी नहीं उठाया। उसी प्रकार पड़े-पड़े बोला—देव! देव! रक्षा! रक्षा! यह तो हद हो गई! यह मगध का राज्य है या किसी और का? क्या इस राज्य में कोई सुरक्षित रह ही नहीं सकता? और जहाँ प्रजा सुरक्षित नहीं रह सकती वह राज्य ही कैसा? कैसे वहाँ के सेनापति और कैसा वहाँ का राजा?

'लेकिन बात क्या है? तू कौन है? कहाँ से आया है? क्या तेरा नाम है? और किसने तेरे साथ क्या किया है?' पुष्यमित्र ने एक साथ कई प्रश्न पूछ डाले। आगन्तुक को वह अभी तक पहचान नहीं पाया था।

'कहूँगा, देव, सब-कुछ कहूँगा! लेकिन पहले मुझे यह तो बताइए कि क्या मगध का राज्य अब भी है या नहीं? मगध में कोई राजा है भी या नहीं? चन्द्रगुप्त-सभा जो पहले हुआ करती थी वह अब है या नहीं? सेनापति

पुष्यमित्र का नाम तो सुना जाता है परन्तु वह जीवित है या नहीं ?'

'हैं भाई, हैं, सभी हैं। परन्तु तू अपनी बात बता। क्या हुआ है तेरे साथ और तू कौन है ?'

वह आदमी उठकर बैठ गया। उसका चेहरा मोटा, लम्बोतरा और रूखा था। वह बहुत क्लान्त लग रहा था, मानो वर्षों से अथक परिश्रम करता रहा हो और एक क्षण का भी विश्राम नहीं मिला हो! वहाँ नीचे बैठा वह अपनी सूनी आँखों से पुष्यमित्र, भगवान् पतंजलि, अग्निमित्र और वसुमित्र के चेहरों को बारी-बारी से देखता रहा। फिर उसने अपने धूल-सने अवयवों पर दृष्टि डाली और सहसा पागल की भाँति जोर से खिलखिला पड़ा। अभी हँसी थमने भी नहीं पायी थी कि वह रोने लगा और रोते-रोते ही बोला—देव! देव! मगध में, मगध के महान् राज्य में अब कोई किसी की रक्षा करने-वाला बचा भी है या नहीं ? मैं विदिशा से चला आ रहा हूँ। विदर्भ से आ रहा हूँ। मेरा नाम....सुमित्र....

'सुमित्र ? कौन सुमित्र ?' सुमित्र का नाम सुनते ही पुष्यमित्र चौंक पड़ा और उसने पूछा।

सहसा गुरु पतंजलि, जो अब तक नवागन्तुक के चेहरे को बडे ध्यान से देख रहे थे, जोर से बोल उठे—कौन सुमित्र ? दिवंगत विदर्भराज के मंत्री सुमित्र तो नहीं ? हाँ, वही हैं! अरे, आपकी यह क्या दशा हो गई ? आप तो विदर्भ के मंत्री थे न ?

'हाँ देव! मैं ही हूँ वह अभागा। हाँ, मैं ही हूँ।'

सुमित्र ने इतना कहा और थककर पुनः धरती पर लम्बा हो गया। बड़ी देर तक वह कुछ न बोला।

१० : मंत्री सुमित्र की आपबीती

सब मंत्री सुमित्र के बोलने की प्रतीक्षा करते रहे। पुष्यमित्र को लग रहा था कि सुमित्र की बातों से अवश्य कोई ऐसी बात ज्ञात होगी जिसे सुनते ही अग्निमित्र का मनोमन्थन समाप्त हो जायेगा और वह विदिशा जाने के लिए प्रस्तुत हो उठेगा।

बड़ी देर के बाद सुमित्र ने अत्यन्त मन्द और शिथिल स्वर में कहना आरम्भ किया—हाँ गुरुदेव पतंजलि, वह अभागा मैं ही हूँ। दिवंगत विदर्भराज का वह अभागा मंत्री मैं ही हूँ। सुमित्र मेरा ही नाम है। न्याय और अधिकार की दृष्टि से देखा जाये तो विदर्भ का राज्य माधवसेन को मिलना चाहिए था, लेकिन मिल गया वह यज्ञसेन को। महामात्य कौंडिन्य का वह बहनोई जो था। हमें यह अच्छा नहीं लग रहा था। हम अप्रसन्न भी थे, क्योंकि यह उचित नहीं हो रहा था। हम मगध के आश्रित बनकर रहने को तैयार थे। यह सच है कि दिवंगत वृद्ध विदर्भराज ने मगध के शासन के प्रति विरोध-भावना प्रदर्शित की थी। परन्तु हम अच्छी तरह जानते थे कि हमारी स्थिति दो पाटों के बीच पड़े हुए दाने-जैसी है—इधर मगध की शक्तिशाली सेना और उधर कलिंग की महान् गजसेना। दोनों से विरोध मोल लेकर हम जी नहीं सकते थे। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए हमें दोनों में से किसी एक के साथ मिलकर रहना ही था। और हमने मगध के साथ मिलकर रहना श्रेयस्कर समझा। माधवसेन विदर्भराज का वास्तविक उत्तराधिकारी था; फिर भी शासनाधिकार यज्ञसेन को सौंपे गये। सेनापति पुष्यमित्र स्वयं उस अवसर पर वहाँ आये थे। उन्होंने हमें वचन दिया था कि हमारे गौरव की रक्षा की जायेगी। लेकिन हमारा गौरव तो हो गया इस तरह....

उसने मुट्ठी-भर धूल उठाकर नीचे गिराते हुए कहा—यह हो गया है हमारा गौरव....मैं आज भिखारी की तरह भटक रहा हूँ....न्याय की भीख माँगता हुआ....जानते हैं किसके लिए?

और वह चुप हो गया। कोई कुछ न बोला। सब उसकी बातें सुनने में तल्लीन थे। थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने कहा—माधवसेन के लिए। मैं न्याय माँगता हूँ माधवसेन के लिए।

वह फिर चुप हो गया और तब बोला—जानते हैं माधवसेन कहाँ हैं? उनके पुत्र-पुत्रादिक यज्ञसेन के कारागार में पड़े सड़ रहे हैं। पत्नी कहीं भटक रही है। मैं उनका मंत्री भी भटकता फिरता हूँ। और गोसा यज्ञसेन स्वतन्त्र सार्वभौम नरेश की भाँति विदर्भ का राजा बना बैठा है। विचित्र है उसके शासन की रीति। जिनका वध करना चाहिए उन्हें उसने मुक्त विचरण करने

की छूट दे रखी है। जिनकी रक्षा करनी चाहिए उनकी वह गर्दन उतार लेता है। आततायियों के विरुद्ध युद्ध वह करता नहीं; युद्ध में उसका विश्वास ही नहीं। उसने तो आटविकों को खुली छूट दे रखी है। अपने प्रतिद्वन्द्वियों और प्रतिस्पर्द्धियों के विरुद्ध आटविकों को प्रोत्साहित करता रहता है। वे उन्हें लूट लेते हैं, सब प्रकार से कष्ट देते हैं; परन्तु उनका कोई पुछत्तर नहीं। मेरे-जैसा कोई बिरला ही अभागा किसी तरह जान बचाकर यहाँ तक आ पाता है तो उससे कहा जाता है कि आटविकों को भी प्रेम से जीतो! परन्तु हमने तो आपके किसी भी प्रेम-अधिकारी को, अहिंसाचार्य को, हिंसा-शास्त्री या सेनापति या सेनानायक या धर्माध्यक्ष या किसी को भी वहाँ आटविकों के प्रदेश में देखा नहीं। आज समस्त प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है। जो भी यज्ञसेन को विदर्भ-राज कहने या मानने से इनकार करता है वह या तो कुमौत मारा जाता है या उसका अपहरण हो जाता है। रातोंरात वह कहाँ विलुप्त हो जाता है, इसका किसी को पता नहीं चलता। यह दशा है हमारी और यहाँ किसी का रोआँ नहीं फड़कता। और इसी लिए मैं यहाँ यह जानने के हेतु दौड़ा आया हूँ कि मगध का राज्य अभी वर्तमान है या नहीं?

पुष्यमित्र ने अग्निमित्र की ओर देखा। अग्निमित्र की तो अन्तरात्मा तक हिल उठी थी। माधवसेन उसका परमप्रिय मित्र था। उसकी पुत्री मालविका सर्वश्रेष्ठ नर्तकी थी। वह उस पर मन-प्राण से अनुरक्त था। और वही माल-विका और उसके कुटुम्बी जन आज यज्ञसेन के अत्याचार से त्रस्त न जाने कहाँ भटक रहे थे।

पुष्यमित्र ने अपना हाथ सुमित्र के कन्धे पर रख दिया। प्रेमपूर्वक उसे खड़ा किया। दूर खड़े एक अनुचर को संकेत से अपने समीप बुलाया।

जब अनुचर दौड़ा आया तो पुष्यमित्र ने उससे कहा—इन मंत्री महोदय को हमारे भवन में ले जाओ। इनकी सब प्रकार से सेवा-शुश्रूषा करो और सुख पहुँचाओ। मंत्रिवर, आप तनिक विश्राम कर लीजिए, स्वस्थ हो जाइए। शीघ्र ही आपकी बातों पर विचार और आवश्यक निर्णय भी किया जायेगा। यज्ञसेन को महाराज की ओर से आज्ञा प्रदान की जायेगी।

'आ....ज्ञा?' सुमित्र को हँसी आ गई, 'आप अभी तक यही मानते हैं कि

आप आज्ञा दे सकते हैं और वहाँ कोई आपकी आज्ञा सुननेवाला बैठा है !'

पुष्यमित्र को आश्चर्य तो हुआ परन्तु बात सुमित्र की सोलहो आने सच थी। यज्ञसेन के लिए मगधराज की आज्ञा का कोई भी महत्त्व और अर्थ नहीं रह गया था। पुष्यमित्र अभी सोच ही रहा था और उधर यज्ञसेन ने अपना दाँव चला भी दिया। पुष्यमित्र को लगा कि वह सच ही पिछड़ गया है और अब तो एक क्षण की भी देर घातक हो जायेगी।

उसने शीघ्रता से अग्निमित्र की ओर देखा और कहा—अग्निमित्र, अब तो एक-एक पल मूल्यवान है। वार हो चुका है। हम पिछड़ गये हैं। और अधिक पिछड़े तो मगध ही क्या, स्वयं हम भी नहीं बचेंगे। आज निर्णय करना ही होगा....मैं आज ही सायंकाल के समय मगधपति से मिलूँगा। उनकी अनुमति प्राप्त हुई तो ठीक और न हुई तो....

'तो क्या ?' अग्निमित्र ने पूछा।

'तो बिना आज्ञा के ही' पुष्यमित्र का स्वर कुछ तीक्ष्ण और कठोर हो गया था, 'हमें अपने उत्तरदायित्व पर सेना का संचालन करना होगा। तुम शंखघोष करवाओ। अपनी सेना को प्रस्तुत रहने का आदेश दो। अभी सबसे पहला काम तो यही करो....'

सुमित्र की आपबीती ने सारा वातावरण ही बदल दिया था। उसने बता दिया कि गोप्ता यज्ञसेन स्वतन्त्र विदर्भराज के रूप में आचरण करने लगा है। उसे आज्ञा देने का अब कोई अर्थ नहीं रह गया है। समझौते के लिए उसे मगध बुलाना एकदम निरर्थक होगा।

परन्तु महाराज बृहद्रथ राजी न हुआ और महामात्य कौंडिन्य ने अग्निमित्र को सेना लेकर जाने न दिया तो क्या होगा ? क्योंकि बृहद्रथ की तो वही एक ढपली और वही एक राग था—जो करना हो समझा-बुझाकर शान्तिपूर्वक करो ! परन्तु अग्निमित्र को तो अवन्ती जाना ही होगा। पुष्यमित्र ने अपने मन में दृढ़-निश्चय कर लिया और वसुमित्र के कन्धे पर हाथ रखकर उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।

'वसु ! हमे जाना है....चलो तो....'

वसुमित्र के उत्साह का पार न रहा। वह समझ गया कि अब निश्चय

इसी सुगंगप्रासाद से भारतीय राजनीति के महान् सूत्र—'प्रेम से जीतो' की दिव्य ध्वनि उद्घोषित हुई और दिग्-दिगन्तों में छा गई थी।

आज उसी सुगंगप्रासाद में चार व्यक्ति बैठे हुए थे। इस समय वे बिलकुल मौन थे। वह मौन ऐसा था, मानो किसी प्रश्न को लेकर उनके बीच कोई तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गया हो। कोई कुछ बोल नहीं रहा था। और यदि बोलने का प्रयत्न करता भी तो मुँह से शब्दों की नहीं, तीखे धारदार शस्त्रास्त्रों की ही वर्षा होती।

अन्त में स्वयं मगधपति ने ही मौन भंग किया—पुष्यमित्र, सम्राट् अशोक द्वारा प्रतिपादित प्रणाली ही हमारी राजनीति का मूलभूत सिद्धान्त है। हम उससे जौ बराबर भी इधर-उधर नहीं हो सकते। इसमें कोई मीनमेख नहीं। यज्ञसेन को हमें प्रेम से ही जीतना है। उसे उसकी भूलें समझानी हैं। सैन्य-महोत्सव में दो दिन की देर-अबेर से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। इसी लिए हमारा कहना है कि तुम और अग्निमित्र दोनों ही वहाँ चले जाओ। उसे प्रेम से जीता जा सकता है। तुम्हें अपने कार्य में सफलता प्राप्त होगी, इसमें हमें तनिक भी सन्देह नहीं।

'परन्तु क्या महाराज भी जानते हैं,' पुष्यमित्र ने दृढ़ता से कहा, 'कि यदि हमने सभी को प्रेम से जीतने का प्रयत्न किया तो परिणाम क्या होगा?'

'हाँ, प्रेम का साम्राज्य प्रसारित होगा।' मगधपति ने उत्तर दिया, 'मनुष्यों मे पारस्परिक समझ की वृद्धि होगी। और यही हम चाहते भी हैं।'

'महाराज जालौक को प्रेम से जीतना चाहते थे; परिणाम यह हुआ कि काश्मीर हाथ से निकल गया और हम देखते रह गये। महाराज सुभगसेन को भी प्रेम से जीतना चाहते थे; परिणाम यह हुआ कि तक्षशिला हाथ से निकल गया और हम देखते रह गये। महाराज सागल के यूनानी यवनों को भी प्रेम से ही जीतना चाहते थे; और आज हम देख रहे हैं कि वहाँ कई सत्ताधिकारी बने बैठे हैं। यह तो हमारा सौभाग्य कहिए कि वे आपस में अन्दर-अन्दर लड़ते रहते हैं, नहीं तो उन्होंने कभी से पाटलिपुत्र को घेर लिया होता! क्या महाराज को यह भी पता है कि प्रेम से जीतने की हमारी बातें आज मगध-साम्राज्य की समस्त प्रजा को भयंकर विनाश के गर्त की ओर ढकेले लिये जा

रही है ? प्रजाजन मारे जा रहे हैं। आटविक उनका वध किये दे रहे हैं। माधवसेन-जैसे राजकुलोत्पन्न को प्राण-रक्षा के लिए भाग-दौड़ करनी पड़ रही है। और यज्ञसेन का दमन करने के लिए यहाँ से कोई फटकता भी नहीं। अब तो किसी को जाना ही होगा। महाराज अनुमति प्रदान करें तो अग्निमित्र वहाँ के लिए चल पड़े।'

'आप स्वयं ही क्यों नहीं चले जाते महाबलाधिकृत ? हानि ही क्या है ?'

महामात्य कौंडिन्य के इस सुझाव का अभिप्राय पुष्यमित्र से छिपा न रहा। उसने शीघ्रतापूर्वक कहा—नहीं, मैं नहीं जा सकता महामंत्रीश्वर ! पाटलिपुत्र को मैं यूनानी यवनों के आक्रमण के लिए सूना नहीं छोड़ सकता। वहाँ जायेगा यह अग्निमित्र, अवन्ती-विदिशा का गोप्ता बनकर। महाराज की सुरक्षा का भार अब यह आपको सौंप देना चाहता है। इसी लिए इस समय यहाँ आया है। इसकी सेना तैयार है। तत्काल ही इसे यहाँ से प्रस्थान कर देना चाहिए। महाराज अनुमति प्रदान करें।

कौंडिन्य ने यह सुना तो चौंक पड़ा। पुष्यमित्र की बात का समर्थन करने का अर्थ था अपने हाथों सर्वनाश को निमन्त्रित करना। यदि अग्निमित्र वहाँ पहुँच गया तब तो यज्ञसेन कभी इस ओर आ ही न सकेगा और पुष्यमित्र को घेरने की सारी योजना ही खटाई में पड़ जायेगी। उसने प्रत्याघात किया।

'सुनिए महाबलाधिकृत, यह बात स्पष्ट रूप से आपकी समझ में आ जानी चाहिए कि हमारे महाराज राजनीति और व्यवहार-नीति में सम्राट् अशोक की धर्मनीति के ही प्रबल समर्थक हैं। वह उस नीति से जौ बराबर भी इधर-उधर नहीं होना चाहते। धर्म-विजय का वह स्वप्न में भी परित्याग नहीं कर सकते। तात्पर्य यह कि हम यज्ञसेन से खुल्लम्-खुल्ला युद्ध नहीं करना चाहते। तो ऐसा क्यों न किया जाये कि भद्रघोष को बुला लें और उसके हाथ यज्ञसेन को सन्देश भेज दें....'

'सन्देश ? किस बात का सन्देश ?'

'यही कि यज्ञसेन स्वयं ही यहाँ चले आयें। वह सैन्य-महोत्सव में सम्मिलित नहीं होना चाहते तो न सही, अब कौमुदी-महोत्सव में सम्मिलित हों। यही सन्देश हम उन्हें भेजें।'

'परन्तु उसने तो आपसे स्पष्ट ही कह दिया है।'

'उससे क्या होता है पुष्यमित्र! प्रेम और समझौते में तो इस प्रकार की बातें सतत चलती ही रहती हैं। हमें निराश नहीं होना चाहिए, थकना भी नहीं चाहिए। बार-बार प्रयत्न करते रहना चाहिए। दो-दस बार समझाने से काम न चले तो सौ-हजार बार समझाना चाहिए। कभी तो उसका परिणाम होगा ही। महाराज प्रियदर्शी का यह कथन हमारी राजनीति का मूलभूत सिद्धान्त है।' राजा बृहद्रथ तोतारटन्त की भाँति कह गया।

'और इस बीच माधवसेन और उसके-जैसे अन्य अनेक लोगों को मृत्यु के मुँह में ढकेला जाने दें, क्यों?'

'यह तो महाबलाधिकृत, आप शस्त्रों की मर्यादा अभी तक भी समझ नहीं पाये उसका अनिवार्य परिणाम है। अपनी क्यों नहीं कहते? आपने स्वयं क्या किया? भद्रघोष को कारागार में ढकेल दिया! यज्ञसेन को समझाने-बुझाने के कार्य में उससे कितनी सहायता मिलती, वह कितना उपयोगी होता! परन्तु आपने उसी को बन्दीगृह में ढकेल दिया। अब बताइए?'

पुष्यमित्र तिलमिला गया। चोट बिलकुल सीधी थी। अभी तक शिष्टाचार के दुशाले में लपेट-लपेटकर दोनों एक-दूसरे पर वार कर रहे थे; अब सीधे प्रहार होने लगे। आरम्भ कौंडिन्य ने किया और पुष्यमित्र एक क्षण तो स्तब्ध ही रह गया। वह जानता था कि मगधपति भी कौंडिन्य के शब्दों का उल्लंघन नहीं कर सकता। उसी के कहने से कौमुदी-महोत्सव आयोजित किया जा रहा था। उद्देश्य स्पष्ट था कि यूनानी यवनसुन्दरी माद्री के मोहपाश में बृहद्रथ को पूरी तरह आबद्ध कर समाप्त कर दिया जाये। मूर्ख राजा तो वैसे भी उस नर्तकी पर अनुरक्त था। उसकी झूठी धार्मिकता को उभारने और सहलाने के ही लिए कौमुदी-महोत्सव में बुद्ध के जीवन-प्रसंगों का नृत्याभिनय समाविष्ट किया गया था। धर्म और कामुकता—मगधपति के स्वभाव की इन दोनों विशेषताओं को महामात्य उत्तेजित कर रहा था। इसलिए स्वाभाविक ही था कि मोहाविष्ट राजा महामात्य के कथन का समर्थन करे। कौंडिन्य अपने राजा की स्थिति को बहुत अच्छी तरह समझता था। वह यह भी जानता था कि या तो पुष्यमित्र के सुझाव को स्वीकार किया जा सकता है या उसका

विरोध किया जा सकता है। स्वीकार करने का अर्थ, जैसा कि कहा जा चुका है, स्वयं उसके लिए सर्वनाश होता, इसलिए उसने विरोध करना ही उचित समझा। और इसी लिए उसने भद्रघोष का उल्लेख कर पुष्यमित्र पर सीधा प्रहार कर दिया।

दोनो में संघर्ष छिड़ गया। वाग्युद्ध ने तेजी पकड़ ली। और पुष्यमित्र ने भी उग्र होकर कहा—मंत्रीश्वर, यह आप क्या कह रहे हैं? भद्रघोष को कारागार में किसने डाला, मैंने, आपने आसव का अधिक पान तो नहीं कर लिया है?

'मैंने तो आसव नहीं पीया, आपने ही मद पी रखा है। भद्रघोष राजवाटिका के कारागर मे अब भी बन्दी है।'

'क्या मेरे कहने से?'

'नहीं तो क्या मेरे कहने से?'

मगधपति के आगे ही उनके महामात्य और महाबलाधिकृत पैंतरे बदल रहे थे। यह देख राजा बृहद्रथ ने कहा—ठहरो, ठहरो! तुम दोनो मेरे राज्य के दो स्तम्भ हो—दोनो ही राज्य के लिए आवश्यक और अनिवार्य हो। प्रश्न भद्रघोष का ही है न? यदि वह कारागार में हो तो उसे तत्काल मुक्त किया जाये। अपने कृत्य के लिए उससे क्षमा भी माँग ली जाये। नहीं, इसमे कोई हानि नहीं। प्रेम और समझौते के मार्ग मे सब-कुछ करना पड़ता है। यज्ञसेन को समझाने के लिए हम भद्रघोष को ही भेजेंगे। क्या हुआ? कोई हानि नहीं। भद्रघोष कहाँ है?

'कारागार में....राजवाटिका के कारागार मे....' कौडिन्य ने कहा, 'तलघर मे पडा सड़ रहा है।'

'नहीं, भद्रघोष कारागार मे नहीं है। वह तो विदर्भ के मार्ग का अतिक्रमण कर रहा होगा।'

'आपके कहने से?' महामात्य ने अपने कथन को सही प्रमाणित करने का प्रयत्न किया।

'नहीं, मेरे कहने से नहीं। आपने ही उसे भेजा है, गोसा यज्ञसेन को यह कहने के लिए कि तू विदर्भ मे अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित कर ले!'

'इतना भयंकर आक्षेप !'

'यह आक्षेप नहीं, वास्तविकता है ।'

मगधपति ने फिर बीच-बचाव किया—तो चलकर राज-उद्यान में देख ही क्यों न लिया जाये ? हमें तो समझौते का मार्ग अपनाना है । क्यों, हानि ही क्या है ?

'अवश्य ! अवश्य !' महामात्य तैयार हो गया । वह निश्चयपूर्वक जानता था कि भद्रघोष वहाँ कारागार में पड़ा है । यदि वह महाबलाधिकृत को झूठा प्रमाणित कर दे तो उसकी जीत-ही-जीत थी ।

'हाँ, अवश्य !' पुष्यमित्र ने भी उतनी ही दृढ़ता से और अविलम्ब कहा ।

यह सुना तो महामात्य को बड़ी चिन्ता हुई । सन्देह उसके मन में पैठ गया । क्या सच ही भद्रघोष वहाँ नहीं ? यदि होता तो सेनापति के स्वर में इतनी दृढ़ता कहाँ से आती ?

उसे घबराहट में पड़े देख पुष्यमित्र ने अन्तिम वार किया—मन्त्रीश्वर, आपने आक्षेप किया है कि मैंने भद्रघोष को कारागार में डाल दिया; ठीक है न ?'

'बिलकुल ठीक....'

'पर मैं कहता हूँ कि आपने उसे यज्ञसेन को मगध पर चढ़ा लाने के लिए भेज दिया है । वह कारागार में नहीं है । मेरे पास आपके आक्षेप का यही प्रत्युत्तर है । और मैं माँग करता हूँ कि इसके निवारण के लिए महाराज मगधपति अग्निमित्र को सेना लेकर विदिशा जाने की अनुमति प्रदान करें । यह नितान्त आवश्यक है । अग्निमित्र अवन्ती में गोता बनकर रहेगा । इससे एक लाभ यह होगा कि कलिंग भी दबा रहेगा; वह समझेगा कि इस ओर मगध की दुगुनी सेना है । तो महाराज इस आशय की आज्ञा प्रदान करें....'

'लेकिन मूलं नास्ति कुतो शाखा ? महाबलाधिकृत, आपके कथन में सत्य का अल्पांश भी नहीं । यज्ञसेन को चढ़ा लाने के लिए किसी को भेजने की आवश्यकता ही क्या है ? वह तो मगध का ही है और मगध का ही रहेगा । केवल सन्देश मिलने की देर है और वह दौड़ा आयेगा !'

'हाँ, दौड़ा तो आयेगा, परन्तु सेवक बनकर नहीं, स्वामी बनकर । यह

तो जब जैसा होगा देख लिया जायेगा। अभी तो इसी बात का निर्णय कर लिया जाये कि भद्रघोष के प्रश्न पर हम दोनो में कौन सच्चा और कौन झूठा है।'

'हाँ, अवश्य!'

'परन्तु भद्रघोष गया कहाँ?' मगधपति ने पूछा।

'पड़ा है कारागार में...' कौंडिन्य ने कहा।

'जी नहीं! वह गया है विदर्भ की ओर। विदर्भराज को चढ़ा लाने के लिए।' पुष्यमित्र ने भी उतनी ही दृढ़ता से कहा।

'तो चलो, हम लोग राज-उद्यान में चलें और अपनी आँखों देखकर निश्चय कर लें।' कौंडिन्य ने कहा।

'मैं तैयार हूँ। लेकिन शर्त यह है कि यदि मेरा कथन सच प्रमाणित हो' तो अग्निमित्र अपनी सेना लेकर और गोप्ता बनकर अवन्ती जायेगा। महाराज, मैं मगध का महाबलाधिकृत हूँ। प्रजा की रक्षा का भार मुझ पर है। यह देखना मेरा कर्त्तव्य है कि कोई मुझे भुलावे में डालकर मगध पर आक्रमण न कर दे, पाटलिपुत्र को रौंद न दे। यदि मेरी बात सच होने पर महाराज अग्निमित्र को अवन्ती भेजने का वचन देते हों तो मैं भद्रघोष के प्रश्न को निपटाने के लिए साथ चलने को प्रस्तुत हूँ।'

'अग्निमित्र, तुम विदिशा-अवन्ती की ओर जाने की तैयारियाँ करो। हम राज-उद्यान में जाते हैं। और पुष्यमित्र, बात किसी की भी सच हो, हमारा लक्ष्य तो प्रेम और समझौता है। तुम अग्निमित्र को भी समझा देना कि वहाँ इसी नीति का अवलम्बन करे। एक क्षण के लिए भी न भूले कि वह वहाँ समझौते के लिए जा रहा है। विदिशा से विदर्भ अधिक दूर नहीं है। कोई काम ऐसा न किया जाये, जिससे मालिन्य उत्पन्न हो।'

'लेकिन बात तो मेरी ही सच है।' कौंडिन्य ने जोर देकर कहा।

'तो मेरा कहा भी झूठ नहीं होगा।' पुष्यमित्र ने भी उतने ही जोर से कहा।

और कुतूहल से प्रेरित मगधपति खड़ा हो गया। उसने कहा—चलो, चलकर देख ही लिया जाये कि भद्रघोष कहाँ है? हानि ही क्या है?

और सब-के-सब राज-उद्यान की ओर चल पड़े।

१२ : तो भद्रघोष गया कहाँ ?

पुष्यमित्र जानता था कि अग्निमित्र को अवन्ती जाने की अनुमति मगधपति ने अपने भय के कारण ही प्रदान की है। राजा बृहद्रथ दिखावा तो करता था निर्भयता का, बातें बघारता था धर्म-विजय की, परन्तु वह सेना और प्रदेश-पतियों से निरन्तर डरता रहता था। यही कारण था कि वह किसी प्रदेशपति को कभी कोई कड़ी बात न कहता और न किसी से संघर्ष मोल लेता था। इसी प्रकार सेना के संचालन से भी उसकी जान निकलती थी। इस भय पर आवरण डालने के लिए वह ओट इस बात की लेता कि कहीं लोग उसे अधार्मिक न समझ बैठें।

कौंडिन्य उसके स्वभाव की इस दुर्बलता से लाभ उठाता रहता था। राजा के मन में उसने एक ऐसी प्रवंचना, ऐसा छल उत्पन्न कर दिया था कि बृहद्रथ अपने वास्तविक रूप को भूल उसी छलना का भक्त बन बैठा था।

कायर होते हुए भी अपनी कायरता को धर्म के आवरण में छिपाने के सतत प्रयत्न की ही तरह राजा के स्वभाव की दूसरी बड़ी दुर्बलता उसकी कामुकता और विलासप्रियता थी। इस दुर्बलता को वह धर्म के साथ ही सौन्दर्य और कला के प्रेम के आवरण में छिपाकर रखता था। श्रेष्ठतम रूपागनाओं और नर्तकियों से उसे भय लगता था। उच्चकोटि की कलाओं को समझने और उनमें आनन्दित होने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी। वह तो था सुलभता से प्राप्त की जा सकें ऐसी गोरी ललनाओं को पर्यंकशायिनी बनाने का लोभी।

इस प्रकार वह सही अर्थों में 'स्थापयिष्यति मोहात्मा विजयं नाम धार्मिकम्' था। कला का विलास नहीं, धर्म के आवरण में छिपा हुआ रूप का विलास। रूप-सौन्दर्य और कला-विलास नहीं, निरी कामुकता। कला से तो वह सहस्र योजन दूर रहता था। बड़ा विरोधाभास था उसके जीवन में। अत्यधिक कायर, परन्तु ओट निर्भयता की, प्रेम और समझौते की। सेना और सैनिक कारवाइयों से डर, परन्तु ओट धर्म-सेनापतित्व की। प्रदेशपतियों से डर, परन्तु ओट प्रेम और समझौते से विजय प्राप्त करने की। विलास-प्रेम और कामुकता अत्यधिक, परन्तु ओट भगवान तथागत के युग की आम्रपाली-जैसी किसी

नर्तकी की, धार्मिकता और धर्म सन्देशों की। सच पूछा जाये तो वह आदमी ही छलों, प्रवचनाओं, ओटों और आवरणों का था। इसी लिए तो उसे 'धर्मवादी अधार्मिक' कहा गया।

कौडिन्य उसके आसन को पा गया था और इसी लिए उसे कठपुतली की भाँति नचाता रहता था। इसी लिए उसने कौमुदी-महोत्सव और उसमें माद्री के नृत्य-अभिनय के नाटक का आयोजन किया था। एक सफल सूत्रधार के रूप मे कौडिन्य यह सावधानी रखता था कि इस नाटक का प्रमुख पात्र राजा बृहद्रथ अपना अभिनय बराबर करता रहे, धर्मराज बनने के अपने ढोंग को छोड़ न बैठे, वस्तुस्थिति को वास्तविक रूप में कभी देखने-समझने न लगे।

सच में तो इस तरह का नाटक उन दिनों पाटलिपुत्र में अहर्निश होता रहता था। उसमें अभिनय करनेवाला प्रत्येक पात्र इस बात को जानता था कि जो हो रहा है वह निरी बनावट है—केवल नाटक है; परन्तु फिर भी प्रत्येक नट और अभिनेता अपने को सच मानता था। सामान्य नाटक का अभिनेता जानता और मानता है कि वह केवल नट है, और नाटक सच्चा है। पर इस नाटक की यह विशेषता थी कि अभिनेता यह जानते हुए भी कि नाटक झूठा है अपने-आपको सच्चा और समझदार मानता था। प्रमुख अभिनेता मगधपति अपने-आपको धर्मराज ही समझता था, यद्यपि वह था नहीं। कौडिन्य अपने-आपको सर्वसत्ताधीश मानता था, यद्यपि वह था नहीं। अग्निमित्र अपने-आपको राजा का रक्षक समझता था, यद्यपि रक्षा कर नहीं सकता था। पुष्यमित्र अपने-आपको मगधपति का गुरु, नेता और मार्गदर्शक मानता था, यद्यपि इनमे से एक भी काम वह कर नहीं पा रहा था। और अब इस नाटक में दो पात्रों का समावेश और हो गया था—एक यूनानी यवनसुन्दरी माद्री और दूसरा साधु लोहन। इनके अभिनय के लिए कौमुदी-महोत्सव का रंगमंच निर्मित किया जा रहा था, इस विश्वास के साथ कि उसके द्वारा धार्मिक वातावरण और पारस्परिक समझ को विकसित किया जा सकेगा। कौडिन्य का इस रंगमंच के निर्माण मे प्रमुख हाथ था।

लेकिन सहसा इस प्रधान नाटक के बीच में विद्युत् आघात के रूप मे भद्रघोषवाला अवान्तर प्रसंग आ उपस्थित हुआ।

महामात्य का कहना था कि भद्रघोष राजवाटिका के कारागार में है; और महाबलाधिकृत का कहना है कि वह वहाँ है ही नहीं। जिसका भी दावा सच्च होता वही विजय-श्री का वरण करता। महामात्य ने इस प्रसंग के अनुकूल निपटारे में महाबलाधिकृत को लज्जित कर अपनी बात उससे स्वीकार कराने का उपयुक्त अवसर देखा। इसलिए सभी उस ओर चलने को प्रस्तुत हो गये।

राजा बृहद्रथ भी उठ खड़ा हुआ। चलते-चलते उसने कहा—हाँ महामात्य, हाँ महाबलाधिकृत, हम लोग चलकर देख ही लें। निश्चय कर ही लिया जाये कि भद्रघोष वहाँ है या नहीं। दोनो बातें तो हो नहीं सकतीं। एक ही बात हो सकती है। यदि हुआ तो हमें समझाने-बुझाने और समझौता-भावना को आगे बढ़ाने का अवसर मिलेगा। न हुआ तो उसकी ढूँढ़-खोज की जायेगी। ऐसा करने से भी पारस्परिक समझ तो बढ़ेगी ही। स्वयं महाबलाधिकृत पुष्यमित्र उसका पता लगायेंगे। महाबलाधिकृत द्वारा पता लगाये जाने का अभिप्राय है, पारस्परिक समझ और सद्भावना का और भी अधिक विकास। जैसे भी हो, हमे यज्ञसेन को कौमुदी-महोत्सव में निमन्त्रित कर ले ही आना चाहिए। ऐसा करने से उसके मन का दुःख मिट जायेगा। हमारे सन्देह का निवारण भी होगा। मानव-प्रेम की विजय होगी और जैसा कि भगवान् तथागत ने कहा है, हमारे हृदय का प्रेम उसके हृदय के प्रेम को जीत लेगा। इससे अधिक हमें और क्या चाहिए ? इसलिए दूसरे काम तो फिर किये जायें, लेकिन पुष्यमित्र, अभी सबसे पहले भद्रघोष का पता लगाकर उसके मन को जीता जाये। वह गया कहाँ ? आटविकों ने तो नासमझी का कोई काम नहीं कर डाला ? यदि किया हो तो उन्हे भी प्रेम से जीतना होगा। भगवान हमें कितने अवसर प्रदान कर रहा है—मैं तो यही सोचकर दंग रह जाता हूँ। चलो, चलो, चलें....

राज-उद्यान की ओर जाते हुए मगधपति बृहद्रथ इसी तरह बकबक किये जा रहा था। भाषा उसकी ऐसी थी कि एक बार मुनि पतंजलि भी सुनकर चकित रह जायें। थोथे उपदेशकों की तोतारटन्त-जैसी वह भाषा थी। परन्तु मगधपति तो उसे सर्वश्रेष्ठ भाषा ही समझता था। अपने ही शब्दाडम्बर पर मुग्ध वह निरन्तर उत्साह मे आता बकता चला जा रहा था।

जैसे-जैसे राज-उद्यान निकट आता गया पुष्यमित्र की चिन्ता बढ़ती गई। वह मन-ही-मन घबड़ाने लगा। वसुमित्र से उसने कह तो दिया था कि भद्रघोष को वहाँ रखना सुरक्षित न होगा। इसके उत्तर मे वसुमित्र ने कहा था कि चिन्ता की बात नही, सब व्यवस्था हो जायेगी। पता नहीं, वसुमित्र ने क्या किया? उसे हटा दिया या वहीं रख छोड़ा? युवकों मे आत्मविश्वास तो होता ही है। सोचा होगा कि किसको पता चलता है। और यदि भद्रघोष को वहीं रख छोड़ा हो तो क्या होगा?

पुष्यमित्र की आकुलता बढ़ गई। यदि भद्रघोष वहीं हुआ तो सिर नीचा हो जायेगा; महामात्य के आगे नीचा देखना पड़ेगा।

यदि भद्रघोष वहाँ हुआ तो?—इस जटिल प्रश्न का उत्तर खोजते हुए उसने सहारे के लिए अपना हाथ साथ-साथ चल रहे अग्निमित्र के कन्धे पर रख दिया।

पिता के हाथ का स्पर्श अपने कन्धे पर अनुभव करते ही अग्निमित्र पिता की घबराहट को एकदम ताड गया। वह स्वयं भी चाहता था कि भद्रघोष वहाँ न हो। तभी वह उसे खोजने के बहाने तत्काल विदिशा-विदर्भ की ओर जा सकता था। यज्ञसेन ने पहला वार कर ही दिया था। सुमित्र के मुँह से वह सारा किस्सा सुन आया था। उसका तत्काल जाना आवश्यक हो गया था। यदि भद्रघोष राज-उद्यान के तलघर में न मिला तो वह उसकी तलाश में अविलम्ब जा सकता था। परन्तु यदि भद्रघोष वहाँ मिल गया तब तो सारी बाजी ही उलट जायेगी और पिता लज्जित भी होगे।

वह अपने पिता के और भी निकट आ गया और मन्द स्वर में बोला—पिताजी, आपका क्या अनुमान है? क्या भद्रघोष वहीं होगा? और हुआ तो क्या होगा?

'हुआ तो बेटा अग्निमित्र, हमारा सिर नीचा हो जायेगा। हो सकता है कि तेरा प्रयाण भी रुक जाये या कम-से-कम स्थगित तो हो ही जाये। जब कि स्थिति यह है कि खोने के लिए हमारे पास एक क्षण भी समय नहीं है। परन्तु मुझे विश्वास है, और जितना मैं वसुमित्र को जानता हूँ, उसके आधार पर कह सकता हूँ कि उसने ऐसे किसी अवसर की सम्भावना ही नहीं छोड़ी होगी।'

'आप निश्चयपूर्वक कह सकते हैं ?'

'हाँ, लगता तो निश्चित ही है।' पुष्यमित्र को वसुमित्र की योग्यता में पूरा विश्वास था।

'तब तो पिताजी, हमारा मार्ग सुगम हो जायेगा। भद्रघोष को खोजने के लिए किसी को जाना ही होगा। मैं ही चला जाऊँगा।'

'बहुत उत्तम !' पुष्यमित्र अब बिलकुल आश्वस्ती हो गया था। उसे इस बात से भी बड़ा सन्तोष हुआ कि अग्निमित्र उसके विचारों के अनुरूप ही सोचने-समझने लगा था।

तभी अग्निमित्र ने एक दूसरा प्रश्न किया—मान लीजिए, वह मिल ही गया और हमारा सिर नीचा हो ही गया, तो क्या हमें अपनी योजना को स्थगित रखना होगा ? तब तो अवश्य ही यज्ञसेन को और भी अवसर मिल जायेगा।

'लेकिन हम उसे अवसर नहीं दे सकते। जो भी हो, तुम्हें भागकर विदिशा तो जाना ही होगा।'

अग्निमित्र ने नेत्रों के संकेत से स्वीकृति की सूचना दी।

तब तक राज-उद्यान का प्रवेश-द्वार सम्मुख दिखने लगा था।

वसुमित्र वहाँ द्वार पर ही खड़ा उन सबकी प्रतीक्षा कर रहा था। पुष्यमित्र एकदम निश्चिन्त हो गया। वह वसुमित्र को वहाँ खड़ा देख समझ गया कि घबराने का कोई कारण नहीं है।

लेकिन वसुमित्र को देखते ही कौडिन्य ने उच्च स्वर में कहा—क्यों वसुमित्र, तुमने उस बेचारे भद्रघोष को बन्दी बनाकर कहाँ रख दिया ? क्या यह सोचकर तो बन्दी नहीं कर लिया कि वह महाराज से बिना मिले चला न जाये ? पर महाराज स्वयं ही उससे मिलने के लिए आ गये हैं। चलो, उसे मुक्त कर दिया जाये....

'आपसे किसने कह दिया कि मैंने उसे बन्दी किया है ?'

'कहेगा कौन ? पाटलिपुत्र में कौन नहीं जानता कि नगर का सच्चा रक्षक तो तू ही है। हम तो अब बूढ़े हुए' और रह गये केवल नाम के रक्षक। क्यों महाबलाधिकृत, कुछ झूठ तो नहीं कह रहा ? अरे, आप बोल क्यों नहीं रहे ?'

परन्तु पुष्यमित्र क्या कहता ! वह तो फिर चिन्ता के सागर में गोते लगाने लगा था। वसुमित्र का उत्तर ही ऐसा था, मानो उसने कौंडिन्य के कथन को स्वीकार कर लिया हो। फिर कौंडिन्य ने वसुमित्र को पाटलिपुत्र का रक्षक बनाकर तो रही-सही कसर भी पूरी कर दी थी। अब भद्रघोष वहाँ हो या न हो—दोनो ही स्थितियों में दोष तो सारा पुष्यमित्र के ही माथे मढ़ा जाने को था। परन्तु वसु ने उत्तर देने में ऐसी भूल क्यों कर दी? क्या सबको साथ आया देख घबरा तो नहीं गया? बात क्या है? उसने कौंडिन्य की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप चलता रहा।

सब आगे बढ़े। वसुमित्र सब के आगे-आगे था। तलघर के निकट आकर वसुमित्र ने गुप्त-द्वार के यंत्र को सावधानी से दबाया। द्वार खुल गया। आगे-आगे उसने प्रवेश किया। सब उसके पीछे थे। सहसा कौंडिन्य उसको पीछे धकेलता हुआ आगे बढ़ गया। वह उच्च स्वर में बोलता हुआ दो-एक सीढ़ियाँ तेजी से नीचे उतर गया।

'भद्रघोषजी! हम आपसे क्षमा माँगते हैं। हमारे बलाधिकृत के पुत्र कुछ अधिक उत्साहित हो उठे। उन्होंने राजभक्ति का कुछ अधिक प्रदर्शन कर दिया! उन्हें यह अच्छा नहीं लगा कि आप महाराज से बिना मिले और उनकी अनुमति ग्रहण किये बिना ही चले जायें....'

तभी एक अनुचर बाहर से दीपिका ले आया।

दीपिका के प्रकाश में तलघर जगमगा उठा। महामात्य ने चारों ओर देखा और देखते ही रह गये। वहाँ कोई न था!

महामात्य का विस्मित स्वर सुन पड़ा—यहाँ तो कोई नहीं है वसुमित्र!

'परन्तु आपसे कह किसने दिया कि यहाँ कोई है? कोई था ही नहीं तो होता कहाँ से?'

वसुमित्र के इस उत्तर ने महामात्य के पाँवों को जैसे वहीं जकड़ दिया। उधर पुष्यमित्र के मन की कली-कली खिलने लगी।

तभी वसुमित्र ने कहा—जिसने भी आपसे कहा, महामात्य, वह आपका और हमारा—दोनो का ही शत्रु होना चाहिए। वह हम लोगों के बीच संघर्ष उत्पन्न करवाना चाहता है। मैंने तो आपसे पहले ही निवेदन किया था कि मैंने

स्वयं अपनी आँखों भद्रघोष को बाहर निकलते और अश्व पर सवार होकर जाते देखा। अश्व भी उनका बहुत ही उत्तम, दस योजन की यात्रा करने की सामर्थ्यवाला था। फिर वह यहाँ होते कहाँ से ? लेकिन यह तो बताइए कि इस प्रकार के असत्य समाचार आपको दिये किसने ?

वसुमित्र के इन शब्दों पर पुष्यमित्र मुग्ध होकर डोल उठा। उसने मन-ही-मन कहा—यह तात, यह पुत्र निश्चय ही मगध का उद्धार करेगा !

और उसे दसों दिशाएँ अपने मन की इस बात को प्रतिध्वनित करती हुई-सी प्रतीत हुईं।

१३ : पुष्यमित्र की नयी चिन्ताएँ

भद्रघोष के अदृश्य होने का वैसे तो कोई महत्त्व नहीं था, उसे अदृश्य रखना ही था; परन्तु दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो यह छोटी-सी बात बहुत ही विस्फोटक भी थी। भद्रघोष यज्ञसेन का दाहिना हाथ था। उसे यहाँ बन्दी कर लिया गया है, यह समाचार महामात्य विदर्भराज को अवश्य भेजेगा। और पता नहीं तब यज्ञसेन क्या कर बैठे ?

हो सकता है कि वह आक्रमण ही कर दे ! वह एक साथ मगध के दो प्रबल शत्रुओं के बल-बूते पर कूद रहा था। उनमें एक तो था कलिंग-नरेश खारवेल। उसकी गजसेना उस समय के भारतवर्ष में सबसे श्रेष्ठ और शक्ति-शाली थी। दूसरा बलवान शत्रु था आन्ध्रराज शातकर्णी। प्रतिष्ठानपुर (पैठण—नासिक) उसकी राजधानी थी और राज्य फैला हुआ था ठेठ आन्ध्र तक। इसी लिए वह आन्ध्र-शातवाहन कहकर पुकारा जाता था। पश्चिम अवन्ती का प्रदेश उसके राज्य की सीमा के बहुत ही समीप था और वह उसे अपने राज्यान्तर्गत ही मानने लगा था। वैसे तो यह प्रदेश अवन्ती का ही एक भाग था और समस्त अवन्ती पर वर्षों से मगध का अधिकार चला आता था। परन्तु इन दिनों सभी प्रदेशपति मगध के थे भी और नहीं भी; उसी प्रकार सभी प्रदेश मगध के अन्तर्गत होते हुए भी मगध के नहीं थे; और यही स्थिति अवन्ती की भी हो रही थी। शातकर्णी ने इस स्थिति से लाभ उठाकर उज्ज-यिनी पर अपनी सत्ता बहुत-कुछ स्थापित कर ली थी। विदर्भ का गोसा यज्ञ-

सेन इस शातकर्णी के बल पर तो कूदता ही था, उसने कतिपय यवन राजाओं से भी सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे। उसे छेड़ना बर्रे के छत्ते में हाथ डालने की तरह था। जरा-सा छेड़ा और विस्फोट हुआ।

यज्ञसेन शातकर्णी की सहायता करता था और शातकर्णी यज्ञसेन को बढ़ावा देता था। खारवेल की अपेक्षा इस शातकर्णी से मगध को भय भी अधिक था। एक तो इसका राज्य कलिंग की अपेक्षा अधिक समीप था; दूसरे, इसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुर से ठेठ भरुकच्छ तक एक महामार्ग चला गया था। इस मार्ग का बड़ा ही सामरिक महत्त्व था। यदि शातकर्णी उज्जयिनी की ओर जरा भी हलचल करता तो सिन्धु, सौवीर, आनर्त्त, कच्छ, सौराष्ट्र, अपरान्त, लाट आदि सभी प्रदेश, जो अभी तक चन्द्रगुप्त मौर्य और महान् सम्राट् अशोक के प्रताप के कारण अपने-आपको मगध का अंग माने हुए थे, संकट में पड़ जाते और सम्भवतः मगध से विच्छिन्न हो जाते।

और मत्स्यदेश (अलवर-जयपुर के आस-पास का प्रदेश) की सीमा और उसके पार तक तो सप्त राजा—यूनानी यवन पहुँच ही गये थे।

इस प्रकार मगधपति का प्रदेश पाटलिपुत्र के आस-पास ही सीमित हो गया था।

स्थिति बड़ी ही जटिल हो गई थी। इस समय मगधपति के मारे जाने के समाचार सुनते ही शत्रु चारों ओर से आक्रमण कर देते और साम्राज्य-व्यापी उथल-पुथल आरम्भ हो जाती। और मगधपति जीवित रहता तो पाटलिपुत्र के बचने में भी सन्देह था।

यहाँ विष की गाँठ महामात्य था, तो वहाँ यज्ञसेन था, शातकर्णी था, खारवेल था। और इन सब के साथ थे सात यवन राजा! प्रश्न यह था कि किसका दमन किया जाये और किसे छोड़ा जाये? कहाँ से आरम्भ करे और कहाँ अन्त? और यवन-राजाओं का दमन किस प्रकार किया जाये? पुष्यगुप्त के सामने ये सभी प्रश्न मुँह बाये खड़े थे और उत्तर माँग रहे थे।

भद्रघोष के आगमन ने स्थिति को और भी जटिल तथा विस्फोटक कर दिया था। पुष्यमित्र ने अग्निमित्र को विदिशा-विदर्भ की ओर जाने के लिए तैयार कर लिया था, वह प्रस्तुत भी हो गया था, राजा की अनुमति भी प्राप्त

हो गई थी; परन्तु उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही यज्ञसेन ने युद्ध छेड़ दिया तो क्या होगा? और कहीं शातकर्णी भी साथ ही उठ खड़ा हुआ तो क्या होगा! और इस तरह के आकस्मिक युद्ध से प्रोत्साहित होकर यूनानी यवन पाटलिपुत्र पर चढ़ आये तो क्या होगा! तब होगा यह कि चारों ओर अराजकता फैल जायेगी और मगध उसमें से कभी उबर न सकेगा।

परिस्थिति की इस जटिलता और भयानकता ने पुष्यमित्र की चिन्ता को बहुत बढ़ा दिया था और ऐसी ही चिन्ताग्रस्त मनःस्थिति में वह कौंडिन्य से भद्रघोष के प्रश्न पर उलझ बैठा था। उस महाशठ ने भी पहले तो आवेश में आकर दो-दो हाथ दिखाये, परन्तु बाद में, राजवाटिका में आकर, अपना रंग-ढंग कुछ इस तरह बदला कि पुष्यमित्र के हाथों के तोते ही उड़ गये। बहुत प्रयत्न करके भी उसकी समझ में नहीं आया कि अब महामात्य कौंडिन्य का इरादा क्या है! क्या वह अपने सारे अपमान को घोलकर पी गया, या भद्रघोष को ढूँढ़ निकालने के लिए आकाश-पाताल एक कर देना चाहता है, या यज्ञसेन को चढ़ा लाना चाहता है, या चारों ओर अराजकता, अव्यवस्था मचाकर स्वयं मगधपति बन जाना चाहता है, या आखिर क्या करना चाहता है! पुष्यमित्र घूर-घूरकर उसके चे देखता रहा, उसके मनोभावों को पढ़ने का प्रयत्न करता रहा; परन्तु वहाँ कुछ भी न मिला और पुष्यमित्र को निराश ही होना पड़ा।

कौंडिन्य को जब विश्वास हो गया कि भद्रघोष तलघर में नहीं है तो वह इतने सहज भाव से बाहर निकल आया मानो एक अति सामान्य कुतूहल का निवारण किया हो और उसे जरा भी बुरा न लगा हो। वह जोर से खिलखिला भी पड़ा और सहज स्वर में बोला—महाराज, यहाँ तो कोई नहीं है। इसी को तो कहते हैं कि आदमी कई बार देखकर भी नहीं देख पाता या गलत देख जाता है। मुझे सदैव यह भय बना रहता है कि कहीं आटविक यज्ञसेन के प्रति अपना रोष प्रकट करने के लिए भद्रघोष का अपहरण न कर ले जायें। यद्यपि यज्ञसेन ने उन्हें प्रेम और समझौते के द्वारा ही वश में किया है फिर भी थोड़े-बहुत आटविक तो उसके शत्रु बन ही गये होंगे और वे उसे हानि पहुँचाने की ताक में रहते होंगे। इसी भय के कारण, मैं सोच रहा था

कि भद्रघोष गया न होगा। परन्तु दीखता है, वह चला ही गया, सम्भवतः विदर्भ के मार्ग में ही हो। अब तो महाबलाधिकृत को उसका पता लगाना चाहिए। महाराज ने अग्निमित्र को भी जाने की अनुमति दे दी है और उन्हे उसी ओर जाना है, तो क्यों न वह मार्ग मे भद्रघोष को ढूँढ़ते चलें।

कौंडिन्य के मुँह से इतनी सारी बातें सुनकर भी पुष्यमित्र को उसके मनोगत विचारो का कुछ भी पता न चल सका। वह उसका मुँह ही देखता रह गया।

इतने में मगधराज ने कहा—अग्निमित्र, तुम अवश्य जाओ। विदिशा सुन्दर नगर है। लेकिन वहाँ जाकर तुम पारस्परिक समझ का ही प्रचार करना, समझौता-भावना को ही प्रोत्साहन देना, भगवान् तथागत के जीवन-प्रसंगों और संस्मरणों को उत्कीर्ण करवाना। आटविकों को भी प्रेम से ही जीतना....अब विलम्ब करने का कोई अर्थ नहीं, भले कल ही चले जाओ। हो सकता है कि भद्रघोष तुम्हें मार्ग में ही मिल जाये। और देखो, यज्ञसेन को समझौते के मार्ग का अवलम्बन करके ही यहाँ कौमुदी-महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए भेजना। क्यों पुष्यमित्र, सभी काम तो निर्विघ्न हो गये न? भद्रघोष के प्रश्न का समुचित समाधान हुआ। तुम लोग आपस में समझ गये। हम सब के सन्देह का निवारण हुआ। और कौमुदी-महोत्सव की भूमिका तैयार हो गई। हमें इससे अधिक और चाहिए ही क्या?

पुष्यमित्र मन में तो इस मूर्ख राजा को गालियाँ दे रहा था, परन्तु प्रकट में उसने कहा—इससे अधिक तो कुछ भी नहीं महाराज! हम फिर विचार-विनिमय करेंगे। अभी तो मैं अग्निमित्र के जाने की तैयारियाँ करने की अनुमति चाहता हूँ देव!

'हाँ-हाँ, अवश्य करो। तुम पिता-पुत्र हमारे राज्य की धुरा का वहन कर रहे हो और हमारे यह महामात्य तो बलिष्ठ वृषभ के ही समान हैं। इसीलिए तो मैं इतना निश्चिन्त हूँ और भगवान् तथागत के उपदेशों के चिन्तन-मनन मे संलग्न रह सकता हूँ....लेकिन वह तुम्हारा पौत्र वसु कहाँ गया? बड़ा होनहार लड़का है वह! ओ....वसुमित्र....'

वसुमित्र तत्काल भागा आया।

'क्यों जी, तुमने हमें बताया भी नहीं कि भद्रघोष यहाँ नहीं है?'

'जी, कह तो रहा था लेकिन मुझ छोटे की बात मानी ही किसने!'

'कौन तुम्हें छोटा कहता है? अब तो बड़े हुए और कल को मगध की महान् सेना का संचालन करोगे। महाबलाधिकृत, यह आपका भार उठायेगा। बड़ा ही होनहार है।'

'यथार्थ है प्रभु! यह मेरा ही नहीं, मगध-साम्राज्य का भी भार वहन करेगा। यह भार उठा ले तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ। मगध का महान् राज्य जैसा पहले था....'

'हो जायेगा....वैसा भी हो जायेगा....' मन की दुनिया में विचरण करने-वाले मस्त जीव ने कहा।

'हो क्या जायेगा, महाराज, हो ही रहा है।' महामात्य ने मूर्ख राजा को चंग पर चढ़ाते हुए कहा, 'विदर्भ-जैसा प्रदेश भी अब यहाँ समझौते के लिए भागा आयेगा....आज ही मैंने सुना, पुष्यमित्र, कि प्रतिष्ठानपुर का शातकर्णी भी हमारे प्रति आदर-मान की भावना रखता है। यज्ञसेन के साथ उसका आचरण-व्यवहार कुछ इस प्रकार का है कि कलिंगराज खारवेल मगध की ओर बढ़ने का साहस नहीं कर सकता। शातकर्णी की सेना के बारे में तो तुमने सुना ही होगा। बड़ी शक्तिशाली सेना है उसके पास। इसी लिए मेरा अनुमान है कि खारवेल और शातकर्णी दोनो में से कोई भी एक-दूसरे के भय के कारण सम्प्रति इस ओर आने का साहस नहीं करेगा। और इस बीच हम दोनो को ही प्रेम से जीत लेंगे। हमारे प्रति सर्वत्र मान-सम्मान की भावना बढ़ती जा रही है....सर्वत्र....'

पुष्यमित्र ने प्रत्युत्तर में कुछ नहीं कहा। लेकिन उसके मन का यह सन्देह कि यज्ञसेन शातकर्णी के साथ मिलकर उसके सहयोग से कोई षड्यन्त्र कर रहा है, दृढ़ हो गया। वह महाराज का अभिवादन कर अग्निमित्र के सैन्य-शिविर की ओर चल पड़ा। मार्ग में वह महामात्य की कही बातों पर सोचता-विचारता चला जा रहा था। जिस प्रकार उस कूटनीति-प्रवण कौडिन्य ने भद्रघोष के प्रसंग का समाहार किया उससे निश्चय ही किसी कपट-लीला की गन्ध आती थी।

'अग्निमित्र !' वह सहसा चलते-चलते रुक गया, 'तू वहाँ जा तो रहा है, परन्तु इतना अवश्य ध्यान में रखना कि उस यज्ञसेन ने वहाँ अपने लिए कोई सहायक सेना प्रस्तुत कर रखी होगी। आजकल किसी भी प्रदेशपति को न मगध की चिन्ता है, न मगधपति की। प्रत्येक अपने-अपने प्रदेश का स्वतन्त्र राजा बन बैठना चाहता है। हो सकता है कि यज्ञसेन ने शातकर्णी का प्रदेश-पति बनना भी स्वीकार कर लिया हो। कौंडिन्य के कथन से प्रतीत होता है कि यज्ञसेन ने शातकर्णी से कोई समझौता अवश्य किया है। शातकर्णी की दृष्टि उज्जयिनी पर लगी हुई है और उज्जयिनी का स्वयं हमारे लिए भी बहुत अधिक महत्त्व है। हम उज्जयिनी को अपने हाथ से जाने नहीं दे सकते। इस समय लड़ भी नहीं सकते। मगध-साम्राज्य की तीनों दिशाओं में भयंकर ज्वालामुखियों का विस्फोट होने को ही है। तू वहाँ बहुत ही सतर्कता से काम करना। युद्ध तो वहाँ होगा, परन्तु यवन यहाँ चढ़ आयेंगे। आज महामात्य ने जैसा आचरण किया वह इसी बात की ओर संकेत करता है।'

'तो चिन्ता क्या है पिताजी, जो भी सामने आयेगा उससे हम निपट लेंगे....'

'परन्तु बेटा, हम अभी न तो शातकर्णी को छेड़ना चाहते हैं और न खार-वेल को ही। हमारे युद्ध का सारा लक्ष्य अभी यवनों की ओर, यवन राजाओं की ओर केन्द्रित होना चाहिए। यदि उन्हें निष्कासित नहीं किया गया तो वे मध्यमिका के इस पार आनर्त्त, सौराष्ट्र, भरुकच्छ ही नहीं, उज्जयिनी तक बढ़ आयेंगे। तब गान्धार का राज्य महान् होगा, साम्राज्य भी गान्धार का ही होगा और मगध का अस्तित्व नामशेष हो जायेगा। इसी लिए हमें सबसे पहले विदेशी यवनों से निपटना होगा....और वसु ! कहाँ है वसु ? हाँ वसु,' पुष्यमित्र ने अत्यन्त मन्द स्वर में पूछा, 'तूने उसे रखा कहाँ है ?'

'दादाजी, अभी तो उस बात को भूल ही जाइए। वह जहाँ भी है जीवित है और यथा समय, यथा अवसर मैं उसे प्रस्तुत कर दूँगा।'

पुष्यमित्र ने वसुमित्र की ओर चुभती दृष्टि से देखा लेकिन वह इससे अधिक कुछ कहने के लिए प्रस्तुत न हुआ।

अग्निमित्र अपने शिविर की ओर चला गया और शीघ्र ही सेना को

प्रस्तुत होने का आदेश देनेवाले शंख की ध्वनि वातावरण में गूँजने लगी।

'मैंने आपसे इसी लिए नहीं कहा, दादाजी, कि कहीं पिताजी अपना प्रयाण स्थगित न कर दें।'

'प्रयाण स्थगित कर दें? क्यों? ऐसी कौन-सी बात है वसुमित्र?'

वसुमित्र ने उसके अत्यन्त समीप आकर कहा—बड़े भाई सुमित्र (अग्निमित्र का बड़ा बेटा) कौमुदी-महोत्सव में स्वयं अभिनय करने जा रहे हैं। उनका नृत्य-नाट्य-प्रेम तो आपसे भी छिपा नहीं है!

'सुमित्र अभिनय करने जा रहा है? तुझसे किसने कहा वसुमित्र?' पुष्यमित्र ने ऐसे स्वर में कहा मानो किसी ने उसके सिर पर डण्डा ही जमा दिया हो। उसने सिर थाम लिया और सिर को थामे हुए ही बोला, 'अरे वसु, तू यह क्या कह रहा है? सुमित्र का कौमुदी-महोत्सव के अभिनय से क्या सम्बन्ध! यहाँ देश सुलग रहा है, उसका स्थान सेना में होना चाहिए या नाचने-गानेवालों के बीच? हा हन्त!'

'परन्तु मैं सच कह रहा हूँ दादाजी!'

'सच ही होगा बेटा! जब दैव रूठता है तो इसी भाँति रूठता है! हन्त! हा हन्त....'

और पुष्यमित्र बहुत देर तक कुछ बोल ही न सका।

१४ : कौमुदी-महोत्सव के नट

अग्निमित्र का पुत्र वसुमित्र विद्युत्-वल्लरी की भाँति तेजस्वी और चपल था। लेकिन उसके दूसरे और बड़े बेटे सुमित्र की प्रकृति बिलकुल ही भिन्न थी। वह पंच मकार का भक्त था—मद्य, महफिल, मस्ती, मानिनी और मौज-मजा में उसके प्राण बसते थे। वसुमित्र का स्वभाव और वृत्तियाँ उसे तनिक भी नहीं सुहाती थीं। वह स्वयं को महान् कलाकार समझता था। अभिनेता के रूप में अपना परिचय दिये जाने और प्रसिद्धि होने पर उसे परम सन्तोष होता था। परन्तु वास्तव में वह अभिनेता तो क्या, सामान्य कोटि का नट भी नहीं था। कलाकार तो वह होता ही कहाँ से? फिर भी उसे यह भ्रम हो गया था कि वह रंगमंच के ही लिए जन्मा है!

इसलिए जब उसे मालूम हुआ कि कौमुदी-महोत्सव होनेवाला है तो उसके आनन्द की सीमा न रही। फिर तो वह अपना सारा समय—रात-दिन के चौबीसों घण्टे—नाटक-मण्डली के साथ ही बिताने लगा।

मगधराज के आन्तर्वंशिक मित्रदेव ने यही समाचार वसुमित्र को दिये थे। सुमित्र इन दिनों अपना अधिकांश समय राजप्रासाद में ही व्यतीत करता था। कौमुदी-महोत्सव की पूरी नट-मण्डली अभिनेता, अभिनेत्रियाँ, नर्तक, नर्तकियाँ—सभी इस महोत्सव को सफल बनाने के लिए परिश्रम-रत थे।

महामात्य कौंडिन्य की भी इस महोत्सव में पूरी रुचि थी। वैसे रस और रुचि तो मगधपति को भी थी, परन्तु महामात्य का उत्साह सबसे अधिक-था। राजा रहे या न रहे, वह सभी कार्यों, अभिनयों और प्रसंगों में दिल खोलकर हिस्सा लेता और लोगों को बढ़ावा देता रहता था।

इस महोत्सव के आकर्षण का मुख्य केन्द्र यवनसुन्दरी माद्री थी। वही आम्रपाली का अभिनय करने जा रही थी।

रात मे देर तक पूरी मण्डली नृत्य-अभिनय के अभ्यास मे लगी रहती थी। प्रायः राजा भी उपस्थित रहता। महामात्य कौंडिन्य सभी को उत्साहित करता। कभी वह कहता कि कई स्थानों में हमारे इस महोत्सव का अनुकरण किया जा रहा है। कभी कहता कि काश्मीर में हमारे कौमुदी-महोत्सव-जैसा ही महोत्सव आयोजित करने के लिए अभिनय-मण्डली की स्थापना हो चुकी है। कभी वह कहता कि हमारा यह महोत्सव मगध के परम्परागत सभी महोत्सवों को पीछे छोड़ जायेगा।

अवश्य ही मगध में कला और संस्कृति के वार्षिक महोत्सवों की एक गौरवशाली परंपरा रही आई थी। उन महोत्सवों में सभी प्रदेशों के गुणिजन सम्मिलित होते और अपने कलारूपों का प्रदर्शन करते थे। उनमें प्रान्त-प्रान्त के नर्तक, रूपांगनाएँ, शिल्पी, भिषगाचार्य, ज्योतिषी, रत्नपारखी, बुनकर, रंगसाज, चित्रकार, संगीतज्ञ, वादक, शास्त्रज्ञ, शस्त्रज्ञ सभी आते थे। उनकी उत्कृष्ट कलाओं को देख-सुनकर देश के शत-सहस्र युवक अनुप्राणित होकर उनका अनुसरण करते थे। फिर उन महोत्सवों में कई अन्वेषक अपने अन्वेषणों को समाज और जनता के कल्याणार्थ प्रदर्शित भी करते थे। कृषि-पंडित

बतलाते थे कि उन्होंने कृषि की उपज को कैसे बढ़ाया और सिंचाई के लिए क्या-क्या करना चाहिए। इस प्रकार वे महोत्सव सारे राज्य के लिए सही अर्थों में महोत्सव बन जाते थे और उनमें कई तो एक-एक महीने से भी अधिक समय तक चलते रहते थे। प्रजा भी उन महोत्सवों में प्रसन्न मन से भाग लेती थी; क्योंकि देश में धन-धान्य की कोई कमी नहीं थी। मौर्यों के शासनकाल में सभी वस्तुओं की प्रचुरता थी। कार्षापण का बत्तीसवाँ भाग अर्धमापक—आधा पैसा कहलाता था और एक अर्धमापक में सोलह सेर अनाज मिलता था। कार्षापण का होता था बारह मन, जिसे कोई अकेला तो उठाकर ले भी नहीं जा सकता। और यही कारण था कि उस जमाने में कला और कारीगरी का इतना विकास हुआ और महान् कला-उत्सवों का सफल आयोजन किया जा सका।

परन्तु बृहद्रथ के जमाने तक आते-आते हालत बहुत बदल चुकी थी। अनाज के भाव आसमान को छूने लगे थे। मौर्य राजाओं ने विशाल जलाशय निर्मित किये थे। इस जमाने में महाव्रीहि (बड़ी बावलियाँ) ढूँढ़े नहीं मिलती थीं। समाज महोत्सव का स्थान टुटपुँजिए कौमुदी-महोत्सव ने ले लिया था। महान् कलाकारों, अन्वेषकों, कारीगरों और सांस्कृतिक नेताओं के स्थान पर क्षुद्र नट, नर्तक और नर्तकियों की टोलियाँ रह गई थीं। फिर भी मगधपति और उसके महामात्य का दावा था कि इस प्रकार के कौमुदी-महोत्सव से देश और जनता में धर्म और संस्कृति का प्रसार होने के साथ-साथ लोगों में पारस्परिक समझ और प्रेम-भावना का विकास होता है। परन्तु संस्कृतियों के मूल उद्गम—धन-धान्य की प्रचुरता की ओर से सभी उदासीन थे।

इस प्रकार कौमुदी-महोत्सव की बड़े जोर-शोर से तैयारियाँ हो रही थीं। नट-अभिनेता रात-दिन अभ्यास कर रहे थे। राजा ने अपना अधिकाधिक समय रंगभवन और रंगमंच पर व्यतीत करना आरम्भ कर दिया था। माद्री के रूप-आकर्षण में वह खिंचा जा रहा था।

और कौंडिन्य भी अपना जाल बिछाता जाता था। अब उसने यह कहना आरम्भ कर दिया था कि कई यवन राजा भी इस कौमुदी-महोत्सव को देखने के लिए लालायित हो उठे हैं; राजा मिनाण्डर के कई अधिकारी उस समय यहाँ आने के लिए उत्कंठित हैं।

राजा बृहद्रथ यह सुनता तो मारे खुशी के फूला न समाता। वह गाल बजाकर कहता कि हमारा यह महोत्सव धर्म की दिग्विजय करके रहेगा। अब तो हम यवनों को भी प्रेम और पारस्परिक समझ से जीत लेंगे।

इसी लिए महोत्सव की निर्धारित तिथि बढ़ती जा रही थी। एक पूर्णिमा के बदले दूसरी, तीसरी और चौथी पूर्णिमा आई और चली भी गई और उत्सव आरम्भ नहीं हुआ, उसकी तैयारियाँ ही होती रहीं।

पुष्यमित्र यह सब देखता और मन-ही-मन जलता। उसे स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि मगधपति अपने विनाश की ओर तेजी से बढ़ा जा रहा है। परन्तु उसे रोका नहीं जा सकता था, समझाया भी नहीं जा सकता था। जिस प्रकार सियार की मौत उसे बस्ती की ओर ढकेलती है उसी प्रकार यह उत्सव उस मूर्ख राजा को उसकी मृत्यु की ओर ढकेल रहा था।

पुष्यमित्र की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे! अग्निमित्र विदिशा पहुँच गया था। उसके सन्देश की प्रतीक्षा की जा रही थी। पुष्यमित्र आँखों में तेल डाले उसी की राह देख रहा था। उसके सन्देश से पता चल जायेगा कि यज्ञसेन के अतिरिक्त शातकर्णी और खारवेल की क्या गति-विधि है और तभी जैसा उपयुक्त होगा, कदम उठाया जा सकेगा।

इसलिए अभी तो पुष्यमित्र ने अपनी सारी शक्ति अपने पौत्र सुमित्र को इस कौमुदी-महोत्सव से विमुख करने में लगा दी थी। लेकिन उसने जितना ही प्रयत्न किया सुमित्र का उत्सव के प्रति लगाव और आकर्षण भी उतना ही बढ़ता गया।

बात वास्तव में यह थी कि यवनसुन्दरी ने अपने रूप-जाल में राजा बृहद्रथ को ही नहीं, कौमुदी-महोत्सव के सभी नट-अभिनेताओं को भी बाँध लिया था; और सुमित्र तो उस पर मन-प्राण से निछावर ही हो गया था।

पुष्यमित्र ने एक बार तो यहाँ तक सोच डाला कि माद्री को गायब ही क्यों न कर दिया जाये? न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी! परन्तु जब उसके दूरव्यापी परिणामों पर उसने दृष्टि दौड़ाई तो इस विचार को मन से तत्काल निकाल फेंका। एक तो माद्री यूनानी यवनों की गति-विधि जानने और उनके संवाद पाने का बहुत अच्छा माध्यम थी। उसके बहाने, धर्म की ओट लेकर कोई-न-

कोई यूनानी यवन आता ही रहता था। यदि माद्री न रही तो यूनानियों का आना भी रुक जायेगा और उनकी गति-विधि की जानकारी मिलनी बन्द हो जायेगी। दूसरे, उसके गायब किये जाते ही राजा बृहद्रथ उत्तेजित हो जाता और तब न जाने क्या कर बैठता। तीसरे, कौंडिन्य की शतरंज का मुख्य मुहरा भी तो माद्री ही थी। उसके हटाये जाते ही वह धूर्त विक्षुब्ध होकर यूनानियों को आक्रमण के लिए बुला भी सकता था। इसलिए अभी तो पुष्यमित्र ने चुपचाप प्रतीक्षा करना ही उचित समझा। और वह सुमित्र को उत्सव से विमुख करने के लिए समझाता-बुझाता रहा।

अग्निमित्र को सन्देश भेजकर बेटे की स्थिति की सूचना देना व्यर्थ ही था। समझाने-बुझाने का भी कोई विशेष परिणाम नहीं हो रहा था। पुष्य-मित्र के सामने तो सुमित्र आँखें नीची किये 'हाँ-हाँ' करता रहता, परन्तु आँखों की ओट होते ही राजप्रासाद के रंगभवन में पहुँच जाता और घर लौटने का नाम नहीं लेता था।

ऐसे में एक दिन वसुमित्र ने पुष्यमित्र को बड़ा ही भयंकर संवाद दिया। उसने बताया कि महामात्य कौंडिन्य ने अपने षड्यन्त्र की सफलता के लिए माद्री के प्रति सुमित्र की मोहान्धता का उपयोग करने का निश्चय किया है। कौंडिन्य की मौलिक योजना तो थी कि माद्री मगधपति की हत्या करे। अब उसने यह योजना बनाई कि माद्री नहीं, सुमित्र राजा बृहद्रथ की हत्या करे और तब सुमित्र को अपने कुकृत्य के पुरस्कारस्वरूप माद्री के साथ भागने दिया जाये।

पुष्यमित्र ने यह सुना तो उसके पाँवों-तले की जमीन खिसक गई। उसकी वेदना की कोई सीमा न रही। उसने किसी तरह मन पर संयम किया और सुमित्र को मिलने के लिए बुलाया।

सुमित्र रुकता-ठिठकता अपने दादा के सामने आ खड़ा हुआ। वह सुन्दर, सुशोभन युवक कुछ स्त्रैण-वृत्तिवाला था। एक क्षण तो पुष्यमित्र की समझ में नहीं आया कि बात कैसे शुरू करे। उस युवक का पिता यहाँ नहीं था, माता भी नहीं थी और उसे यह बात समझानी थी कि तेरे इस कृत्य से अपने परिवार के नाम पर सदा-सदा के लिए कलंक की कालिमा पुत जायेगी;

यदि मगधपति का तेरे द्वारा इस प्रकार वध किया गया तो मगध-साम्राज्य को बचाने के हमारे सारे प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे और स्वयं हमारी भी शक्ति का ह्रास हो जायेगा।

पुष्यमित्र ने सुमित्र को प्रेमपूर्वक अपने पास बिठाया, स्नेह से उसके माथे पर हाथ फेरा और फिर उसकी आँखों में आँखें गड़ाकर अत्यन्त मधुर, वात्सल्यपूर्ण और धीमे स्वर में कहा—क्यों सुमित्र, धार्मिक महोत्सव में तेरी बड़ी ही रुचि है?

'जी, दादाजी, मन चाहता है कि रात-दिन नाटक ही खेलता रहूँ।'

पुष्यमित्र को आघात-सा लगा। क्या हाल हो गया है मगध के महान् साम्राज्य का कि जिसको देखो वही नाटक खेलना चाहता है! मगधपति बृह-द्रथ से लेकर बलाधिकृत-पुत्र सुमित्र तक सभी को एक ही धुन है—नाटक खेलने की!

उसने अपने स्वर को और भी मधुर और प्रेमपूर्ण बनाकर कहा—सुमित्र, तू जानता तो है न कि हम लोग कौन हैं?

'जानता क्यों नहीं दादाजी, हम हैं मगध के बलाधिकृत।'

'वह तो हैं परन्तु हम पर उत्तरदायित्व क्या है, इसे भी जानता है?'

सुमित्र ने सहसा कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर मौन धारण किये रहा। तब धीरे से बोला—दादाजी, कुल का एक पुत्र आपको सौंप दिया है—वसुमित्र। और मुझे तो यही कार्य सुहाता है, मैं इसी को करूँगा।

'और यदि मैं न करने को कहूँ, तो?'

'तो भी करूँगा, दादाजी?'

'मेरी निषेधाज्ञा का उल्लंघन करके भी?'

'धर्म के हेतु कोई पिता नहीं, कोई पितामह नहीं, कोई भ्राता नहीं, कोई पुत्र-कलत्र नहीं। मैं धर्म के इस कार्य से विमुख नहीं हो सकता....'

पुष्यमित्र उसके दुराग्रह और उसकी मोहान्धता को देखकर स्तब्ध रह गया। उसने पुनः पूछा—मेरा निषेध हो तब भी करेगा?

'दादाजी, मैं निवेदन कर चुका हूँ कि यह उत्सव धार्मिक है—धर्म के हेतु किया जा रहा है।'

'यह तो सच है सुमित्र ! परन्तु क्या तू नहीं जानता कि इस समय मगध चारों ओर अनेक शत्रुओं से घिरा हुआ है; और सभी शत्रु बलवान हैं और किसी भी क्षण पाटलिपुत्र को रौंद सकते हैं। और पाटलिपुत्र की रक्षा का उत्तरदायित्व हम पर है ? क्या तू यह बात नहीं जानता ?'

'मैं सब-कुछ जानता हूँ, दादाजी ! सुमित्र ने कहा, 'परन्तु वसु की आस्था शस्त्र में और मेरी आस्था पारस्परिक समझ में है। वर्तमान मगधपति ही महाराज अशोक के बाद दूसरे ऐसे भारत-सम्राट् हैं जो समस्त देश को प्रेम और पारस्परिक समझ से वश में कर सकते हैं और करेंगे। मैं तो कहता हूँ कि वश में ही नहीं करेंगे, जीत भी लेंगे।'

पुष्यमित्र को फिर आघात लगा। मगधपति की कृत्रिम बातें और द्विधा वृत्ति सर्वव्यापिनी हो गई थी। अब किसको और कैसे समझाया जाये कि तुम्हारी ये बातें तुम्हारा ही विनाश कर देंगी !

उसने सुमित्र से कुछ न कहा। कहना व्यर्थ ही होता। वह उसके चेहरे की ओर टक लगाये देखता रहा। कितना सुन्दर, सुशोभन और आकर्षक चेहरा था; परन्तु उसकी बातें कितनी निर्बलतापूर्ण और निरर्थक थीं ! जिस देश में ऐसे क्लीब, कापुरुष और नाटकीय तरुण पैदा हों उसकी रक्षा कौन कर सकता है ?

वह बड़ी देर तक सिर झुकाये बैठा सोचता रहा कि क्या मुझे अपने ही हाथों अपने पौत्र का वध करना होगा ? क्या स्थिति इतनी विषम हो गई है ?

उसकी वेदना की कोई सीमा न थी।

अन्त में उसने बहुत ही धीमे स्वर में कहा—सुमित्र, तब तो तुमसे कुछ भी कहना व्यर्थ ही है। भावि....

और बात अधूरी ही छोड़ उसने हाथ से संकेत किया; सुमित्र उठकर चल दिया।

१५ : अग्निमित्र का सन्देश

पुष्यमित्र ने अपने पौत्र सुमित्र को गले तक नारी की रूप-मोहिनी में डूबे देखा। उसका उसमें से निकलना असम्भव ही था। यह देख पुष्यमित्र की आँखों की

नींद उड़ गई। उसने अपने-आपको एक अत्यन्त ही विचित्र और भयंकर स्थिति में फँसा पाया। यह स्थिति पाटलिपुत्र के लिए भी उतनी ही भयंकर थी। वह स्थिति के विचार-मात्र से काँप उठता। उसे लग रहा था कि अब तो वह स्वय पूरी शक्ति लगाकर भी पाटलिपुत्र को बचा न सकेगा! यह भय उसके मन में समा गया कि महामुनि पतंजलि ने जिस भविष्य की ओर संकेत किया था वह घटित होकर रहेगा। नगर मे लोहू की नदियाँ बहने लगेंगी। नगरजन माल-असबाब लेकर भाग चलेंगे। स्त्रियाँ और बालक विधर्मियों के हाथो मारे जायेंगे। जिस समय जो करना उचित है वह यदि किया नहीं जाता तो अन्त में यही परिणाम होता है—यह सोच-सोचकर उसकी मनोवेदना शतगुनी बढ़ जाती थी। महामुनी के निम्न शब्द सदैव उसके कान में गूँजते रहते थे :

यवना दुष्ट विक्रान्ता प्राप्स्यन्ति कुसुमाह्वयम्।
आकुला विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः॥

अब उसकी आँखें कौमुदी-महोत्सव पर लगी हुई थीं। उधर यवनों के आक्रमण का भय भी उसे व्यथित कर रहा था। पाटलिपुत्र पर चढ़ दौड़ने के अनुकूल अवसर की वे ताक में ही थे। अग्निमित्र का सन्देश अभी तक नहीं आया था। अपनी ओर से पुष्यमित्र ने एक सन्देशवाहक उसके पास भेज दिया था। सुमित्र के आचरण के सम्बन्ध मे अग्निमित्र को साकेतिक रूप में थोड़ी जानकारी भी उसके साथ भेजी थी। लेकिन अग्निमित्र तो वहाँ से अब लौट नहीं सकता था। स्वयं पुष्यमित्र को ही यहाँ की स्थिति से निपटना होगा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह सुमित्र का क्या करे—उसे बन्दीगृह में डाल दे अथवा अदृश्य कर दे? अग्निमित्र का सन्देश आ जाता तो उसे अपना कर्त्तव्य स्थिर करने में सहायता मिलती।

इधर यवनसुन्दरी माद्री का आकर्षण-जाल फैलता ही जा रहा था। वह अपने सभी रूप-लुब्धकों को अँगुली पर नचा रही थी। सुमित्र की मोहिता-वस्था चरमसीमा को पहुँच चुकी थी। महामात्य कौडिन्य ने उसे पूरी तरह अपनी मुट्ठी में कर लिया था। ऐसी स्थिति में पुष्यमित्र को सबसे बड़ा डर तो यह था कि मैं सोच-विचार करता ही रह जाऊँ और कहीं यवन कुसुमपुर

को घेर न लें। यह उल्लेख तो किया ही जा चुका है कि कौमुदी-महोत्सव को देखने और उसमें हिस्सा लेने के लिए अनेक यवन राजा और यवन अधिकारी उत्कंठित थे। राजा बृहद्रथ और महामात्य कौंडिन्य चाहते भी थे कि वे आयें। इसलिए बड़ी संख्या में यवनों का आगमन आरम्भ हो गया था। कोई महोत्सव के निमित्त तो कोई अर्थ प्राप्ति के हेतु, कोई विद्या-प्राप्ति के निमित्त तो कोई धर्म प्राप्ति के ही लिए चला आ रहा था। यवनों का लक्ष्य भी पाटलिपुत्र ही था। वे जानते थे कि एक बार भारतवर्ष की यह राजधानी हाथ में आ गई तो देश हाथ में आते देर न लगेगी। इसलिए उनके निकट पाटलिपुत्र प्राप्त करने का अर्थ था भारतवर्ष को जीतना और सिकन्दर महान् के स्वप्न को चरितार्थ करना, साथ ही अतुल सम्पत्ति के स्वामी बन विश्वविजयिनी गज-सेना का संचालन करते हुए रोम और यूनान से पाटलिपुत्र तक एक चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना करना। अपने इस उद्देश्य की उपलब्धि के लिए यूनानियों ने बौद्ध धर्म की ओट लेकर भारतीयों की धार्मिक भावना को उभाड़ना भी आरम्भ कर दिया था। सागल प्रदेश के यूनानी राजा मिनाण्डर अथवा मिलिन्द ने तो स्वयं को बौद्ध भिक्षु ही घोषित कर दिया था और वह भगवान् तथागत की लीला-भूमि को अपने नेत्रों से देखकर कृतकृत्य होना चाहता था। उसके गणों और गुप्तचरों ने सारे भारतवर्ष में उसकी धर्म-कीर्ति प्रसारित कर उसके पक्ष में अच्छा-खासा जनमत तैयार कर दिया था। उसके कई पक्षपाती तो यहाँ तक कहने लगे थे कि मिलिन्द को ही मगध के सिंहासन पर बिठाना चाहिए। बृहद्रथ के न रहने पर यदि वह मगधपति बन ही जाये तो कोई अँगुली न उठा सके—ऐसा वातावरण निर्मित हो रहा था।

पुष्यमित्र के सामने यह बड़ी समस्या खड़ी हो गई थी। मगधपति का वध करना उतना कठिन काम न था; परन्तु बाद की स्थिति को सँभालना बहुत मुश्किल हो जाता। स्वामी-विहीन मगध पर एक साथ कई शत्रु टूट पड़ते; अपने-अपने आयुध सँभाले सब-के-सब तैयार ही खड़े थे।

यवनों के बाद सबसे प्रबल शत्रु था प्रतिष्ठानपुर का शातकर्णी। उसने जब से राष्ट्रिकराज की पुत्री नायनिका से विवाह किया, उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी। उज्जयिनी पर तो वह अपना स्वाभाविक अधिकार समझने लगा

था। वह जाति का ब्राह्मण और परशुराम का भक्त, उन्हीं के पथ का अनुयायी था। उसकी धमनियों में रक्त भी परशुराम का ही प्रवाहित हो रहा था। उसकी गजसेना भी कलिंग के ही जितकी विशाल और प्रबल थी।

अग्निमित्र को उसी पर दृष्टि रखने और वह यज्ञसेन से मिलकर कोई षड्यन्त्र न करने पाये इसके लिए विदिशा भेजा था। काम यह बहुत कठिन था। यज्ञसेन-जैसे कुटिल गोप्ता को शातकर्णी के पक्ष से तोड़कर मगध के अनुकूल बनाना बड़ा ही कठिन और बड़ी चतुराई का काम था। ज़रा-सी भी भूल एक महायुद्ध का कारण बन जाती। युद्ध का संकट पाटलिपुत्र पर था, परन्तु उसकी शतरंज विदिशा में बिछी हुई थी।

और इसी लिए पुष्यमित्र उद्विग्न और उद्ग्रीव होकर अग्निमित्र के सन्देश की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके सन्देश को पाये बिना वह यहाँ भी कोई कदम नहीं उठा सकता था; जब कि आवश्यकता तत्काल कुछ कर गुजरने की थी। कौंडिन्य की सरगर्मियाँ भी बहुत बढ़ गई थीं। वह अपने मुहरे जमाये जा रहा था। स्वयं मगधपति बनने का अभिलाषी वह धूर्त विदर्भ की सहायता से और उससे काम न बने तो यवनों की सहायता से अपना अभीष्ट लाभ करना चाहता था। सहायक कोई भी हो, उसे तो मगध के सिंहासन से मतलब था। और पुष्यमित्र के लिए प्रतीक्षा का एक-एक क्षण हजार-हजार युगों की तरह भारी हो रहा था....

तभी एक दिन अग्निमित्र का बहुप्रतीक्षित सन्देशवाहक आ पहुँचा। महाबलाधिकृत पुष्यमित्र उसे लेकर अविलम्ब महामुनि पतंजलि के पास दौड़ा। उसने महामुनि को कुछ चिन्ताग्रस्त और उद्विग्न पाया। संभवतः उन्हें भी इसी प्रकार का संवाद मिल चुका था। पुष्यमित्र ने महामुनि के निकट एक अकिंचन विप्र-जैसे व्यक्ति को खड़ा पाया। उसकी वेश-भूषा बड़ी ही विचित्र थी। महामुनि इस समय उसी से वार्तालाप में संग्लन थे। जब तक वह बाहर न निकल आया और स्नानादि के लिए उद्यान की ओर न चला गया, पुष्यमित्र प्रतीक्षा करता रहा।

अन्दर पहुँचकर उसने महामुनि को चिन्तामग्न अवस्था में पाया। वह मुनि को प्रणाम कर एक ओर चुपचाप बैठ गया। बड़ी देर तक कोई कुछ न

बोला। तब महामुनि ने सहसा शान्ति भंग करते हुए कहा—महाबलाधिकृत पुष्यमित्र, यह तो अचिन्त्य ही हुआ....

'क्यों, क्या हुआ है देव?'

'मेरा विचार यहाँ पाटलिपुत्र में जिस काम को करने का था, वह काम अब प्रतिष्ठानपुर का शातकर्णी अपने यहाँ करने जा रहा है। अश्वमेध-यज्ञ की आवश्यकता, औचित्य और महत्ता पाटलिपुत्र में थी, यही भारत का केन्द्रीय नगर है। परन्तु हम सोचते ही रहे और शातकर्णी ने निश्चय भी कर लिया। उसने ठेठ कलिंग से लेकर प्रतिष्ठानपुर तक नौ सौ कोस विस्तारवाला प्रदेश अपने केन्द्रीभूत शासन के अन्तर्गत कर लिया है। राष्ट्रीक राजपुत्री के विवाहोपरान्त तो उसकी शक्ति में और भी वृद्धि हुई है। अब वह उज्जयिनी में, महाकाल के मन्दिर में, अश्वमेध-यज्ञ करना चाहता है। वह ब्राह्मण यही सन्देश लेकर आया है। हम पिछड़ गये, इसकी तो कोई चिन्ता नहीं, परन्तु वह इस निमित्त से युद्ध चाहता है और तुम युद्ध करने की स्थिति में नहीं हो; शान्त भी नहीं रह सकते। तो विचारणीय यह है कि ऐसी स्थिति में करणीय क्या हो! अग्निमित्र का कोई सन्देश मिला? उसने भेजा तो अवश्य होगा, परन्तु प्रतीत होता है कि कौंडिन्य के गुप्तचरों के हाथ पड़ गया, इसी लिए हमें नहीं मिला।'

'हाथ तो अवश्य पड़ जाता, परन्तु अग्निमित्र ने सावधानी से काम लिया। उसने आटविक वेशधारी इन दो सन्देशवाहकों को भेजा है। दोनो आज ही और उपयुक्त अवसर पर यहाँ सकुशल पहुँच गये। उसका सन्देश भी लगभग यही है, जो आपको अपने सन्देशवाहक से प्राप्त हुआ है। साथ ही उसने यह भी कहलवाया है कि विदर्भराज यज्ञसेन शातकर्णी की ओर पूरी तरह झुक गया है....'

'तब तो महाबलाधिकृत, यह शातवाहन-कुलोत्पन्न शातकर्णी आपके लिए एक नयी समस्या बन गया। कहीं मगध सोया ही नहीं रह जाये, और शत्रु उसे रौंद दें!'

पुष्यमित्र ने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया। वह थोड़ी देर सोचता रहा। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अब मगध को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए

सैनिक तैयारियाँ अविलम्ब आरम्भ कर देनी चाहिए।

तब उसने बहुत ही धीरे-धीरे और मन्द स्वरों मे कहना आरम्भ किया—गुरुदेव, अब तो हमें अविलम्ब सैनिक तैयारियों में लग जाना चाहिए। भगवान् कौटिल्य ने इसी मगध में 'स्त्रीगणैर्धन्विभिः' की प्रथा प्रचलित की थी। मगध में ही सबसे पहले 'याष्टिकी'—केवल यष्टि और भाले से युद्ध करनेवाली और 'शाक्तिकी'—केवल शक्ति से युद्ध करनेवाली नारी-सेनाएँ संगठित की गई थीं। हमें भी आज इसी प्रकार की स्त्री-सेनाएँ संगठित करनी चाहिए। ऐसा करके ही हम देश को आत्मरक्षा के लिए प्रस्तुत कर सकते हैं। इस योजना को कार्यान्वित किया गया तो सारा देश यों चुटकी बजाते रक्षा-सेना मे परिवर्तित किया जा सकेगा। शत्रु के आक्रमण की बात सुनते ही सिर पर पाँव रखकर पलायन करनेवाली डरपोक प्रजा कभी देश की रक्षा नहीं कर सकती। वह तो आप डरती और सर्वत्र डर फैलाती है। आक्रमणकारी भी अपनी विजय के लिए बहुत-कुछ ऐसी ही डरपोक प्रजा पर निर्भर करते हैं। इसलिए पहला कार्य तो हमें 'स्त्रीगणैर्धन्विभिः' की स्थापना का करना चाहिए। दूसरा कार्य यह करना चाहिए कि आज की परिस्थिति में पत्तिपाल (पाँच सैनिकों का नायक) और गौल्मिक (गुल्म का नायक) से लेकर शतानिक (सौ सैनिको का नायक) और अनुशतानिक तक सभी सैनिक अधिकारियों को चन्द्रगुप्त-सभा में बुलाना और सभा के द्वारा ही उन्हें आदेश दिया जाना चाहिए। और सबसे पहला आदेश यह हो कि सभी सैनिकों और सेना-अधिकारियों को देश की रक्षा के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।

कुछ देर रुककर पुष्यमित्र ने पुनः कहा—आज सब-के-सब डरे हुए हैं। सभी शंकित हैं। सभी अविश्वास के वातावरण में जी रहे हैं। इस प्रतिकूल वातावरण को अविलम्ब बदलना होगा। यह काम चन्द्रगुप्त-सभा के द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। इसलिए महाराज मगधपति की ओर से चन्द्रगुप्त-सभा के अधिवेशन की घोषणा करवाई जानी चाहिए। यह घोषणा आज ही की जायेगी। हो सकता है कि महामात्य कौंडिन्य इसमें बाधा डाले। लेकिन यदि बाधा डाली गई तो उसे भी देख लिया जायेगा।

फिर दोनो व्यक्ति बड़ी देर तक बैठे अग्निमित्र के सन्देश पर विचार-

विनिमय करते रहे। उसका सन्देश एकदम स्पष्ट था। उसने कहलवाया था कि विदर्भ को अब हाथ से निकला हुआ ही समझना चाहिए। उसे वश में करने का केवल एक उपाय है और वह है उस पर तत्काल आक्रमण। इसके बिना उसकी बुद्धि ठिकाने आने की नहीं। पहले आक्रमण करके उसको वश में करो और तभी उसके साथ उदारता का व्यवहार किया जाये; उसे स्वीकार भी कर लिया जाये। इस कारवाई में देर जितनी ही होगी शातकर्णी उसे उतना ही अपने अनुकूल करके मगध का विरोधी बना देगा। मगध के विरुद्ध तो वह उसे आज भी खड़ा कर सकता है लेकिन केवल कलिंग के भय के कारण ऐसा नहीं कर रहा है।

इस सारे सन्देश का अभिप्राय बिलकुल स्पष्ट था—मगध के पास सेना हो, सेनापति हो, तत्काल कार्यवाही करने की शक्ति हो और कौटिल्य की राजनीति को कार्यान्वित करने की बुद्धि हो तभी मगध की रक्षा की जा सकती है।

सन्देश पर चर्चा करते-करते भगवान् पतंजलि सोचने लगे कि निस्सन्देह शीघ्रता से कार्य करने की आवश्यकता है। लोग मूर्ख राजा से थक चुके थे। जो भी वार करेगा प्रजा उसी का अभिनन्दन करेगी। शातकर्णी अश्वमेध-यज्ञ के बहाने यही करने जा रहा था। परन्तु वह अराजकता ही उत्पन्न करेगा। शीघ्रता तो आवश्यक थी ही, सावधानी भी उतनी ही, बल्कि उससे भी अधिक।

तब उन्होंने कहा—पुष्यमित्र, इस समय तो पहली आवश्यकता दक्षिणापथ के इस आन्ध्रपति से सुलझने-समझने की है। यदि उसकी वर्जना नहीं की गई तो महाराज अशोक के कलिंग-युद्ध से भी भयंकर युद्ध छिड़ जायेगा। तुम्हारे पास कोई ऐसा विश्वासपात्र व्यक्ति है, जिसे महामंत्री के अधिकार प्रदान किये जा सकें? वसुमित्र है तो उपयुक्त, लेकिन अभी छोटा है। फिर उसे दूसरे भी कई उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपने हैं। अन्य कोई है तुम्हारे ध्यान में?

पुष्यमित्र के ओठों पर सुमित्र का नाम आते-आते रुक गया। तभी स्वयं पतंजलि ने कहा—क्यों, सुमित्र कैसा रहेगा? सुन्दर है, सुशोभन है। दिखता भी राजकुमार-जैसा है। वाणी भी उसकी मधुर है।

'परन्तु देव, उसकी तो बुद्धि ठिकाने नहीं। वह कौमुदी-महोत्सव में व्यस्त है। यवनसुन्दरी माद्री के मोह-जाल में फँसा हुआ है। कौडिन्य के पूरे प्रभाव

में है; और वह दुष्ट उसे कुल्हाड़ी का बेंट बनाना चाहता है। मुझे संवाद मिले हैं कि कौंडिन्य उसी के हाथों बृहद्रथ का वध करवाना चाहता है। मैंने उसे उत्सव और माद्री से विमुख करने का बहुतेरा प्रयत्न किया, परन्तु कोई सफलता नहीं-मिली। अब मेरी समझ में नहीं आ रहा कि उसका क्या करूँ, कैसे समझाऊँ ? बड़ी जटिल समस्या उठ खड़ी हुई है सुमित्र को लेकर तो !'

'ओ-हो-हो, महाबलाधिकृत ! तब तो हमारा उत्तरदायित्व बहुत ही बढ़ जाता है। यदि इस अन्तर-संघर्ष का तनिक-सा भी पता शत्रुओं को लग गया तो सब-के-सब अविलम्ब पाटलिपुत्र पर चढ़ दौड़ेंगे। इस ऐतिहासिक नगर का नामशेष हो जायेगा। एक साथ तीन सेनाएँ तीन दिशाओं से आ धमकेंगी। यह तो घर के दीपक से घर जलने-जैसी बात है। आपने उसे समझाया नहीं ?'

'बहुत समझाया देव ! विमुख करने का भी बहुत प्रयत्न किया। कभी सोचता हूँ कि उसे कारागार में डाल दूँ और कभी सोचता हूँ कि माद्री का वध करवा दूँ, परन्तु....'

'लेकिन ऐसा करके भी देश-विदेश की सेनाओं के आक्रमण को तो रोका नहीं जा सकता। उलटा उन्हें यह एक बहाना मिल जायेगा। फिर ऐसे कृत्यों से तो जन-सामान्य के तुम्हारे ही विरुद्ध हो जाने की आशंका है; तब कोई भी तुम्हारा विश्वास नहीं करेगा।'

'तो आप ही कोई उपाय सुझाइए देव ! मुझे तो कुछ भी नहीं सूझता। कितना सुन्दर, सुशोभन युवक है ! कितना प्रेम है उसके मन में ? और जा पड़ा है किसके मोहपाश मे ! कैसे समझाया जाये और क्या किया जाये ?'

'अब तो एक ही उपाय है महाबलाधिकृत पुष्यमित्र !' महामुनि पतंजलि ने गम्भीर स्वर में कहा, 'राष्ट्र के लिए प्रदेश की, प्रदेश के लिए ग्राम की, ग्राम के लिए परिवार की और परिवार के लिए व्यक्ति की बलि चढ़ानी होती है। तुम उसे निर्वासित कर नहीं सकते; यवन उसका दुरुपयोग करेंगे। तुम उसे कारागार में डाल नहीं सकते; विदर्भ इस घटना से अनुचित लाभ उठायेगा। तुम उसे अदृश्य कर नहीं सकते; स्वयं उसका पिता ही तुमसे विमुख हो जायेगा, सम्भवतः विद्रोह ही कर दे। और इन सब से कौंडिन्य ही लाभान्वित होगा। इसलिए तुम्हारे समक्ष केवल एक ही मार्ग है या तो मगध जीवित रहे, पाटलि-

पुत्र जी सके अथवा तुम्हारा यह पौत्र जीवित रहे। दोनों एक साथ जी नहीं सकते, और सोचने-विचारने के लिए समय जरा भी नहीं है।'

'प्रभु, क्या कह रहे हैं आप ?. दोनों एक साथ जी नहीं सकते ? और उसका वध करना होगा ? उतने सुन्दर, सुशोभन पुत्र की हत्या !' पुष्यमित्र का गला भर आया। गहन शोक से उसका मस्तक अवनत हो गया। फिर उसने वेदना-विह्वल स्वर में कहा, 'शत्रु भी जिसे देखकर प्यार करने को लालायित हो उठे इतना सुन्दर युवक है वह पौत्र। आपने उसे देखा है ?'

'हाँ, देखा है !' पतंजलि मुनि ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'रूप उसका देवताओं-जैसा है। स्वर उसका किन्नरों से भी मधुर है। उसकी रीति-भाँति देव-पुत्रों-जैसी गरिमामयी है। उसका मुख नारी के प्रेम-मधुर शब्दों से भी कोमल है। यह सब मैंने देखा है और इसी लिए मैं कहता हूँ कि कोई उसका वध नहीं कर सकता, किसी घातक का हाथ उस पर उठ नहीं सकता। केवल एक व्यक्ति है जो उसका वध कर सकता है।'

'प्रभु, कौन है वह निर्दयी ? कौन पापी उसका वध कर सकता है ?'

'स्वयं महाबलाधिकृत पुष्यमित्र ही वह व्यक्ति है। पितामह पुष्यमित्र भले ही रोये, महाबलाधिकृत पुष्यमित्र को राज्य और देश का हित पहले देखना होगा। महाबलाधिकृत उसका वध करेगा और पितामह उसके शोक मे क्रन्दन। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है, पुष्यमित्र !' पतंजलि का स्वर वज्र की भाँति कठोर हो उठा था, 'तुम्हीं, पुष्यमित्र तुम्हीं उसका वध कर सकते हो, यदि मगध को बचाने का तुम्हारा निश्चय दृढ़ हो, देश की रक्षा के लिए तुम कृत-निश्चय हो....'

'देव ! देव !! देव !!!' पुष्यमित्र का स्वर काँप उठा, 'उसे कारागार में डाल दिया जाये....'

'तो कल ही तुम्हें विदर्भ से या यवनों से युद्ध करना पड़ जायेगा। शात-कर्णी की गजसेना लेकर यज्ञसेन पाटलिपुत्र पर चढ़ दौड़ेगा !'

'तो क्यों न उसे अदृश्य कर दिया जाये ?'

'फिर तो पिता-पुत्र ही परस्पर संघर्षरत हो जायेंगे। पाटलिपुत्र भस्मीभूत हो जायेगा। मगध के पतन और सहस्रों नगरजनों के अकाल वध का अभि-

शाप तुम पर होगा। तुम राजा हो; हाँ, पुष्यमित्र, तुम्हें यह मान कर चलना होगा कि तुम राजा हो। और राजा का न कोई मित्र होता है, न कोई पुत्र; न कोई पौत्र होता है, न कोई बन्धु-बान्धव; न पिता होता है, न स्वजन! राजा के लिए केवल एक ही वस्तु है—प्रजारंजन। जैसे भी प्रजा का कल्याण हो वही राजा का करणीय कर्म होता है, वही राजा का उचित मार्ग होता है। जो राजा प्रजा के हित के लिए आवश्यकता पड़ने पर अपने पुत्र का वध नहीं कर सकता वह राजा तो नहीं हीं है, मनुष्य भी नहीं है। वह है प्रजा का हत्यारा, विश्वासघाती, कर्त्तव्यविमुख, महापातकी। वह राज-पद के योग्य नहीं। पुष्यमित्र, निश्चय करो, अविलम्ब निश्चय करो, तुम क्या चाहते हो? मगध को जीवित रखना चाहते हो या अपने पौत्र को? दोनों साथ-साथ जीवित नहीं रह सकते....'

'देव! देव!! देव!!!' पुष्यमित्र इससे अधिक कुछ न कह सका।

'तुझे मगध का उद्धार न करना हो, मगधपति का प्रजा की छाती पर इसी प्रकार विलास और मूर्खता का उल्लंग नृत्य करने देना हो, पाटलिपुत्र पर तीन दिशाओं से तीन सेनाओं को आक्रमण करने देना हो, भगवान् कौटिल्य की इस महान् नगरी का सर्वनाश ही करना हो, तू इतना ही दुर्बल हो गया हो तो मुझे बता दे। मैं अपना मृगचर्म लपेटकर यहाँ से चलता बनूँ। मेरा अश्वमेध-यज्ञ तेरे-जैसे क्लीव और कापुरुष के लिए नहीं है। तब मैं किसी ऐसे की खोज करूँ जो भारतवर्ष को बचा सके। मगध पर यवनों का आक्रमण निश्चित है। माद्री इसी लिए यहाँ आई है, इसी लिए उसने तेरे पौत्र को अपने रूप-जाल में फाँसा है। तू उसे समझा नहीं सकता, विमुख नहीं कर सकता, मार नहीं सकता तो समझ ले कि मगध को बचा भी नहीं सकता। निश्चय कर ले महाबलाधिकृत, कि तू क्या चाहता है? बात छोटी-सी है, परन्तु उसके गर्भ में भयंकर युद्ध के बीज छिपे हुए हैं। तुझे निर्णय करना होगा, और तत्काल करना होगा। समय बिलकुल नहीं है। क्षण-क्षण अनमोल है। इस समय तेरा असमंजस और अनिश्चय भयंकर विनाश का कारण होगा, तुझे कोटि-कोटि गोवध का पातक लगेगा। लक्ष-कोटि जनों के संहार का पाप तेरे सिर पर होगा। प्रजा वही जीवित रहती है जो अनिश्चयी राजा का वध कर

सके। अनिश्चय में पड़े हुए राजा की पूजा करनेवाली प्रजा, उसे सहनेवाली प्रजा आप पतित होती है और दूसरों को पतित करती है। तुझे जो निर्णय करना हो कर लेना। मैं शातकर्णी के ब्राह्मण को उसके बाद ही विदा करूँगा।'

१६ : दो भाई

पुष्यमित्र महामुनि पतंजति के पास से विदा हुआ तो उसका हृदय भारी और चित्त उदास था। उसे न केवल अपना, अपितु समस्त देश का भविष्य अन्धकारमय दिखाई दे रहा था। कौन क्या करेगा और किस घाट जाकर लगेगा, यह बताना लगभग असम्भव और अकल्पनीय ही था।

इस स्थिति में उसे आश्वस्त करनेवाली केवल एक ही बात थी और वह थी महामुनि पतंजलि का स्पष्ट कथन। उन्होंने कहा था कि एक तो ऐसा कोई कार्य नहीं होना चाहिए जिसके कारण किसी को पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने का अवसर मिले; और दूसरे बृहद्रथ के हाथ में मगध-साम्राज्य के शासन-सूत्रों को अधिक समय तक रहने नहीं देना चाहिए।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि पुष्यमित्र को स्थिति का सामना करने के लिए उठाये जानेवाले अपने प्रत्येक कदम में अनिवार्य रूप से जनसाधारण का सहयोग और समर्थन प्राप्त करना होगा। यदि ऐसा नहीं किया और किसी ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर दिया तो अधिकांश प्रजा अपनी जान-माल की रक्षा के लिए हारण (भीत) होकर भाग खड़ी होगी। फिर तो अव्यवस्था और अराजकता फैल जायेगी और उससे आक्रान्ता का ही लाभ होगा।

तो, निष्कर्ष यह निकला कि प्रजा को तैयार करना चाहिए। मगध पर मँडरा रहे सर्वनाश का निवारण करने और अन्तर-संघर्ष को रोकने का एक यही उपाय हो सकता था। इसमें जरा-सी भी चूक पड़ी तो सभी शत्रु पाटलिपुत्र पर चढ़ दौड़ेंगे—यवन भी, विदर्भ भी, शातकर्णी और खारवेल भी; यहाँ तक कि आटविक भी।

इसी प्रकार के विचारों में मग्न पुष्यमित्र अकेला शोण और गंगा के संगम पर स्थित विशाल उद्यान की ओर निकल आया। उसे तत्काल एक महत्त्वपूर्ण निश्चय करना था। इस उम्र में अपने एक निकट स्वजन—अपने

ही रक्त के रक्त का त्याग करने का महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित हुआ था। केवल त्यागने की ही बात होती तो सोचने-विचारने की कोई आवश्यकता नहीं थी, परन्तु यहाँ तो प्रश्न उसके बलिदान का था और वह भी स्वयं अपने हाथों !

विचारों में मग्न, मन्दगति से चलता हुआ वह उद्यान के प्रवेश-द्वार पर पहुँचा। अनजाने ही द्वार पार करके वह उद्यान में प्रविष्ट हुआ।

चाँदनी अपने पूर्ण यौवन पर थी। वृक्षों की पाँतें धवल-पांडुर प्रकाश में स्नात, रुपहली आभा को धारण किये खड़ी थीं। वृक्ष-वितान से छनकर आती हुई चन्द्र-किरणों ने उद्यान-पथ पर छाया-प्रकाश की जाली-सी बुन दी थी। एक बार देखते ही मनुष्य सौन्दर्य की अपरूप स्वप्न-सृष्टि में पहुँच जाये ऐसा मनोरम वहाँ का दृश्य था। कहीं लहरों के साथ चन्द्रकिरणें अठखेलियाँ कर रही थीं; कहीं वृक्षों की पत्तियों के साथ लुका-छिपी खेल रही थीं; कहीं झर-झर करते निर्झर बहे जा रहे थे; कहीं प्रफुल्ल पुष्पभार से लदे पादप किसी मुग्धा नवयौवना के शृंगार को मात किये दे रहे थे। वहाँ प्रकृति इस भाँति शृंगार किये खड़ी थी कि कोई जड़-पत्थर होता तो वह भी काव्य-रस से छलक-कर अपना आपा भूल जाता; कोई कठोर राजनीतिज्ञ होता तो वह भी एक क्षण सोचने के लिए विवश हो जाता कि धरती के इस सौन्दर्य-शृंगार से विरत राजनीति, कूटनीति, चन्द्रगुप्त-सभा, कार्षापण, धर्मसभा और व्यावहारिक निपुणता से क्यों माथा मारा जाये !

परन्तु पुष्यमित्र को अपनी गहन चिन्ताओं के मारे इस सौन्दर्य की ओर आँख उठाकर देखने का भी अवकाश नहीं था। अपनी चिन्ताओं में व्यस्त, नन्दनकानन-जैसे इस प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर भी नहीं देखता हुआ-सा वह उद्यान में निरुद्देश्य आगे बढ़ा जा रहा था। सहसा उसके कान में दो व्यक्तियों के मन्द स्वर में वार्तालाप करने की भनक पड़ी और वह वहीं ठिठक गया। जिस ओर से भनक आई थी उसी ओर कान लगाकर वह सुनने लगा।

लेकिन चारों ओर सन्नाटा था। कान लगाकर सुनने पर भी कोई स्वर सुनाई नहीं दिया। नीरव रात्रि के मौन पद-संचरण-जैसा पवन हौले-हौले प्रवाहित हो रहा था।

पुष्यमित्र ने सोचा, कहीं भ्रम तो नहीं हो गया। प्रायः रात्रि के सन्नाटे में

वन-उपवन में किसी के फुसफुसाकर बातें करने का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। सम्भवतः ऐसा ही यह भ्रम हो। वह अपने स्थान से आगे बढ़ा। उसे पुनः बातचीत की भनक सुनाई दी। वह पुनः ठिठक गया। इस बार एक वृक्ष की ओट में वह खड़ा हो गया।

अब बातचीत का स्वर अधिक स्पष्ट और अधिक निकट से आ रहा था। लग रहा था जैसे कोई दो व्यक्ति कहीं समीप ही बैठे बातें कर रहे हों।

वह बड़ी सतर्कता से आगे बढ़ा। जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया स्वर अधिकाधिक स्पष्ट होते गये। उसे विश्वास हो गया कि वह सही दिशा में ही बढ़ रहा है। इस बात की नितान्त आवश्यकता थी कि कोई उसे देख न ले। वह ऐसी परिस्थितियों का अभ्यस्त भी था। इसलिए बिल्ली की भाँति निःशब्द पदों से चलता हुआ वह आगे बढ़ने लगा।

थोड़ी दूर जाने पर उसे एक मन्दिर का खण्डहर-सा दिखाई दिया। वहाँ वृक्षों का एक निकुंज था और घना अँधेरा-सा छाया हुआ था। वह सावधानी से उसी ओर आगे बढ़ा।

एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की ओट में लुकता-छिपता वह आगे बढ़ रहा था। सहसा मन्दिर के भग्नावशेष के बीचोंबीच एक चौक में उसे दो युवक बैठे दिखाई दिये।

'कौन हैं ये ?' उसे बड़ा कुतूहल हुआ। चेहरे उनके वृक्ष की छाया पड़ने के कारण साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ रहे थे।

पुष्यमित्र और भी सतर्क हो गया। उसने अपने वस्त्रों को भी सहेज लिया। देखे जाने से बचने के लिए वह जमीन पर बैठ गया और उसने चारों हाथों-पाँवों के सहारे आगे बढ़ने का निश्चय किया।

वह उसी भाँति रेंगता हुआ उन युवकों के पीछे की ओर पहुँच जाना चाहता था, जिसमें देखा न जा सके और उनकी बातों को सुन सके।

रात के सन्नाटे में, निर्जन उद्यान में बैठी दो युवा आकृतियाँ या तो प्रेम-वार्त्ता कर सकती हैं अथवा कूटनीति की चर्चा; या फिर किसी भयंकर षड्यन्त्र की योजना ! जो भी हो, इस रहस्य का उद्‌घाटन अवश्य करना चाहिए।

वह उसी भाँति चारों हाथ-पाँवों पर रेंगता हुआ उनके बैठने के भग्न

चकित रह गया ! यह एक ऐसी अनहोनी बात थी कि यदि स्वयं आँखों से न देखता तो कभी उसे विश्वास न होता ! इतना तो वह समझ ही गया कि निश्चय ही कोई रहस्यपूर्ण बात होनी चाहिए।

लेकिन क्या है वह रहस्य ? क्यों आज दोनों ध्रुव एक साथ मिल बैठे हैं ? कोई भयानक बात तो नहीं ?

उसकी समस्त इन्द्रियाँ स्थिर होकर कानों में आ बैठीं। वह ध्यानावस्थित होकर सुनने लगा—कहीं एक भी शब्द सुनने से रह न जाये।

१७ : प्रेमसागर का प्रवासी

पुष्यमित्र कान लगाकर सुनने लगा। शीघ्र ही उसे वसुमित्र का स्वर सुनाई दिया। उसकी वाणी विपण्ण और शोकाकुल थी। उसने कहा—बड़े भैया, आप तनिक मेरी बात पर विचार कीजिए। हमारे पास भगवान् कौटिल्य की परम्परा है, सम्राट् अशोक और महामात्य राधागुप्त की परम्परा है, मगध के प्रथम ब्राह्मण सेनापति हिमवन्त की परम्परा है। यदि हम मगध को बचा न सके तो हमारे लिए जल-समाधि के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं रह जाता। बड़े भैया, सोचने की बात है—हम मगध के हैं, यह नगर हमारा है, हम इस नगर के हैं। विपत्ति के समय हम इसका परित्याग नहीं कर सकते। रणभूमि में अपना शीश देकर और इस धरती पर सदा के लिए सोकर ही हम इसके ऋण से उऋण हो सकते हैं। शेष सभी मार्ग सर्वनाश की ओर ले जानेवाले हैं, आपका मार्ग भी सर्वनाश की ही ओर ले जानेवाला है। अभी तो समय है, आप सत्यानाशी, आत्मघाती मार्ग से विमुख हो जाइए, लौट आइए .

थोड़ी देर तक सुमित्र कुछ न बोला। वह मौन रहा। लेकिन जब वह बोलने लगा तो उसके शब्द ऐसे लग रहे थे मानो महासागर की गहराइयों में से गूँज उठ रही हो। उसके स्वर में एक अनोखा ही सौन्दर्य और आकर्षकना थी। पुष्यमित्र उसे मूर्ख और वासना का दास समझता था; परन्तु उसकी इस वाणी ने तो उसके एक नये ही रूप को उद्घाटित कर दिया।

सुमित्र ने अत्यन्त धीमे स्वर में वसुमित्र को उत्तर दिया—तू ने जो कहा वह सब मैं समझता हूँ वसु ! अब मैं जो कहता हूँ उसे सुन और समझने का

प्रयत्न कर। यह सृष्टि बड़ी ही सुन्दर है। इस सृष्टि का अपार वैभव हमें आकर्षित करता है। इस वैभव के लिए ही मगध की तू रक्षा करना चाहता है। यही तेरी महत्त्वाकांक्षा है। परन्तु जो मैंने देखा है उसका शतांश भी यदि तू देखे, देख सके तो मगध का कभी नाम न ले। तब पाटलिपुत्र को भी तू भूल जायेगा। उसके आगे राजवैभव भी तुच्छ है। दृष्टिकोणों में अन्तर होता ही है, वसु! तुझे यहाँ, दृष्टि के सम्मुख जो दीखता है वही महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है और मुझे वह जो दृष्टि के परे—क्षितिज के भी पार दिखाई देता है। वह इतना अनुपम और महत्त्वपूर्ण है कि तेरी कोई भी बात उसके आगे ठहर नहीं सकती!

'आपको क्या दीखता है बड़े भैया?' लेकिन वसु के प्रश्न में उत्सुकता नहीं, उपेक्षा की ध्वनि थी।

'जिसके बारे में न कभी कोई कह सका, न समझा सका और न जिसका कभी परित्याग किया जा सका उस प्रेम के बारे में मैं ही तुम्हें कैसे बताऊँ और क्या समझाऊँ? मेरे हृदय में एक सौन्दर्य मूर्ति बसी हुई है, मेरे मन-प्राणों पर वह छा गई है, मेरा रोम-रोम उसके नाम से झंकृत होता रहता है। वह मूर्ति माद्री की है—माद्री, जो मेरे प्रेम की देवी है; वह प्रेम का छलकता हुआ सागर भी है। जिसने जीवन में एक बार प्रेम-सरोवर का तट देख लिया, उसके लिए मगध क्या, त्रैलोक्य का राज्य भी हेय है। तू पाटलिपुत्र की बात करता है, परन्तु मुझे तो सारी वसुधा का वैभव भी फीका लगता है। तेरी दृष्टि अलग है भाई, और मेरी दृष्टि अलग! तेरे और मेरे अनुभवों और स्वप्नों में बड़ा अन्तर है...'

'वह हो सकता है भैया, लेकिन एक क्षण धरती पर उतरकर विचार कीजिए, केवल आकाश में उड़ते रहने से तो काम नहीं चलता। पिताजी हैं, दादाजी हैं, हमारी माताजी हैं—क्या आपके मन में इनमें से किसी के भी लिए प्रेम नहीं? क्या ये प्रेम के आलम्बन नहीं?'

'हैं वसु, ये सब हैं। लेकिन एक ऐसा भी मनोप्रदेश है—मन का नहीं, प्राणों का प्रदेश है, जहाँ इन लोगों का अस्तित्व विलुप्त हो जाता है। वह प्रदेश प्रेम का प्रदेश है। नारी और पुरुष प्रकृति के अभिन्न अंग हैं और

उनका पारस्परिक प्रेम प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है। नारी-पुरुष की प्रेम-यात्रा शाश्वत और चिरन्तन है। प्रेम का प्रवासी अनन्त पथ का पथिक है। इस पथ का पथिक न किसी को जानता है न कुछ समझता है। मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि माद्री को मैं छोड़ नहीं सकता, छोड़कर जीवित नहीं रह सकता। और माद्री भी मुझे छोड़कर जीवित नहीं रह सकती। लेकिन सच तो यह है वसु, कि मैं इतना भी नहीं जानता, जानते हुए भी जानना नहीं चाहता। अपने-आपको भूल जाने मे, भूला हुआ रहने में जो मजा है वह दुनिया की समस्त सम्पदा का स्वामी बनने में भी नहीं। मैं तुझे कैसे समझाऊँ कि प्रेम क्या होता है, उसका अनुभव कैसा होता है और उसका आनन्द किस प्रकार का होता है।'

'लेकिन बड़े भैया, क्या आप इसका परिणाम जानते हैं ? यदि जानते होते तो इस प्रकार की बात कभी भूलकर भी न कहते। इसका परिणाम है हम सभी का विनाश !'

'यह भी मैं जानता हूँ वसुमित्र ! विनाश तो होगा ही। लेकिन फिर भी मैं इस पथ से विमुख नहीं हो सकता। जाने कैसी एक अदृष्ट शक्ति मुझे इस मार्ग पर आगे और आगे खींचे लिये जा रही है। अपने नेत्रों के सम्मुख मैं प्रतिक्षण प्रेम का एक अनन्त पारावार लहराता हुआ देखता हूँ। मैं उस अनन्त प्रेम-पारावार में निमग्न हो जाना चाहता हूँ, अपने-आपको खो देना चाहता हूँ, नामशेष हो जाना चाहता हूँ। तुम कहोगे, यह आत्महत्या है; लेकिन मैं उसे अपनी आकांक्षा की परम उपलब्धि समझता हूँ। प्रेम के प्राहव में शिरसा डूब जाने के अतिरिक्त मेरी और कोई आकांक्षा नहीं, कोई अभिलाषा और स्वप्न नहीं। मुझे अन्य किसी बात में कोई रस और रुचि नहीं। तुम कहोगे, यह भ्रम है, भ्रान्ति है। परन्तु मैं तो भ्रान्ति के इसी अन्धकार में विलुप्त हो जाना चाहता हूँ—यही होगा मेरा परम सन्तोष ! मैं अपने बस मे नहीं हूँ भाई ! बस में होता तो क्या तुम्हारे साथ न आ खड़ा होता ? तुम्हारे-जैसे भाई को भला कोई छोड़ सकता है ? और माताजी, पिताजी और दादाजी को भी क्या छोड़ा जा सकता है ? परन्तु वसु, मैं क्या करूँ ? मेरे रोम-रोम में प्रेम का अनहद स्वर गूँज रहा है, हृदय-सरोवर में प्रेम की लहरें तरंगित हो

रही हैं; और मुझे कुछ भी नहीं दिखाई देता, केवल एक को छोड़कर....'

'कौन है वह ?'

'माद्री है वह ! माद्री और उसका प्रेम ! उसके सौन्दर्य को देखकर मैं मग्न हो जाता हूँ। भक्त को भगवान् के दर्शन से जो सुख मिलता है वही सुख और आनन्द मुझे माद्री के दर्शन-मात्र से मिल जाता है। उसके सौन्दर्य की एक झलक देखकर मैं सुध-बुध भूल जाता हूँ। वह एक ऐसी अनुभूति है जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता, तुझे समझा नहीं सकता। कालातीत है वह, वर्णनातीत है—केवल अनुभव-गम्य है। शत-सहस्र जन्मों के बाद किसी एक जन्म में उसका उद्भव होता है और मनुष्य निहाल हो जाता है। फिर उसे कुछ पाना नहीं रहता, कुछ खोना नहीं रहता, कुछ भी जानना-समझना नहीं रह जाता। सामान्य जन की भाषा में मैं तुझे केवल इतना कह सकता हूँ कि मैं अपने वश में नहीं हूँ। मेरा स्वामी, मेरा मालिक, मुझे चलानेवाला सब-कुछ माद्री का प्रेम है, उसका सौन्दर्य है। उसकी स्मृति-मात्र से मैं विह्वल हो जाता हूँ। उसकी एक झलक मुझे कहाँ-से-कहाँ पहुँचा देती है। बस इतना समझ ले कि मैं अपने आप में नहीं हूँ। न मैं मैं हूँ, न तू तू है, इस सृष्टि में केवल वही वह है....'

सुमित्र की यह सारी बकवास सुनकर भी वसुमित्र के कुछ समझ में न आया। वह केवल इतना ही समझ पाया कि बड़े भैया का प्रेमोन्माद असाध्य हो गया है और उससे किसी भी प्रकार उनका निवारण नहीं किया जा सकता। फिर भी उसने एक अन्तिम प्रयत्न करते हुए कहा—बड़े भैया, यह सब तो ठीक है। रहे माद्री के प्रति आपका प्रेम और नचाती रहे वह आपको अपनी अँगुलियों पर। परन्तु यह जो आप मगधपति की हत्या करने के लिए प्रस्तुत हो गये हैं, उस पर तो कुछ विचार कीजिए। किसी भी तरह अपने-आपको उस पाप-कर्म से विमुख कीजिए। सोचिए तो कि वह कितना जघन्य अपराध होगा। माद्री ने इसी लिए आपको लुभा रखा है। वह आपसे ही मगधपति की हत्या का भयंकर दुष्कृत्य करवाना चाहती है। आप प्रस्तुत भी हो गये हैं। लेकिन आपके इस कृत्य से भीषण युद्ध छिड़ जायेगा, मगध का नाश हो जायेगा और इतना रक्तपात होगा कि हम सब उसमें डूब

जायेंगे। प्रजा हमारे नाम पर थूकेगी....इसलिए भैया, और सब कीजिए, परन्तु राजा के रक्त से अपने हाथ तो पंकिल न कीजिए....

थोड़ी देर सुमित्र चुप रहा। वह सम्भवतः वसुमित्र की ओर देख रहा था। फिर उसने उसी प्रेमोन्माद-भरे स्वर में कहना आरम्भ किया—वसु, प्रेम की आज्ञा देवता की आज्ञा की भाँति अनुल्लंघनीय होती है। उसे कोई टाल नहीं सकता, मैं तो उसे कदापि नहीं टाल सकता। मुझमें ऐसा करने की शक्ति ही नहीं है वसु! फिर भी मैं प्रयत्न करूँगा। कल तू मुझसे यहीं मिलना।

'इसी समय?'

'हाँ!'

'यहीं?'

'हाँ!'

'अच्छी बात है; मैं कल यहीं और इसी समय आपसे मिलूँगा; और यदि आपका प्रत्युत्तर नकारात्मक हुआ तो हमारा सम्बन्ध सदैव के लिए विच्छिन्न हो जायेगा। न आप मेरे भाई रहेंगे और न मैं आपका। आप अपने मार्ग पर चलने के लिए स्वतन्त्र होंगे और मैं अपने मार्ग पर।'

'ओह वसु, मैं क्या करूँ? भाई, तू मेरी विवशता को समझने का प्रयत्न क्यों नहीं करता? जिस प्रकार मोर बिना नाचे, कोयल बिना कूके, ऋतु बिना आये और पपीहा बिना पुकारे रह नहीं सकता उसी प्रकार यह प्रेम मुझे विवश कर रहा है। मैं अपनी स्थिति तुझे किस प्रकार समझाऊँ, मेरे भाई, किस प्रकार?'

'भैया, जो आप कह रहे हैं वह प्रेम नहीं मोह है, और मोह सदैव अन्धा होता, भ्रान्तिपूर्ण होता है। यदि आप चाहें तो अनायास ही इससे छुटकारा पा सकते हैं।'

'क्या कहते हो वसु, तुम? जो मेरे प्राणों का प्राण है, जो मेरी साँसों का सरगम है उससे छुटकारा पा लूँ? असम्भव है! नारी के सौन्दर्य की अनुभूति कितनी तीव्र और दुर्निवार होती है, इसका तुम्हें कोई अनुभव नहीं। राजा को अपना राज-पाट और योगी को अपना गृह-संसार छोड़ते समय जो अनुभूति होती है ठीक वैसी ही तीव्र यह अनुभूति है। इस विवशता को तुम मोह कहते

हो ? नहीं वसु, यह मोह नहीं, आदेश है और इस आदेश की अवहेलना नहीं की जा सकती....'

'भैया, मेरे तो यह कुछ समझ में नहीं आता। अब चलता हूँ। कल आऊँगा आपसे अन्तिम उत्तर लेने।'

'कल ? मुझसे अन्तिम उत्तर ?' सुमित्र ने खोये हुए स्वर में कहा। वह भूल गया था कि अभी दो ही क्षण पहले उसने वसुमित्र को कल अपना प्रत्युत्तर देने के लिए कहा है।

'हाँ; अभी ही तो आपने कहा कि कल इसी समय यहाँ आप मुझे प्रत्युत्तर देंगे। चाँदनी तो कल भी रहेगी।'

'चाँदनी ? हाँ वसु, चाँदनी तो आज भी है, कल भी होगी; पर जो आनन्द कौमुदी-महोत्सव की चाँदनी में होगा वह अन्य किसी भी चाँदनी में नहीं हो सकता। इसलिए भाई मेरे, तू उसी समय आना, उसी रात....'

लेकिन वसुमित्र कुछ न बोला। पुष्यमित्र ने उसे दोनों हाथ जोड़कर खड़ा होते हुए देखा। वसु ने समझ लिया कि बड़े भाई को मोहान्धकार से उबारना असम्भव ही है। उसे अपने भाई के सम्बन्ध में तो चिन्ता हुई ही, साथ ही मगध-साम्राज्य के भविष्य और वर्तमान की चिन्ता ने भी व्यथित कर दिया। चिन्ताओं में निमग्न वह उठकर खड़ा हुआ, और वहाँ से चल दिया।

परन्तु सुमित्र अपने विचारों में खोया हुआ-सा वहीं बैठा रहा। उसे पता भी न चला कि वसुमित्र कब उठा और कब चला गया।

और इधर पुष्यमित्र की चिन्ता का कोई पार न था। सुमित्र की स्थिति जितना उसने सोचा था, उससे कहीं भयंकर और असाध्य थी।

१८ : सुमित्र की विवशता

वह यों न जाने कितनी देर तक चुप, निःस्पन्द बैठा रहता—सम्भवतः सारी रात; परन्तु सहसा कोयल की मधुर कूक-जैसा एक अत्यन्त मीठा और दर्द-भरा गीत उपवन में गूँज उठा। सुमित्र सुनकर चौंका और प्रसन्न हो गया। यह माद्री गाती हुई इसी ओर चली आ रही थी। लेकिन आज और इस समय तो माद्री के यहाँ आने की कोई बात नहीं थी। इसी लिए सुमित्र कह

उठा—कौन ? माद्री ? तुम कहाँ से ? तुम्हारे तो आज यहाँ आने की कोई बात नहीं थी ! आज तो तुम, जैसा तुमने कहा था, महाराज से मिलने के लिए जानेवाली थी।

लेकिन माद्री ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह अभिभूत-सी गाती रही। बड़ी मधुरता थी उसके गले में और लोच भी कम नहीं था। सुमित्र कभी निश्चय नहीं कर पाया कि उसे माद्री का गाना इतना अच्छा क्यों लगता था। क्या बात थी ? कण्ठ की मधुरता थी अथवा विदेशी उच्चारण के कारण स्वरों का सौन्दर्य बढ़ जाता था ? बात जो भी रही हो, उसे माद्री का गाना बहुत अच्छा लगता था। जब वह गाने लगती तो उसका मन चाहता था कि आँखें मूँदकर पड़ा रहे और वह गाती रहे और वह सुनता रहे और कोई उसे उस मुग्ध-स्वप्न से जाग्रत न करे !

माद्री के सान्निध्य में, सुमित्र के मन में, कुछ बड़े ही विचित्र प्रकार के भाव उत्पन्न होते थे। प्रयत्न करके भी वह उन भावों को समझ नहीं पाया था और न उनका विश्लेषण ही कर सका था। उन भावों को न तो वह आकर्षण कह सकता था, न प्रेम का आवेश और न आनन्दोर्मि; और न कोई दूसरा नाम ही दे पाता था। बस, ऐसा लगता था कि माद्री को देखते-देखते उसी में लीन हो जाये—स्वयं विलुप्त हो जाये; उसकी अपनी कोई सत्ता, कोई अस्तित्व न रहे, केवल माद्री रहे।

मन में इस प्रकार के भाव का आना असम्भव और अस्वाभाविक तो नहीं है। अनुपम, विरल सौन्दर्य के सान्निध्य में मानव के मन में ऐसे ही भाव उठते हैं। जब सौन्दर्य स्वाभाविक कोटि का हो तब दर्शक के मन में थोड़ा मोह, किंचित् आकर्षण, जरा-सा रोमांच, थोड़ा-सा प्रेम और प्रचुर आनन्द उत्पन्न होता है। कभी ये सभी भाव एक साथ उत्पन्न हो जाते हैं, तो कभी केवल एक और कभी दो, तीन या चार। लेकिन विलुप्त हो जाने की महत् अभिलाषा—केवल अभिलाषा नहीं, महत् अभिलाषा—मन में कभी-कभार ही उत्पन्न होती है। वह उत्पन्न होती है जब आँखें विश्व का श्रेष्ठतम, विरलतम सौन्दर्य निहारती हैं। उस सौन्दर्य को देखते ही मन करता है कि इस रूपराशि को नेत्रों में भरे-भरे ही सदा के लिए ये नयन मुँद जायें। वह स्थिति सौन्दर्य

की पराकाष्ठा तो होती ही है, सौन्दर्य-प्रेम की चरम अवस्था भी होती है। मन में ऐसे भाव का उदय होता है किसी सुन्दर पर्वत-शिखर पर पहुँचने के पश्चात्, किसी शान्त सुरम्य, तरंग-विहीन, दूर क्षितिज तक विस्तारित सरोवर अथवा जलनिधि के तट पर पहुँचने के पश्चात्, योजनों-पर्यन्त फैली हुई वन-राजि की निःशब्द, मौन वाणी को सुनकर, अथवा किसी अनिन्द्य सुन्दरी, अपरूपसी, सौन्दर्य मूर्ति नारी के सान्निध्य में। सुमित्र जब आँखें मूँदकर माद्री का मधुर गीत सुनने लगता तो उसके मन में भी ठीक ऐसा ही भाव उत्पन्न होता था। उसका मन चाहता कि माद्री इसी प्रकार दर्द-भरे स्वर में गाती रहे और वह उसकी गीत-लहरियों में डूब जाये, विलुप्त हो जाये....ओह, कितना मधुर, कितना सम्मोहक और कितना दर्द-भरा था माद्री का स्वर....

योगी की समाधि, प्रेमी की समाधि, भक्त की समाधि, ज्ञानी की समाधि सभी की समाधि-अवस्थाएँ जहाँ एक में आकर लीन हो जायें, एकाकार हो जायें, ऐसी उत्कृष्ट तल्लीनता होती थी वह सुमित्र के लिए।

इस समय भी सुमित्र की वही स्थिति हुई। माद्री का गीत सुनते ही वह अपने-आपको भूल गया, गीत के स्वरों में तल्लीन हो गया। माद्री सुमित्र पर अपने गीत के इस प्रभाव से अनभिज्ञ नहीं थी। वह जानती थी कि मेरा गीत सुनते ही सुमित्र की दशा सँपेरे की बीन के आगे मंत्र-मुग्ध फणिधर-जैसी हो जाती है। और वह यह भी जानती थी कि उस समय मेरा एक-एक शब्द सुमित्र के लिए अनुल्लंघनीय आदेश होता है; प्रेम का एक-एक वाक्य वैदिक ऋचा की भाँति पवित्र और वन्दनीय होता है। उस समय सुमित्र मंत्राहत की भाँति माद्री की कही बात और बताये काम को करता था। इसलिए माद्री को जो भी कहना और करवाना होता वह सुमित्र से ऐसे ही समय कहती और करवाती थी। और सुमित्र उचित-अनुचित का विचार किये बिना सब-कुछ करता था, क्योंकि उस समय उसमें किसी प्रकार का निर्णय करने की शक्ति ही नहीं रह जाती थी।

अब माद्री ने गाना बन्द कर दिया था, परन्तु उसके मधुर स्वर की गूँज अभी तक हवा में भरी हुई थी और आँखें मूँदकर बैठे हुए सुमित्र को ऐसा लग रहा था मानो प्रकृति का कण-कण गा रहा हो।

'क्यों सुमित्र, तुम क्या सोचते हो ? जानते हो, मैं मगधपति को इतना क्यों चाहती हूँ ?' माद्री ने जब यह देखा कि सुमित्र गीत के प्रभाव से अवश हो गया है तो उसने उससे पूछा।

'क्यों ? किस....लिए ...?' सुमित्र ने लड़खड़ाते स्वर में पूछा। वह पूरी तरह अपना आपा बिसार चुका था।

अपने छिपने के स्थान पर बैठा हुआ पुष्यमित्र सुमित्र की यह दशा देखकर और उसके लड़खड़ाते स्वर को सुनकर चौंक पड़ा। यदि स्वयं अपनी आँखों से देख न रहा होता तो सुनकर उसे कभी विश्वास न आता कि यह यवनसुन्दरी केवल अपने गीत से किसी व्यक्ति को इस तरह अपने बस में कर सकती है। निश्चय ही इसमें कोई दैवी शक्ति होनी चाहिए। और तब उस यवनी की भयंकरता का अनुमान लगाकर पुष्यमित्र काँप उठा। सौन्दर्य के साथ इस प्रकार की शक्ति से सम्पन्न यह यूनानी यवनी मगध के लिए कितनी भयंकर हो सकती है ! मगध की सारी सेना को तो यह अकेली ही पराजित कर देगी ! बार-बार देखी हुई उसकी सूरत को एक बार फिर देखने का पुष्यमित्र ने निश्चय किया।

गरदन को जरा-सा उठाकर उसने उसकी ओर देखा। चाँदनी के धवल स्निग्ध प्रकाश में उसका चेहरा चाँदी मढ़ा हुआ, किसी देवांगना की भाँति दमक रहा था। कितना मोहक था वह मुखड़ा ! असुरों पर मोहिनी डालनेवाली मोहिनी भी इतनी ही मोहक रही होगी ! ऐसी ही नारियाँ इतिहास की निर्मात्री होती हैं। वे विधाता की भाँति भविष्य का निर्माण करती और अदृश्य की अधिष्ठात्री बनकर विचरती हैं।

सुमित्र के प्रति पुष्यमित्र का मन दया से भर आया। यदि वह अपना आपा भूल गया तो आश्चर्य ही क्या ! आश्चर्य की बात तो तब होती जब वह आपा न भूलता। माद्री का सौन्दर्य पार्थिव तो था नहीं कि पृथ्वी का मनुष्य उसे देखकर अपने बस में रह सके ! वह तो अपार्थिव था, मानो चन्द्रलोक की किसी अप्सरा को धरती पर उतार दिया हो। ऐसी चन्द्रांगना को देखकर कौन है जो अपने वस मे रह सके ? उसे देखकर तो सभी का मन यही चाहने लगेगा कि धरती छोड़कर स्वर्ग मे जा बसे, उसके लिए तो यह

धरती हो जायेगी निरा मिट्टी का ढेर—रूपहीन, श्रीहीन, सौन्दर्यविहीन। सैकड़ों नहीं, हजारों वर्षों में कभी-कभी ही ऐसी सुन्दरियाँ इस धरती पर अवतरित होती हैं!

लेकिन सुमित्र का प्रश्न सुनकर पुष्यमित्र की विचार-तन्द्रा भंग हो गई। वह पूछ रहा था—क्यों माद्री, क्यों? क्यों तुम मगधपति से प्यार करने का ढोंग करती हो?

'इसलिए सुमित्र, कि मैं उसे मार डालना चाहती हूँ।'

सुनकर पुष्यमित्र काँप उठा।

'अरे रे! शान्तम् पापम्! शान्तम् पापम्! मानव-हत्या किस लिए! तुम इतनी निर्दय क्यों हो?'

'पर यह निर्दयता नहीं है।'

'क्या कहती हो, निर्दयता नहीं है!'

'नहीं, निर्दयता नहीं है। मगधपति जितने ही अधिक दिन जीवित रहेगा, प्रजा को उतना ही अधिक कष्ट होगा; कष्ट सहती हुई प्रजा पतित हो जायेगी और वह हमारा भी पतन कर देगी। हमारे यहाँ मिलिन्द-जैसे महान् आदर्शवादी हैं, जो भगवान् तथागत के विश्व-प्रेम को विश्वव्यापी बनाना चाहते हैं; वह यहाँ आना चाहते हैं, देवताओं की इस भूमि को गौरवान्वित करना चाहते हैं; इस धरती का सन्देश सारे विश्व में गुँजाना चाहते हैं... लेकिन तुम्हारा यह मगधपति इस धरती को और यहाँ के महान् प्रेम-सन्देश को मिट्टी मे मिलाये दे रहा है। धम्म शब्द का उच्चारण तक तो कर नहीं सकता, परन्तु बातें धम्म की करता है। मनुष्य ने सदियों के प्रयत्न और परिश्रम से जिस ज्ञान-सम्पदा को प्राप्त किया है उसे यह मूर्ख पाँवों-तले रौंद रहा है। समुद्र-मन्थन के पश्चात् यदि अमृतघट किसी मूर्ख के हाथ में पड़ जाये तो उसका वध करके भी उस अमृतघट की रक्षा करनी चाहिए। यही स्थिति इस समय मूर्ख बृहद्रथ की है। यदि इसे मारा न गया तो यह मानव-जाति के सभी आदर्शों, सभी स्वप्नों, सारी ज्ञान-सम्पदा और सभ्यता-संस्कृति का गला घोंट देगा। मुझे तो उद्धार का केवल एक ही मार्ग दिखाई देता है कि मिलिन्द यहाँ आयें। उनके यहाँ आने पर ही विश्व समृद्ध होगा, भारत भव्यता को

प्राप्त हो सकेगा, भगवान् तथागत की विश्व-विजयिनी वाणी ब्रह्मांड में गूँज सकेगी, यह दुनिया नया, लोकोपकारी रूप ग्रहण कर सकेगी....और इसी लिए इस मूर्ख का वध करने के ही लिए मैं यहाँ आई हूँ। और यह तो तुम जानते ही हो कि इस काम के पूरा होते ही मैं अपने-आपको खोने, लुटाने और समर्पित करने के लिए स्वतन्त्र हो जाऊँगी। और खो तो मैंने अपने-आपको दिया ही है सुमित्र!'

'कहाँ?'

'यह बताया नहीं जा सकता।'

'फिर भी!'

'है एक जगह।'

'कौन है वह भाग्यशाली?'

'है एक जन।'

'नाम क्या है?'

'उसका कोई नाम नहीं। वह नामहीन है।'

'उसका पहला अक्षर क्या है?'

'प्रेम!'

'और अन्तिम?'

'वह भी प्रेम।'

'मध्य में क्या है?'

'मध्य में भी प्रेम।'

'तुम्हारा संकेत किसकी ओर है?'

'प्रेम की ओर।'

'लेकिन यह प्रेम है कौन?'

'तुम और केवल तुम। यह ऐसा प्रेम है जिसमें तुम तुम नहीं रहे और मैं मैं नहीं रही—ऐसे तुम और मैं! मैं, तुम और प्रेम—इन तीन शब्दों में ही सारी सृष्टि समा गई है। अन्य किसी शब्द के लिए वहाँ अवकाश ही नहीं रह गया है। शेष सभी शब्द यहाँ आकर विलीन हो जाते हैं। ऐसे ही तुम्हारे प्रेम में और तुम्हारे निकट मैंने अपने-आपको खो दिया है। तुमने अपने को

खोया है या नहीं, यह तो मैं जानती नहीं, परन्तु मैंने तो अपने को बिलकुल ही खो दिया है।'

'कब खोया तुमने ?'

'तुम्हारे खोने के बहुत दिन पहले।'

'तो आज्ञा दो मेरी स्वामिनी ! ऐसा शब्द कहो कि मैं भी अपने-आपको भूलकर तुम में विलीन हो जाऊँ।'

'मेरी आज्ञा है सुमित्र, कि तुम कौमुदी-महोत्सव में मगधपति का वध करो। उसके बाद हम दोनों यहाँ से भागकर चले जायेंगे—दूर, दूर, बहुत दूर; किसी वन-प्रान्तर मे, मानव-समुदाय से परे और वहाँ पक्षियों की भाँति किलोलें करेंगे; जंगल में मंगल मनायेंगे। दुनिया की क्रूर दृष्टि से अलग हम अपनी अकेली कुटिया बनाकर रहेंगे। वहाँ तुम होगे—अकेले तुम, मेरे प्रियतम और मैं हूँगी, अकेली मैं, तुम्हारी प्रियतमा। तुम मेरी वेणी गूँथोगे और मैं तुम्हारे केश सँवारूँगी। स्वप्न प्रत्यक्ष हो उठेगा सुमित्र। जानते हो, स्वप्न का सुख और सौन्दर्य किसमें निहित है ?'

'मैं तो नहीं जानता माद्री, तुम्हीं बता दो न !'

'स्वप्न का सुख निहित है अपने-आपको विलुप्त कर देने में। जो प्रेम-सागर के किनारे खड़े देखते रहते हैं वे मूर्ख हैं; प्रेमसागर में गोता लगाकर जो बाहर निकल आते हैं वे महामूर्ख हैं। महान वही हैं जो प्रेमसागर में सदा के लिए डूब जाते हैं, अपने को उसमें हमेशा के लिए विलुप्त कर देते हैं। जिस प्रकार तथागत रोज-रोज अवतरित नहीं होते, उसी प्रकार प्रेमसागर में अपने-आपको विलुप्त करनेवाले प्रेमी भी प्रतिदिन जन्म नहीं लिया करते। हजारों वर्षों में कभी-कभी ही ऐसे प्रेमियों का जन्म होता है। हम भी ऐसा ही अनुभव प्राप्त करता चाहते हैं—डूब जाना चाहते हैं, विलुप्त हो जाना चाहते हैं, सदा के लिए खो जाना चाहते हैं। यह ऐसा अनुभव होगा जिसके आगे इस विश्व का समस्त सुख और सारी सम्पदा हेय है। लेकिन क्या तुमसे हो सकेगा ? प्रेमसागर के तट पर पहुँचने से पहले क्या तुम नारकीय कष्टों से भी अधिक कठोर अग्निपरीक्षा दे सकोगे ? काँप तो नहीं उठोगे ? तुम्हारे पाँव लड़खड़ायगे तो नहीं ?....मैं जानती हूँ, तुम डरोगे नहीं, काँपोगे नहीं, लड़-

घबड़ाओगे नहीं। और मैं भी नहीं लड़खड़ाऊँगी। हम दोनों को प्रेम पुकार रहा है। हमें भागना है। यहाँ के बन्धनों से मुक्त होना है। तुम मुझे बन्धन-मुक्त करोगे प्रियतम! मगधपति का वध करके ही मुझे छुड़ाया जा सकता है। कौमुदी-महोत्सव की रात हमारी मुक्ति की मंगल रजनी होगी। तुम्हें उसी के लिए तैयार करने के हेतु मैं आज यहाँ आयी हूँ....'

'किन्तु ...'

'प्रेम में किन्तु-परन्तु कैसा? यह प्रेम का आदेश है, जिसे टाला नहीं जा सकता। और मगधपति का वध किये बिना हम मुक्त नहीं हो सकते।'

'यदि अभी ही भाग चलें....'

'मैं भीरु के साथ भाग नहीं सकती।'

'यदि किसी अन्य को मगधपति की हत्या के लिए प्रेरित करें....'

'वह तो और भी बड़ी भीरुता होगी। जिस स्वर्गोपम प्रेम-सुख का हम आनन्द उठाना चाहते हैं वह भीरुता एवं कायरता में कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। उसकी उपलब्धि के लिए तो सभी प्रकार के भय और भीरुता को होम देना होगा। हमें निडर होकर मगधपति की हत्या करनी होगी। हम अपने हाथों उसका वध करके भागेंगे। मैं तुम्हारे साथ हूँगी और तुम मेरे साथ होगे। हमारे पीछे मगध की सेना होगी, पर उसका क्या भय? सुमित्र, हमारे आगे यूनानी यवनों की शक्तिशाली सेना भी होगी, हमारी रक्षा करने के लिए, पर हमें किसी भी सेना से रक्षित होने की आवश्यकता ही क्या है? हम तो किसी वन-प्रान्तर में जा बैठेंगे और उस प्रेम का साक्षात् अनुभव करेंगे, जो केवल कवियों की कल्पना में ही पाया जाता है। बोलो, है साहस?'

मंत्राहत की भाँति सुमित्र ने कहा—साहस तो है।

'इस भाँति तो के साथ नहीं, दृढ़तापूर्वक निश्चयात्मक स्वर में कहो कि साहस है; तब मैं मानूँगी।'

'है, साहस है। मैं तुम्हारी आज्ञा को सिर-आँखों पर चढ़ाता हूँ।'

'यह आज्ञा नहीं, प्रेम है सुमित्र, हमारा पारस्परिक प्रेम....इसे तुम हमारे प्रेम यज्ञ का प्रारम्भ ही....'

पुष्यमित्र सब सुन रहा था। माद्री के ये शब्द सुनते ही उसका हाथ अना-

थास ही अपनी तलवार की मूठ पर चला गया। तलवार म्यान से आधी निकल भी आई। तभी उसे खयाल आया कि इस प्रकार इनकी हत्या करना तो कदापि उचित न होगा, वरन् पामरता ही होगी। उसने निश्चय किया कि अब मुझे यहाँ से चल ही देना चाहिए। यही उचित होगा। यहाँ बैठा सुनता रहा तो पता नहीं कब क्या कर बैठूँ!

वह धीरे से उठा और चुपचाप वहाँ से चल दिया।

कुछ दूर जाकर उसने मुड़कर देखा; दोनों अभी वहीं बैठे हुए थे।

माद्री सुमित्र का हाथ अपने हाथ में लिये बड़ी देर तक वहीं बैठी रही। ऐसा लग रहा था मानो दोनों ही अपने बस में न हों, सचमुच ही खो गये हों!

१६ : कौमुदी-महोत्सव रोका गया

पुष्यमित्र वहाँ से चला तो चाँद डूब चुका था और चारों ओर अँधेरा भर गया था। स्वयं पुष्यमित्र के मन में भी ऐसा ही अँधेरा छा रहा था। कौमुदी-महोत्सव की आयोजना का वास्तविक कारण अब उसकी समझ में भली प्रकार आ गया था। माद्री के रूप-सौन्दर्य और आकर्षण के बारे में तो वह पहले भी जानता था, लेकिन फिर भी यह देखकर उसे परम आश्चर्य और कुछ भय भी हो रहा था कि उसने किस प्रकार अपने रूप की मोहिनी में सबको उलझा रखा था। क्या राजा और क्या मंत्री, क्या सुमित्र और क्या राजकर्मचारी कोई भी उसके मोहपाश से अछूता नहीं बचा था। पुष्यमित्र ने सोचा कि अब यदि जरा-सी भी देर की तो यूनानी यवन बिना लड़े ही मगध पर अधिकार कर लेंगे। इसी लिए तो कौंडिन्य ने कौमुदी-महोत्सव का यह नाटक रचा था; इसी लिए उसने माद्री को उस नाटक की प्रमुख अभिनेत्री बनाया था; इसी लिए उसने विदर्भ के यज्ञसेन के आने अथवा न आने की कोई विशेष चिन्ता नहीं की, लगभग उपेक्षा ही प्रदर्शित की थी। इसी कौमुदी-महोत्सव के कारण तो सारे पाटलिपुत्र नगर का वातावरण बदल गया था। नगर में विदेशियों के ठट्ट-के-ठट्ट आने लगे थे। यूनानी यवन भी बड़ी संख्या में चले आ रहे थे। वे यही कहते हुए आते थे कि हम धर्म-महोत्सव देखने के लिए आये हैं। पर आश्चर्य नहीं, यदि उनमें सैनिक भी भेष बदलकर आ रहे हों; हो सकता है

कि आ भी गये हों। हो सकता है कि कौंडिन्य ने उनसे मिलकर कोई योजना भी बनाई हो। कोई योजना उसने अवश्य ही बनाई होगी। उसी योजना को पूरा करने के लिए कौंडिन्य ने कौमुदी-महोत्सव का आयोजन किया है, इसी लिए उस दुष्ट का इस उत्सव के लिए इतना आग्रह है।

यदि कोई उत्पात हो ही जाये तो क्या नगर में उसे रोकने और उसका सामना करने की सामर्थ्य थी? पुष्यमित्र को सर्वत्र अव्यवस्था और अशान्ति ही दिखाई दी। नगर में किसी भी प्रकार का सैनिक प्रबन्ध और व्यवस्था नहीं थी। कोई किसी की बात भी नहीं पूछता था। यदि मगध में सुशासन और व्यवस्था का पुराना दबदबा न होता तो पाटलिपुत्र में सब-कुछ विशृंखल ही हो गया था। पुराने प्रताप के ही कारण ऊपर-ऊपर से यान्त्रिक व्यवस्था बनी हुई दिखाई देती थी। बाकी न किसी तरह की सत्ता बची थी, न कोई अनुशासन रह गया था। सुशासन के मूल स्तम्भ—राजकर्मचारी घोर लापरवाही करने लगे थे: और एक भी गुप्तचर विश्वसनीय नहीं रह गया था! पुष्यमित्र जिधर भी दृष्टि डालता, उसे अन्धकार ही दृष्टिगोचर होता था।

स्वयं राजा के महल में अन्धाधुन्धी और अव्यवस्था अपनी चरम सीमा को पहुंच चुकी थी। शासन-कार्यों के स्थान पर वहाँ धर्म-चर्चाओं और उनसे भी अधिक नृत्य-अभिनय और राग-रंग की धूम मची रहती थी। इधर तो स्वयं राजा वृहद्रथ भी नाटकों में अभिनय करने लगा था। कभी वह राजा बनता तो कभी साधु, कभी भिक्षु बनता तो कभी आटविक। ऐसी चहल-पहल थी कि यदि कोई राजा के प्रकोष्ठ में भी जा घुसता और महीनों वहाँ पड़ा रहता तब भी किसी को पता न चलता। सब इस तरह सो रहे थे कि जब तक सर पर डंडा न बजता कोई जागने का नाम न लेता।

और डंडा बजने की तैयारियाँ भी हो गई थीं। स्वयं सुमित्र ही इसके लिए उतावला था। उसके अतिरिक्त यूनानी यवन भी तैयार खड़े थे। आक्रमणकारियों में वही सबसे अधिक निकट थे। कौंडिन्य ने उनके साथ समझौता कर भी लिया था। उसके लिए कौमुदी-महोत्सव का अर्थ भी यही था कि यूनानी आकर मगध की सत्ता उसके हाथ में सौंप दें। सच ही ऐसी दुर्व्यवस्था थी कि जो भी पहले आता वही पाटलिपुत्र का स्वामी बन बैठता।

पुष्यमित्र इन्हीं सब बातों को सोचता हुआ अन्धकार में आगे बढ़ा जा रहा था। सारा नगर नींद में सोया पड़ा था। कहीं-कहीं अब भी दीपिकाएँ जल रही थीं। चारों ओर विशाल गगनचुम्बी महल गौरव से सिर उठाये भव्यतापूर्वक खड़े थे। लेकिन अन्दर से वे सब खोखले हो चुके थे। जहाँ मनुष्य ही खंडहर हो जाये, वहाँ प्रासादों में शक्ति और गौरव कहाँ से रह सकता था? वे ऐसे मनुष्यों के निवासस्थान थे जो विपत्ति को दूर से आता देखते ही भाग खड़े होते। पुष्यमित्र का हृदय अत्यधिक व्यथित हो उठा। सुमित्र और माद्री के वार्त्तालाप ने उसकी चिन्ताओं को बहुत ही बढ़ा दिया था। सबसे बड़ा डर तो उसे यह था कि यदि सुमित्र माद्री के कहने में आ गया और कोई अविचारपूर्ण कार्य कर बैठा तो मगध को बचाने की उसकी सारी योजनाएँ मिट्टी में मिल जायेंगी। चलते-चलते वह सहसा खड़ा हो गया। क्यों न लौट जाये और उन दोनों को इसी समय मौत के घाट उतार दे? लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ बह चलीं। अपने ही पौत्र को वह कैसे मार सकता था? और माद्री को मारने का अर्थ होता, यूनानियों को मगध पर आक्रमण करने का निमंत्रण देना। वह पुनः तेजी से आगे बढ़ा। कई विचार उसके मन में चक्कर लगा रहे थे। सहसा एक ऐसा विचार उसके मन में उदित हुआ जिसने उसे प्रसन्न कर दिया। क्यों न कौमुदी-महोत्सव को ही बन्द कर दिया जाये? जब उत्सव ही नहीं होगा तो सुमित्र को बृहद्रथ का वध करने का अवसर ही कहाँ से मिलेगा?

इस सम्भावना पर उसने जितना ही सोचा उतना ही वह मुग्ध होता गया। सुमित्र को माद्री के कथनानुसार राजा का वध करने से रोकने का केवल यही एक उपाय दीख रहा था। ठीक है, ऐसा ही किया जाये। और उसने वहीं खड़े-खड़े कौमुदी-महोत्सव रुकवाने के लिए राजा बृहद्रथ से उसी समय मिलने का निश्चय किया। अपने इस कार्य में उसने मगधपति के आन्तर्वंशिक मित्र-देव से भी सहायता प्राप्त करने का निश्चय किया। भगवान् कौटिल्य के समय से ही आन्तर्वंशिक दौवारिक का काम किया करता था। यह पद बड़े ही महत्त्व का और सम्माननीय भी था। दौवारिक को वेतन ही चौबीस सहस्र कार्षापण—अग्रमहिषी के वेतन का आधा—दिया जाता था। कोई उसे हटा भी नहीं

सकता था। कौटिल्य ने दौवारिक के सम्बन्ध में ऐसी ही व्यवस्था निर्धारित की थी। राजा की रक्षा का सारा भार भी उसी पर था। दौवारिक ही राजा को कौमुदी-महोत्सव बन्द रखने की बात अच्छी तरह समझा सकता था। फिर आन्तर्वंशिक मित्रदेव तो बड़ा ही प्रभावशाली, समझदार और शक्तिशाली व्यक्ति था। वह जानता था कि मगधपति ज्वालामुखी पर बैठा मौत से खिलवाड़ कर रहा है। राजभक्ति भी उसकी अद्वितीय थी। पुष्यमित्र ने उससे मिलने का निश्चय किया और तत्काल उसके भवन की ओर चल पड़ा।

नियमानुसार तो मित्रदेव को इस समय राजमहल में होना चाहिए था। रात्रिकालीन सुरक्षा और व्यवस्था का भार दूसरे दौवारिक अग्रपाल पर था और मित्रदेव अधिकतर दिन के समय ही राजप्रासाद में रहता था। कौडिन्य की दुष्टता के बारे में वह जानता था और यह भी जानता था कि दुष्ट मन्त्री कभी भी राजा का वध कर सकता है। यद्यपि अभी तक कौंडिन्य की ऐसी कोई योजना सफल नहीं होने पायी थी, फिर भी मित्रदेव सतर्क रहता था। रात के समय तो अग्रपाल के अतिरिक्त और भी कई प्रतिहारी सतर्कता से राजप्रासाद की रक्षा करते थे, इसलिए रात में राजा पर आक्रमण होने की कोई सम्भावना उसे नहीं दिखाई देती थी। दिन के समय रक्षा-प्रबन्ध वैसे भी कुछ शिथिल हो जाता था और आक्रमणकारी स्थिति से लाभ उठा सकता था, इसलिए मित्रदेव दिन में ही महल में रहता और क्षण-भर के लिए भी राजा को अरक्षित नहीं छोड़ता था। उसने राजा को सचेत करने का भी कई बार प्रयत्न किया था। लेकिन राजा ने हर बार उसकी बात को हँसी में उड़ा दिया। उस मिथ्यावादी अधार्मिक धार्मिक ने यही कहा, 'कोई किसी का वध नहीं करता, कोई किसी को हानि नहीं पहुँचाता, पारस्परिक समझ का अभाव ही सब अनिष्टों का मूल कारण होता है!' बार-बार यही प्रत्युत्तर सुनकर मित्रदेव चुप रह जाता और गहन व्यथा से मगधपति को अपनी मृत्यु की ओर बढ़ते हुए देखता रहता था। वह यह भी सोचने लगा था कि ऐसे मगधपति से तो अच्छा है कि कोई उसे अपदस्थ करके सारे अधिकार अपने हाथ में ग्रहण कर ले। लेकिन पीढ़ियों से चली आती राजभक्ति मन की इस बात को जबान पर नहीं आने देती थी। यह जानते हुए भी कि मगधपति अधिक टिका

नहीं रह सकता, वह उसकी रक्षा करने के कार्य में लगा रहता था।

पुष्यमित्र ने मित्रदेव के भवन पर पहुँचकर रक्षक के द्वारा अपने आने की सूचना उसके पास पहुँचाई। मित्रदेव इस समय सो रहा था। जागकर जब उसने पुष्यमित्र के आने के बारे में सुना तो चकित रह गया। पहला विचार तो उसे यही आया कि राजप्रासाद में हिंसा अथवा रक्तकांड न हो गया हो। शीघ्रता से बाहर आकर उसने महाबलाधिकृत का अभिवादन किया और उसके बोलने की प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा रहा।

पुष्यमित्र एक आसन्दी पर बैठा हुआ था। उसने अत्यन्त सहज और स्वाभाविक स्वर में कहा—मित्रदेव, तुम महाराज के आन्तर्वंशिक—अंग-रक्षक—हो, और मैं नगर का अंगरक्षक हूँ। महाराज की अपेक्षा नगर कहीं महान् है। और यही बात समझाने के लिए मैं इस समय तुम्हारे पास आया हूँ। तुम महाराज के जितने सतर्क अंगरक्षक हो उतने ही सतर्क आत्मरक्षितक भी अब बनो।

'परन्तु यह बात इस समय, आधीरात में, कहने की ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गई? क्या कल नहीं कही जा सकती थी?'

'मगध की पल-पल परिवर्तित और अस्थिर स्थिति को क्या तुम नहीं जानते? क्या यह भी मुझी को बतलाना होगा कि आज की बात केवल आज के लिए और अभी का काम केवल अभी के लिए है। कल पर किसी बात को टाला नहीं जा सकता।'

'इस बात का अनुभव तो मैं रात-दिन करता रहता हूँ, प्रभु; और ईश्वर से मनाया करता हूँ कि शेष जीवन के थोड़े-से दिन निरापद व्यतीत हो जायें, किसी तरह का कलंक न लगने पाये। भविष्य के लिए तो मैंने निश्चय कर लिया है कि अपने वंश में से किसी को आन्तर्वंशिक बनने नहीं दूँगा। तुम मनुष्य की रक्षा तो कर सकते हो, परन्तु जो आत्महत्या ही करना चाहे, उसकी रक्षा कौन कर सकता है! और हमारे मगधपति इस समय आत्महत्या के मार्ग पर ही दौड़े चले जा रहे हैं।'

'उनको इस पथ पर जाने से रोकने के लिए हमें एक काम करना होगा, मित्रदेव!'

'कौन-सा ?'

'उन्होंने जिस कौमुदी-महोत्सव की घोषणा की है उसको स्थगित करने की घोषणा करनी होगी।'

'यह तो आकाश के कुसुम चुनने के समान है, महाबलाधिकृत !'

'क्यों, असम्भव क्यों है ?'

'महाराज बृहद्रथ गले तक इस महोत्सव में डूबे हुए हैं। वह यवनसुन्दरी माद्री उनको हर समय उँगलियों पर नचाती रहती है। उनकी रक्षा करते हुए मुझ पर क्या बीतती है इसे मेरा भगवान ही जानता है। महामात्य कौंडिन्य की कोई बात और कोई काम मेरी समझ मे नहीं आता, और आप कहते हैं कि हमें कौमुदी-महोत्सव को स्थगित करने की घोषणा करनी चाहिए—असम्भव !'

'लेकिन कौंडिन्य से बताने जाता ही कौन है ? वह सोया रहे, माद्री भी सोती रहे और हम अभी ही मगधपति के पास चलकर उत्सव को स्थगित करने की आज्ञा प्राप्त कर लें; और प्रातःकाल की प्रथम किरण के साथ ही इस आशय की घोषणा करवा दें। इसी लिए तो मैं इस समय तुम्हारे पास आया हूँ।'

मित्रदेव विचार में पड़ गया। कुछ क्षण सोचते रहने के बाद उसने कहा—आज महाराज अस्वस्थ थे, इसलिए नृत्योत्सव बन्द रखा गया। सम्भवतः अभी जाने पर महाराज से भेंट हो जाये। परन्तु आप महोत्सव को स्थगित क्यों करना चाहते हैं ?

'कारण तो बताया जा सकता है। अग्निमित्र का सन्देश आया है; आन्ध्र का शातकर्णी अवन्ती पर अपना अधिकार जतला रहा है, यदि हमने उसके इस दावे को स्वीकार न किया तो वह अवन्ती पर आक्रमण करने के लिए तैयार है। हम युद्ध की घोषणा कर नहीं सकते, क्योंकि महाराज का युद्ध में विश्वास नहीं। इसलिए हमें तत्काल चन्द्रगुप्त-सभा का अधिवेशन करके सन्देशवाहकों का एक शक्तिशाली प्रतिनिधि-मंडल उस ओर भेजना चाहिए। कौंडिन्य जागे और सवेरे महाराज से मिले, उसके पहले ही उत्सव के स्थगन की घोषणा हो जानी चाहिए। यदि विलम्ब हुआ तो महाराज की राजनीति—धर्मनीति—संकट में पड़ जायेगी। मुझे समाचार मिले हैं कि शातकर्णी

अश्वमेध-यज्ञ भी करना चाहता है। इसके लिए भी हमें कल सवेरे ही वहाँ पर विद्वान साधुओं का एक प्रतिनिधि-मंडल भेजना आवश्यक है। यह तो महाराज के धर्म पर ही आक्रमण किया जा रहा है। हमारा सारा किया-कराया धूल में मिल जायेगा—महाराज से इसी तरह की बात कहकर हम उन्हें मना लेंगे। और आगे की बात तो चन्द्रगुप्त-सभा देख ही लेगी।'

अब मित्रदेव की समझ में सब-कुछ आ गया। मगधपति से धर्म के नाम पर सब-कुछ करवाया जा सकता था। उसने अन्दर जाते हुए कहा—महा-बलाधिकृत, मैं अभी तैयार होकर आया। आपको अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी होगी। यह कौमुदी-महोत्सव स्वयं मुझे भी पसन्द नहीं है। इसमें तो महाराज की हत्या के अमंगल संकेत देख रहा हूँ। इसे बन्द करवा ही देना चाहिए। मैं अभी आया। हमें महाराज से अभी ही मिल लेना चाहिए और सूर्योदय के साथ ही महोत्सव के स्थगन की घोषणा हो जानी चाहिए।

और वह शीघ्रता से अन्दर चला गया।

२० : डिंडिमिका-घोष

दूसरे दिन प्रातःकाल के समय पाटलिपुत्र का नगर अभी निद्रा से जागा भी न था कि वायु में डिंडिमिका-घोष गूँज उठा। अर्द्धसुपुप्त-अर्द्धजाग्रत नगर चौंककर उठ बैठा। आज क्या बात है, इस विचार-मात्र से नगरजन स्तब्ध रह गये। कई घरों से बाहर निकल आये और साश्चर्य एक-दूसरे की ओर देखने लगे, मानो पूछ रहे हों कि कहो भाई, क्या बात है? घोषणा के बारे में भाँति-भाँति के अनुमान लगाये जाने लगे। किसी ने कहा कि यूनानी यवनों के आने का संकेत है, किसी ने कहा कि विदर्भ में भयंकर विद्रोह हो गया है, किसी ने कहा कि शातकर्णी के गजराज आ पहुँचे हैं, तो किसी को कलिंग के आक्रमण की आशंका हुई। राजमार्ग और वीथियों पर नगरजनों की भीड़ लगने लगी।

सभी के हृदय भाँति-भाँति की आशंकाओं से काँपने लगे। धर्मनीति का इतना जोर-शोर रहने पर भी मगध में कोई अपने-आपको सुरक्षित नहीं अनु-भव करता था, भय सबके मन में जड़ जमाकर बैठ चुका था। आज सवेरे-

सवेरे डिंडिमिका-घोष सुनते ही वह भय काले भुजंग की भाँति फन फैलाकर उठ बैठा। सभी यह जानते थे कि इन झूठे धर्मधुरीणों में कोई दम नहीं, पाटलिपुत्र को एक क्षण के लिए भी आक्रमणकारियों से ये नहीं बचा सकते। कुछ लोगों को इस घोषणा से एक प्रकार का आश्वासन भी मिल रहा था। इधर बहुत दिनों से राजा की ओर से डिंडिमिका-घोष नहीं हुआ था, इसलिए लोग यह समझ रहे थे कि अवश्य कोई नयी बात होनी चाहिए।

इतने में तो डिंडिमिका का डिंडिम-नाद फिर से हुआ और वायु में गूँजता हुआ घोषणा का स्वर सुनाई पड़ा :

'सुनें, सभी नगरजन सन्निपात भेरी सुनें। परमभट्टारक परममाहेश्वर मगधेश्वर महाराजाधिराज बृहद्रथदेव स्वयं चन्द्रगुप्त-सभा का अधिवेशन आयोजित करते हैं। सभी सदस्य, सभी कुलपति, सभी राजन्य, सभी अधिकृत-जन एवं सभी कर्मचारी सभा में उपस्थित हों। नगर में सैन्य-महोत्सव आयोजित हो रहा है। चन्द्रगुप्त-सभा में महाबलाधिकृत राजन्य पुष्यमित्र मगध की प्राचीन परम्परा के अनुसार नगर के रक्षणार्थ सैन्य-महोत्सव के निश्चित दिवस की घोषणा करेंगे। नगरपरिषद् नगर की रक्षा का दायित्व उन्हें प्रदान करेगी....सभी उपस्थित हों! नगर-नर-नारीजन सभी सुनें, सभी उपस्थित हों। अनुशासनिक, धन्विन, नागरिगण सभी निमंत्रित हैं, सभी उपस्थित हों, सभी सुनें! परमभट्टारक परममाहेश्वर मगधेश्वर महाराजाधिराज बृहद्रथदेव स्वयं चन्द्रगुप्त-सभा का अधिवेशन आयोजित करते हैं। देश-विदेश में पारस्परिक समझ स्थापित करने के लिए चन्द्रगुप्त-सभा सम्माननीय नागरिकों का एक प्रतिनिधि-मंडल भी भेजने का निश्चय करेगी। सर्वत्र धर्म-भावना प्रकट होनी चाहिए। नगरजन सब सुनें! सब इस धर्म-परिषद् में उपस्थित हों....डिम्.... डिम्....डिमिक...डिम्....'

इस प्रकार मगधपति की धर्म-परिषद् की बात इसमें थी, चन्द्रगुप्त-सभा की बात भी थी और नगर की सुरक्षा की बात भी थी। पुष्यमित्र और मित्रदेव ने इसी रूप में बृहद्रथ से घोषणा की अनुमति प्राप्त की थी।

इधर महामात्य कौंडिन्य ने सुना तो हाथ के तोते ही उड़ गये। एक क्षण तो वह स्तब्ध ही रह गया। पता नहीं, रात-भर में ऐसा क्या हो गया? उसने

उसी समय अपने प्रतिहारी को बुलाया, लेकिन प्रतिहारी भी उतना ही जानता था जितना वह स्वयं। तब कौंडिन्य को राजा बृहद्रथ के चंचल स्वभाव का ख्याल हो आया। उसे तो कोई भी व्यक्ति जब चाहे तब किसी भी बात के लिए राजी कर सकता था। निश्चय ही रात में किसी ने उलटी-सीधी पट्टी पढ़ाकर यह घोषणा करवाई है। उसने उसी समय शिविका मँगवाई और शीघ्रता से सुगंगप्रासाद की ओर चल दिया। महामात्य को इतने सवेरे, इस प्रकार, राजप्रासाद की ओर शीघ्रतापूर्वक जाते देखकर लोगों को बड़ा कुतूहल हुआ। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक अफवाह उड़ा दी कि आटविक आ पहुँचे हैं और अब केवल एक योजन के अन्तर पर रह गये हैं; जिसे भी अपना निष्क और हिरण्य लेकर भागना हो भाग जाये, श्रीमन्तों की खैर नहीं, सब-कुछ लूट लिया जायेगा; महामात्य भागा जा रहा है और महाराज बृहद्रथ भी भागने की तैयारी में हैं....

यह सुनना था कि सारे नगर में हलचल मच गई। लोगों को इस तरह घबड़ाते देख पुष्यमित्र को विश्वास हो गया कि राजा और उसके शासन पर किसी का विश्वास नहीं रह गया। सभी को अपने प्राणों की पड़ी हुई थी, और संकट को सामने देख सभी भागने को तैयार खड़े थे।

रात में पुष्यमित्र जब मित्रदेव के साथ राजा बृहद्रथ से मिलने गया तो उसने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि यदि चन्द्रगुप्त-सभा का अधिवेशन करके सैन्य-महोत्सव की घोषणा नहीं की गई तो किसी भी क्षण नगर में विद्रोह हो सकता है, क्योंकि नगर में पारस्परिक सन्देह और अविश्वास का वातावरण घना हो गया था। और यदि विप्लव हो ही गया तो यूनानी यवनों को यहाँ आते देर नहीं लगेगी; वही हमारे सबसे निकट हैं। शातकर्णी तो दूर हैं। कलिंगराज उससे भी दूर है। विदर्भ आटविकों से घिरा हुआ है। यूनानी यवन ही सबसे निकट हैं। यदि आप धर्म-महोत्सव में ही लगे रहे तो यह ऐतिहासिक नगर देखते-देखते यवनों के हाथ में चला जायेगा और मगध के राज्य का अन्त हो जायेगा। मगध को जीतने के लिए सारे देश को जीतना आज आवश्यक नहीं रहा। केन्द्रीय नगर और देश की राजधानी पाटलिपुत्र को जो पहले जीतेगा वही मगध-साम्राज्य का स्वामी बन जायेगा। इसलिए

महाराज, इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि चन्द्रगुप्त-सभा का अधिवेशन आयोजित किया जाये, पारस्परिक समझ प्रस्थापित करने के लिए धर्म-परिषद् बुलाई जाये और सम्माननीय नागरिकों तथा विद्वान भिक्षुओं के प्रतिनिधि-मंडल धर्मभाव के प्रचारार्थ देश-देशान्तरों में भेजे जायें। ये प्रतिनिधि-मंडल शातकर्णी के यहाँ, विदर्भ में और सर्वत्र भेजे जायें। कौमुदी-महोत्सव भी हम वहीं चलकर करें। ऐसा करने पर ही महाराज अशोक की भाँति धर्म-नीति को सर्वव्यापक और परिपुष्ट किया जा सकता है।

राजा बृहद्रथ की समझ में सारी बात तो नहीं आई; परन्तु एक बात उसने अवश्य समझी कि इस प्रकार धर्म-नीति के प्रचार का अवसर मिलता है और धार्मिकता का ढिंढोरा पीटा जा सकता है। इसलिए उसने पुष्यमित्र की बात को मान लिया और डिंडिमिका-घोष का आदेश प्रदान कर दिया। महामात्य कौंडिन्य तो उस समय वहाँ था नहीं, इसलिए उसे राजा के मत-परिवर्तन का कोई पता नहीं चल सका।

अब इस समय सवेरे डिंडिमिका-घोष सुनते ही वह सुगंगप्रासाद की ओर भागा जा रहा था। जब वहाँ पहुँचा तो उसने राजमहल का सारा वातावरण ही बदला हुआ पाया। कुछ ही घटिकाओं में कौमुदी-महोत्सव के राग-रंग का स्थान धर्म-सभा की चर्चाओं ने और वाद-विवाद ने ले लिया था। अभी सवेरा हो ही रहा था, परन्तु धर्म-सभा प्रारम्भ भी हो गई थी। राजा बृहद्रथ स्वयं धर्म-सभा में प्रमुख-पद पर था। नये-नये धार्मिक सूत्रों की रचना की जा रही थी। राजा को एक सर्वथा नयी बात सूझी थी। उसके पास काम्बोज के कई तोते थे। ये तोते आदमी की बोली का अनुकरण करने में बड़े ही दक्ष थे। यदि इन तोतों को भगवान् तथागत के सूत्र और शब्द रटवाकर दिशा-विदिशाओं में उड़ा दिया जाये अथवा प्रमुख नागरिकों एवं प्रदेशपतियों को उन्हें उपहार-स्वरूप दे दिया जाये तो सारे देश में धर्मसूत्र गूँजने लगेंगे। फिर तो घर-घर में 'रघुपति राघव राजाराम' की धुन की तरह बौद्ध सूत्रों की धुन गायी जानी लगेगी।

जब कौंडिन्य वहाँ पहुँचा तो ऐसा ही एक काम्बोजी तोता जोर-जोर से रटे जा रहा था—'वैर से वैर का शमन नहीं होता, वैर से वैर नष्ट नहीं

होता....' और दूसरे बहुत-से तोते पाठशाला के विद्यार्थियों की भाँति उसके शब्दों का अनुकरण कर रहे थे।

यों राजा का नाम तो था बृहद्रथ, परन्तु वास्तव में वह बृहद् अश्व ही था—अश्व भी ऐसा जो घोड़ा नहीं खच्चर होता है! बुद्धि उसमें बैल से भी कम, गधे के बराबर ही थी। इसी लिए तो इतनी जरा-सी बात उसकी समझ में नहीं आती थी कि जब चारों ओर हथियार बाँधे आक्रमणकारी खड़े हों और उनमें भी दुर्दान्त विदेशी यवन आक्रमणकारी हों तो इस प्रकार के शान्ति सूत्रों को रटने से देश और उसकी राजधानी को बचाया नहीं जा सकता। यूनानियों की बौद्ध धर्म के प्रति आस्था उनकी कूटनीति का ही एक रूप थी। उन्हें भारत के धर्म, संस्कृति और सभ्यता से कोई मतलब नहीं था; वे तो भारत पर राज्य करना चाहते थे और अपने इसी उद्देश्य की उपलब्धि के लिए उन्होंने लोगों के मन में भ्रम उत्पन्न करने के हेतु धर्म का बाना ओढ़ रखा था। परन्तु मूर्ख बृहद्रथ इस सत्य को देखकर भी नहीं देखना चाहता था। उसी के सिंहासन के नीचे आग जल रही थी और वह आँखें मूँदे धर्म-प्रचार और पारस्परिक समझ उत्पन्न करने की बातों में लीन था और सो भी तोतों के द्वारा!

कौंडिन्य भागा हुआ वहाँ आया। उसने संकेत से एक प्रतिहारी को अपने समीप बुलाया। संयोग से महाराज का रात्रिकालीन अंगरक्षक दौवारिक अग्रपाल ही उसके सामने आ गया।

कौंडिन्य ने डपटकर उससे पूछा—रात में यहाँ कौन आया था?

'रात में?' अग्रपाल ने हाथ जोड़कर कहा और वह सोच-विचार में पड़ गया। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या उत्तर दे। अब उसे याद आया कि महामात्य ने ताकीद कर रखी थी कि रात में कोई भी महाराज मगधपति से मिलने आये तो इसकी सूचना प्रतिहारी को भेजकर तत्काल महामात्य को दी जाये।

'हाँ देव!' उसने काँपते हुए कहा, 'सेनापति पुष्यमित्र और आन्तर्वंशिक मित्रदेव आये थे। आन्तर्वंशिक स्वयं ही थे, इसलिए मैंने सोचा कि उनके आने की बात आपको ज्ञात होगी।'

'होगी, तेरा सिर ! क्या तू मूर्ख है या धूर्त ?'

'न वह मूर्ख है न धूर्त....महामात्य....।' पीछे से किसी का दृढ़ स्वर सुनकर महामात्य चौंका । उसने शीघ्रता से मुड़कर पीछे देखा । बोलनेवाला और कोई नहीं स्वयं महाबलाधिकृत पुष्यमित्र था । उसके साथ कुमार वसुमित्र भी खड़ा था । कौंडिन्य को वातावरण में से उग्र संघर्ष की गन्ध आती प्रतीत हुई । उसने निश्चय किया कि वह यथासम्भव अपने मन को संयमित किये रहेगा, उग्र न होगा । और तब उसने कहा—महाबलाधिकृत, यदि हम एक-दूसरे का सम्मान नहीं करेंगे तो सारा वातावरण ही बदल जायेगा ।

'मुझे भी यही लगता है, महामात्य ! जब हम ही दौवारिक-जैसे उत्तरदायी अधिकारी को धूर्त या मूर्ख कहने लगें, तो मानना होगा कि वातावरण बदल गया है । क्या महामात्य इस तथ्य से अवगत नहीं कि अग्रमहिषी के बाद महाराज की सुरक्षा का भार दौवारिक पर ही होता है । और उसी को महामात्य मूर्ख या धूर्त कहें....'

'महाबलाधिकृत, इसके निराकरण के लिए हमें महाराज के ही समीप चलना चाहिए । उनके शब्द को तो आप इस सम्बन्ध में अन्तिम मानेंगे ?'

'महाराज के शब्द अपने शब्द होते ही कहाँ हैं महामात्य ? वह तो अधिकतर दूसरों के ही शब्दों की प्रतिध्वनि करते रहते हैं—कहीं सुने हुए, किसी के कहे हुए, बाहर से आये हुए, रटे हुए, बिना समझे हुए शब्दों की प्रतिध्वनि-मात्र ।'

'यह आप कह रहे हैं महाबलाधिकृत ?'

'मैं नहीं कह रहा महामात्य, यही वास्तविकता है । इसी लिए तो महाराज ने चन्द्रगुप्त-सभा का अधिवेशन आयोजित किया है । महाराज अपने मन की सच्ची बात हमसे कहेंगे और हम उनके मन की बात चन्द्रगुप्त-सभा के आगे कहेंगे । पाटलिपुत्र नगर तभी बच सकता है, नहीं तो मुझे तो भविष्य अन्धकारमय लगता है ।'

'कइयों को अँधेरा ही देखने की आदत होती है ।'

'लेकिन अँधेरे में देखने का स्वभाव तो किसी-किसी का ही होता है । मैं अँधेरे में भी देख लेता हूँ, आपको मात्र अन्धकार दिखता है ।'

उनके वार्त्तालाप का स्वर क्रमशः उच्चतर होता गया, जिसे सुनकर राजा बृहद्रथ स्वयं अपने स्थान से उठकर उनकी ओर चला आया। पुष्यमित्र ने राजा के साथ सुमित्र को भी देखा और एक क्षण के लिए उसके हृदय में गहन शोक व्याप्त हो गया। तभी राजा बृहद्रथ ने आगे बढ़कर अपने महामात्य के कन्धे पर हाथ रख दिया और बोला—क्या बात है महामात्य ? यह क्या हो रहा है ? पारस्परिक अविश्वास और नासमझी को दूरकर विश्वास और समझदारी उत्पन्न करना बड़ा कठिन कार्य है। परन्तु थकने से काम चलेगा नहीं, महाबलाधिकृत ! शातकर्णी अवन्ती का दावा करता है तो करे, यवन मध्यमिका की ओर बढ़ते हैं तो बढ़ें; अन्त में विजय पारस्परिक समझ की ही होगी। इसी के लिए तो हम नागरिकों का प्रतिनिधि-मंडल भेजने जा रहे हैं; इसी लिए हमने चन्द्रगुप्त-सभा का अधिवेशन आयोजित किया है। युद्ध-घोषणा नहीं, हम धर्म-घोषणा ही करना चाहते हैं।

'महाराज का कथन यथार्थ है !' कौंडिन्य ने नाटकीय विनम्रता से दोनों हाथ जोड़कर कहा, 'अन्त में विजय तो धर्म की ही होगी। परन्तु क्या महाराज ऐसा नहीं सोचते कि सैन्य-महोत्सव की घोषणा करके हम धर्म के साथ द्रोह कर रहे हैं ! उससे तो देश-देशान्तरों में हमारी अपकीर्ति ही होगी। एक ओर हम पारस्परिक समझ की बात करते हैं, दूसरी ओर सैन्य-महोत्सव आयोजित करते हैं ! लोग इससे क्या समझेंगे ? फिर हम नगर की रक्षा के लिए सेना संगठित करने की बात भी करने जा रहे हैं ! मेरा तो यही निवेदन है महाराज, कि हमें इस घोषणा को अविलम्ब लौटा लेना चाहिए।'

'तो लौटा लो। लौटाने में बुराई ही क्या है।' मगधराज ने कहा, 'घोषणाएँ तो की भी जाती हैं, लौटाई भी जाती हैं। अन्ततः यह सब तो लोगों को समझाने के लिए ही है न ? तो लौटा ही लो इस घोषणा को।'

कौंडिन्य के मन की कली-कली खिल गई। उधर पुष्यमित्र का चेहरा मारे क्रोध के काला पड़ गया। उसके अंग-उपांग काँपने लगे। उसने वसुमित्र को देखने के लिए पीछे की ओर दृष्टि डाली। वसु वहीं, उसके पीछे ही, खड़ा था।

क्रोध से काँपते हुए स्वर में पुष्यमित्र ने शीघ्रतापूर्वक कहा—महाराज, अब इस घोषणा को लौटा नहीं सकते।

'तो कोई बात नहीं, महाबलाधिकृत ! घोषणा हो गई है तो रहे, उसे लौटाया न जाये। परन्तु हम अभी सैन्य-महोत्सव न करें। कौमुदी-महोत्सव भी न करें। हम कुछ भी नहीं करें।'

जिस व्यक्ति की चंचलता का पार न हो उससे कैसे बात की जाये, उसे कैसे समझाया जाये, यह एक क्षण पुष्यमित्र निर्णय नहीं कर पाया। फिर उसने किंचित् उग्रता और प्रचुर उत्तेजना से कहा—महाराज, चन्द्रगुप्त-सभा का अधिवेशन आयोजित होकर रहेगा और नगर की रक्षा का भार मुझे ग्रहण करना ही होगा।

'महाबलाधिकृत, आप मर्यादा का व्यतिक्रम कर रहे हैं। आप इस प्रकार महाराज को आदेश नहीं दे सकते।'

'नहीं महामात्य, यह आदेश नहीं, पारम्परिक समझ ही है।' राजा बृहद्रथ ने कहा। सुनकर पुष्यमित्र और कौंडिन्य चकित रह गये।

तभी बाहर की ओर से एक उच्च स्वर सुनाई दिया :

'विदर्भ के यज्ञसेन ने मगध की राजधुरा को उठाकर फेंक दिया है। मगधपति, आप कब तक सुख-स्वप्नों में लीन सोये पड़े रहेंगे ?'

पुष्यमित्र ने बोलनेवाले का स्वर पहचाना और चौंक पड़ा।

उसने मुड़कर देखा तो महामुनि पतंजलि स्वयं वहाँ खड़े थे और उनके पीछे वह भिखारी-जैसा ब्राह्मण भी खड़ा था।

२१ : महामुनि पतंजलि का स्वप्न

'मगधराज ! आप इस प्रकार कब तक शासन करते रह सकेंगे ?' महामुनि पतंजलि का स्वर गम्भीर चेतावनी से भरा हुआ था। उन्होंने कहा, 'मैं विदर्भ से आया ही इसलिए हूँ। प्रतिष्ठानपुर का शातकर्णी आपकी दुर्बलता से अवगत है। कलिंगराज भी आपकी दुर्बलता के बारे में जानता है। विदर्भ का प्रदेशपति यज्ञसेन भी जानता है। उसे तो आपके ही घर से यह निमंत्रण गया है कि वह यहाँ आकर सत्ता पर अधिकार कर ले। आपको कुछ पता भी है ? यह ब्राह्मण यही सम्वाद लाया है। भारतवर्ष के विलुप्त प्राचीन गौरव को पुनर्जीवित करना मेरे जीवन का एकमात्र स्वप्न है। अपने उसी स्वप्न को

चरितार्थ करने के लिए मैं यहाँ आया हूँ, मुझे आना पड़ा है। मैं यह कहने के लिए बाध्य हूँ, मगधपति, कि आप जिस पर आचरण कर रहे हैं वह धर्म नहीं। आप मोहाविष्ट हैं, भ्रान्ति में पड़े हुए हैं। क्या यह सुगंगप्रासाद आज भी वैसा ही रह गया है जैसा महाराज अशोक के समय में था, जिसकी कीर्ति देश-देशान्तरों में व्याप्त थी, जिसे देखने के लिए पृथ्वी के कोने-कोने से दर्शक आते थे? आज तो इस प्रासाद में विदेशी यवनों के आक्रमण की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगी है। आप संलग्न हैं धर्म-उत्सव में, लेकिन तोता-रटन्तवाले ये धर्म-उत्सव कब तक? महाराज, मगध के ऊपर विनाश के काले बादल मँडरा रहे हैं। महामात्य कौंडिन्य, इस प्रकार देश कब तक जी सकेगा? आप महामंत्री हैं। देश को नवजीवन प्रदान करने का दायित्व आप पर है।'

'विप्रवर!' कौंडिन्य ने किंचित् कठोर स्वर में कहा, 'भगवान् तथागत ने ब्राह्मणों का मूल्य एक कौड़ी के बराबर भी नहीं रहने दिया। सर्वथा उचित ही किया उन्होंने। भगवान इस विश्व में शान्ति और अहिंसा का प्रचार करना चाहते थे और ब्राह्मण लोग यज्ञों के नाम पर निर्दोष जीवों की हत्या कर रहे थे। जो पशुओं की हत्या करते हैं वही मनुष्यों को युद्ध में प्रवृत्त करते हैं। युद्ध तो रक्त-रंजित होता ही है। युद्ध के नाम के साथ सुन्दर-सुन्दर विशेषण लगा देने से भी वह सुन्दर और निर्दोष नहीं हो सकता। विप्रवर्य, हम युद्ध नहीं करना चाहते। हम तो पारस्परिक समझ के हामी हैं। विदर्भ में भी समझा-बुझाकर....'

'हाँ कौंडिन्य! हम भी यही कहना चाहते हैं। समझ, पारस्परिक समझ....' मगधपति ने अपना मुँहबोला शब्द सुना तो उत्साहपूर्वक बोल उठा, 'हमें पारस्परिक समझ ही तो प्रस्थापित करना है। मुनिवर्य, हम भगवान् तथागत की धर्म-घोषणाओं को विश्वव्यापिनी बनाना चाहते हैं। हम महाराज अशोक के महान् स्वप्न को चरितार्थ करना चाहते हैं। हम यूनानी यवनों को भी जीतना चाहते हैं, परन्तु प्रेम से, अहिंसा से, पारस्परिक समझ के द्वारा।'

'लेकिन मगधपति, आपको यह भी तो सोचना चाहिए कि इस सृष्टि में ऐसे भी असुर हैं जिन्हें किसी भी प्रकार समझाया नहीं जा सकता। उनका तो शमन और दमन ही करना होता है। रावण को मारने के लिए भगवान् राम-

चन्द्र को भी युद्ध करना पड़ा था। आप नहीं चाहते, परन्तु फिर भी आपको युद्ध करना होगा, तनिक इस पर भी तो विचार कीजिए।'

'लेकिन मुनिवर्य, यह सब तो आप पुरातन-काल की बातें कह रहे हैं। अब तो समय बदल गया। यह युग धर्म-प्रेरणाओं, धर्म-सभाओं, धर्म-यात्राओं, धर्म-मंत्रणाओं, धर्म-चर्चाओं, धर्म-विवादों एवं धार्मिक समझ का युग है। हमें यही करना होगा। हम पारस्परिक समझ स्थापित करना चाहते हैं। युद्ध हम नहीं करना चाहते, कर सकते ही नहीं और करेंगे भी नहीं।'

'लेकिन दूसरे युद्ध चाहेंगे और करेंगे, उस समय आप क्या करेंगे ? क्या उस समय पाटलिपुत्र को पद-दलित हो जाने देंगे ? मगध का सार्वनाश हो जाने देंगे ? निर्दोषों का संहार होने देंगे ? बाल, वृद्ध और वनिताओं का वध होने रहने देंगे ? क्या लक्ष्मी को लुट जाने देंगे ? लक्ष्मी तो शक्ति है मगधराज ! लक्ष्मी में देश की सम्पन्नता का निवास है। क्या आप उसको लुट जाने देंगे ? जब दस्यु लुटेरे देश की भाग्य-लक्ष्मी का अपहरण करने आयेंगे तब आप क्या करेंगे ? धर्म-सूत्रों के पाठ के द्वारा, पीत चीवरधारी भिक्षुओं को उनके सामने भेजकर रोक सकेंगे ? बताइए मगधपति, उस समय आप क्या करेंगे ?'

'कौंडिन्य !' मगधपति ने अपने महामात्य से कहा, 'कौंडिन्य, तुम जरा इन ब्राह्मण देवता को वह कथा तो सुनाओ जिसमें अपने-आपको होमकर शत्रु को जीतने का दृष्टान्त दिया गया है। उस कथा को अच्छी तरह समझने की आवश्यकता है। समझने की ही नहीं, जीवन में आचरण करने की भी आवश्यकता है। नहीं तो यह ब्राह्मण इस देश का और धर्म का नाश कर देंगे। मुनिजी, आपको यह बात अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि मैं देश का नाश होने दे सकता हूँ, परन्तु धर्म का कदापि नहीं। धर्म ही सर्वस्व है, सर्वोच्च और सर्वोपरि है।'

'ब्राह्मण देवता !' कौंडिन्य ने अपने स्वर को तीक्ष्ण और कठोर करते हुए कहा, 'तुम्हें यह शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं कि विदर्भ को किस प्रकार वश में किया जाये। महाराज मगधपति अपने कर्त्तव्य को भली-भाँति जानते हैं। उन्हें किसी के उपदेश की आवश्यकता नहीं। अपनी शिक्षा अपने ही

पास रखो। अपनी ऊटपटाँग बातों से तुमने उस लड़के के मस्तिष्क को विभ्रमित कर दिया है। कहाँ गया वह लड़का ? वह वसुमित्र ? अरे, अभी तो यहीं खड़ा था ! महाबलाधिकृत, कहाँ है तुम्हारा वसुमित्र ? जानते हैं आजकल वह कैसी-कैसी बातें करने लगा है ? तुम्हारे इन ब्राह्मण उपदेशक की बातें सुन-सुनकर अश्वमेध-जैसे भयंकर शब्दों का उच्चारण ही नहीं, उस यज्ञ को यहाँ सम्पन्न करने तक की बातें करने लगा है। शान्तम् पापं ! अश्वमेध-यज्ञ और यहाँ ? महाराज मगधपति यहाँ अश्वमेध की बात कभी होने ही नहीं दे सकते। लेकिन वह वसुमित्र गया कहाँ ?'

कौंडिन्य ने चारों ओर देखा, लेकिन वसुमित्र वहाँ नहीं था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। अभी तो यहीं खड़ा था, पता नहीं इतनी देर में कहाँ चला गया ? जब वसुमित्र दिखाई न दिया तो उसने पुनः पतंजलि से कहना प्रारम्भ किया—मुनिवर्य, मगध सदा से विद्वानों का आदर करता आया है। मगध की यही परम्परा है। आप भी विद्वान हैं। आपका आदर करना महाराज के लिए उचित ही है। महाराज तो अनेक साधु-विद्वानों का सम्मान करते हैं। धर्म महाराज का प्राण है। लेकिन धर्म की निन्दा करनेवाला, धर्म का विरोध करनेवाला महाराज के मन विद्वान नहीं रह जाता, फिर वह कितना ही विद्वान क्यों न हो।

'तो मैं आपको यह बता दूँ, महामात्य कौंडिन्य, कि मैं यहाँ विद्वान के रूप में नहीं आया हूँ, ब्राह्मण बनकर नहीं आया हूँ, शब्दशास्त्री के रूप में भी नहीं। मैं तो आया हूँ भगवान् कौटिल्य की परम्परा और प्रणाली को पुनः स्थापित करने के लिए। मैं पाटलिपुत्र का विनम्र नागरिक हूँ। नगर का प्रेम ही मुझे यहाँ खींच लाया है। तुम या महाराज या कोई भी पाटलिपुत्र का नाश नहीं कर सकते। पाटलिपुत्र विनष्ट हुआ तो भारतवर्ष का ही नाश हो जायेगा।'

'परन्तु आपको बुलाया किसने ?'

यह सुनते ही महामुनि पतंजलि तनकर सीधे खड़े हो गये। उनकी ग्रीवा सीधी और मस्तक उन्नत हो गया। आर-पार देखनेवाली एक तीक्ष्ण दृष्टि से कौंडिन्य को आपाद-मस्तक विद्ध करते हुए उन्होंने मेघ की गरज-जैसे घन,

गहन स्वर में कहा—अमात्य, कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हें मनुष्य नहीं, काल स्वयं बुलाकर लाता है—काल भी नहीं, महाकाल! समझ लो कि मुझे भी महाकाल ही का निमंत्रण मिला है। वनराज केशरी की गुहा में जब सियार घुस जाता है तो उसे निकाल बाहर करने के लिए किसी को तो आगे आना ही होगा। मगध के मंत्रिपद पर भगवान् कौटिल्य-जैसे किसी व्यक्ति का अधिकार है। देश की महानता और गौरव का जिन्हें कोई ध्यान नहीं वे सभी तिनकों के समान हैं, फिर वह राजा हो, महामंत्री हो, सेनापति हो, साधु हो, या कोई भी क्यों न हो। जिनके हृदय में इस देश की भव्यता का, गौरव का, परम्पराओं का—समस्त मानव-जाति के लिए स्थापित महान् परम्पराओं का लेश-मात्र भी विचार नहीं, उन्हें इस देश पर राज्य करने का कोई अधिकार नहीं। तुम देश के गौरव और परम्परा को रंचमात्र भी नहीं समझते। तुम एक महान् पुरुष का केवल अन्धानुकरण करते हो, उसके शब्दों को बिना समझे बूझे रटते रहते हो। जब-जब इतिहास में ऐसा होता है तो महाकाल अपना तीसरा नेत्र खोलकर रुद्र हुँकार के साथ जाग उठता है। भगवान् तथागत के काल में एक बार इसी प्रकार महाकाल जागा था। आज वह पुनः जाग उठा है। इस मगध में एक परम्परा चली आती है। परम्परा यह है कि परिषद् को ही सर्वोपरि समझा जाये। राजा नहीं, महामंत्री नहीं, महासेनापति भी नहीं, परिषद् को ही सर्वोच्च और सर्वसत्ताधीश माना जाये। परिषद् की आज्ञा महाराजाधिराज के लिए भी अनुल्लंघनीय हो। आज की परिस्थिति में परिषद् जो उचित समझेगी वैसी ही आज्ञा प्रदान करेगी। हमारे लिए उचित है कि हम चन्द्रगुप्त-सभा का गौरव पुनः स्थापित करें। आज की अव्यवस्था को रोकने का एक यही मार्ग हो सकता है।

'परिषद् को तो हम भी सर्वोच्च और सर्वोपरि मानते हैं। परन्तु महाराज मगधपति के लिए धर्म ही सर्वस्व है। यदि परिषद् ने धर्म के विरुद्ध कुछ कहा तो महाराज उसे सहन नहीं करेंगे। परिषद् भले ही समाप्त हो जाये, धर्म समाप्त नहीं होना चाहिए। धर्म का रहना अनिवार्य है।'

'परन्तु आपका यह धर्म है क्या महामंत्री?'

'जैसा कि अभी महाराज ने आपसे कहा, यहाँ धर्म-सभाएँ हों, धर्म-यात्राएँ

हो, धर्म-परिषद् हो, युद्ध न हो: युद्ध की बात तक न हो। युद्ध की परम्परा अब समाप्त हुई। विदर्भ को हम समझा लेंगे। यूनानी यवनों को भी हम समझा लेंगे। आप किसी बात की चिन्ता न करें। निश्चिन्त हो जायें।'

महामुनि पतंजलि समझ गये कि कौंडिन्य उन्हें वाद-विवाद में उलझाये रखकर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय चाहता है। उन्होंने पुष्यमित्र की ओर देखा। उनकी वह दृष्टि आदेशपूर्ण थी। वह दृष्टि कह रही थी कि पुष्यमित्र, समय गँवाना उचित नहीं, जो करना है अभी और अविलम्ब करो। पुष्यमित्र महामुनि की दृष्टि देखते ही उनके अभिप्राय को समझ गया। वह क्षिप्रता से महामात्य कौंडिन्य के सामने आ खड़ा हुआ। उसके मुख पर दृढ़ता और आँखों में वज्र संकल्प था। पुष्यमित्र का यह परिवर्तित रूप देखकर मित्रदेव को मगधपति की रक्षा की चिन्ता हो आई, जो स्वाभाविक ही थी। पुष्यमित्र ने उसकी सतर्कता को लक्ष्य किया; इसलिए उसने इधर-उधर देखने की अपेक्षा कौंडिन्य पर ही अपनी दृष्टि स्थिर करते हुए कहा—महामात्य, भारतवर्ष की परम्परा के अनुसार कुशासन के लिए मगधपति नहीं, मगध का महामात्य उत्तरदायी होता है....

'शासन, कुशासन, सुशासन, अशासन या अतिशासन जो भी समझो, महाबलाधिकृत, उस सब का उत्तरदायित्व मुझ पर है, कौंडिन्य पर नहीं। पारस्परिक समझ मैं स्थापित करना चाहता हूँ, वह नहीं। और अपने इस मार्ग से मैं एक पद भी पीछे हटने को प्रस्तुत नहीं, जब तक इस देह में प्राण है तब तक तो नहीं। यहाँ कोई युद्ध को घोषणा नहीं कर सकता, परिषद् भी नहीं, तुम भी नहीं, और मगध का महामात्य कौंडिन्य भी नहीं; विद्वानों में श्रेष्ठ ये ब्राह्मण-देवता भी नहीं। युद्ध का नाद सदा के लिए यहाँ मृत हो गया, अब वह जीवित नहीं हो सकता। यज्ञ भी मर गये हैं, उन्हें पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। अश्वमेध-यज्ञ तो यहाँ कोई भी नहीं कर सकता।'

'महाराज!' महाबलाधिकृत पुष्यमित्र ने उच्च स्वर में दृढ़तापूर्वक कहा, 'महाराज, आप तो स्वप्नाविष्ट हैं। नींद में पड़े हुए हैं। तन्द्रा में पड़े हुए व्यक्ति-जैसी स्थिति है आपकी। युद्ध का नाद मरा नहीं है। युद्ध जीवित हो रहा है। हो ही गया है। मगध में पुनः चक्रवर्ती साम्राज्य उद्भवित होगा।

अश्वमेध-यज्ञ भारत में फिर से होगा, अवश्य होगा।'

'किसके कहने से ?' मगधपति ने उत्तेजित होकर पूछा।

'चन्द्रगुप्त-सभा के कहने से। मेरे कहने से नहीं और न आपके कहने से।' सेनापति ने उत्तर दिया।

'परन्तु चन्द्रगुप्त-सभा कौन होती है ? महाराज से बड़ा और महान् कोई हो भी सकता है ?' कौंडिन्य के स्वर में मानो अग्नि की लपट थी।

'हाँ, चन्द्रगुप्त-सभा कौन होती है ?' मगधपति ने भी महामात्य के स्वर में स्वर मिलाकर पूछा।

'पुष्यमित्र !' कौंडिन्य ने कहा, 'आज से यहाँ चन्द्रगुप्त-सभा भी नहीं रहती; रहती है केवल धर्म-सभा। उसी का शब्द मगध में सर्वोपरि है और रहेगा।'

'महामात्य ! अभी अवसर है।' पुष्यमित्र ने कहा, 'अभी समय है। संघर्ष को अभी भी टाला जा सकता है। अभी भी तुम अपने बहुरूपियेपन को छोड़ सकते हो। तुम चाहो तो अब भी भगवान् कौटिल्य की नीति का अनुसरण कर सकते हो। महामात्य राधागुप्त की भाँति चाहो तो महाराज को उनकी भ्रान्ति से जाग्रत कर सकते हो। महाराज भले ही धर्म-यात्राएँ करें, धर्म-घोषणाएँ करें, धर्म-सभाएँ भी करें; परन्तु यह महाराज की व्यक्तिगत बात होनी चाहिए। इस काम के लिए आप, जैसा कि महामात्य राधागुप्त ने महाराज अशोक से कहा था, राजकोष से एक भी दम्म व्यय नहीं कर सकते। महाराज अपने व्यक्तिगत धर्म का पालन, स्थापना और प्रचार इस भाँति तो कदापि नहीं कर सकते कि न देश रहे और न देश का धर्म ही रहे। देश धर्म से महान् है। देश के बिना धर्म रह नहीं सकता। यदि देश ही नहीं रहा, केवल अन्धाधुन्धी रही तो धर्म कहाँ रहेगा ? महाराज का मार्ग सही नहीं है। शासन धर्म से अलिप्त और निरपेक्ष होता है। फिर राजा का कोई एक धर्म तो होता नहीं, राजा के अगणित और अनन्त धर्म हैं ! और महामात्य के रूप में यह देखना आपका कर्त्तव्य है कि राजा उन सभी का पालन करे।'

'धर्म के लिए हम सर्वस्व का बलिदान करने के लिए सदैव प्रस्तुत हैं।' कौंडिन्य ने कहा।

'हाँ, हम सर्वस्व का बलिदान करने को तैयार हैं।' मगधपति ने भी

कौंडिन्य के स्वर-में स्वर मिलाकर कहा, मानो अपने मंत्री की बात को दुह-राना ही उसका बल और उसका धर्म हो।

पुष्यमित्र विवाद को लम्बाना नहीं चाहता था। वह डर रहा था कि कहीं विवाद के आवेश में उससे कोई अनुचित अथवा अचिन्त्य कार्य न हो जाये। इसलिए उसने सारे विवाद को एक ही विन्दु पर केन्द्रित करते हुए कहा—महाराज, आप भ्रम में हैं। आप केवल महामात्य के शब्दों को दुहरा रहे हैं। आप सोते ही रह जायेंगे और विदर्भ का यज्ञसेन आकर आपको बन्दी बना लेगा अथवा यूनानी यवन आकर आपके महल को लूट ले जायेंगे। आपको पता ही नहीं है कि आपके चारो ओर कैसा जाल बिछ गया है। यह ब्राह्मण यही समाचार लेकर आया है।

पुष्यमित्र ने यह बात इस उद्देश्य से कही थी कि मगधपति सुनते ही चौंकेगा और छान-बीन के लिए प्रवृत्त होगा। परन्तु वह बृहद्रथ तो निरा बृहद् अश्व था। पुष्यमित्र की बात सुनकर वह उच्च स्वर में खिलखिलाकर हँस पड़ा और जोर से बोला—अरे पुष्यमित्र, हम सभी सन्देह और आशंका के शिशु हैं। इसी से तो लोग मारे जाते हैं। पारस्परिक अविश्वास ही सभी अनिष्टों का मूल कारण है, इसलिए समभ स्थापित करो।

'महाराज ने यथार्थ ही कहा। मैं भी यही कहता हूँ।' कौंडिन्य बोला।

'सन्देह और पारस्परिक अविश्वास से ही तो संघर्ष होता है। युद्ध इसी से तो उत्पन्न होता है।'

'महामात्य!' पुष्यमित्र ने इस बार स्पष्ट शब्दों में कहा, 'तुमने विदर्भ-राज को यहाँ बुलाया है। मैं इस बात को जानता हूँ। इसमें सन्देह का लेश भी नहीं। मुझे सेना को तैयार करना है। मैं युद्ध करना चाहता हूँ। मेरे रहते विदर्भराज यहाँ आ नहीं सकता। मैं उसे मगध की सीमा के बाहर ही रोकना चाहता हूँ। सेनापति के रूप में मेरा यही धर्म है। यही मेरा कर्त्तव्य है। नगर की रक्षा का भार मेरे ऊपर है।'

'यह तो निरा अहंकार है पुष्यमित्र! कोई किसी की रक्षा नहीं करता। रक्षक तो केवल धर्म ही है, वही रक्षा करता है।' मगधपति अब भी धर्म की ही बातें हाँके जा रहा था।

'लेकिन आपके महामात्य ने अपने बहनोई विदर्भराज यज्ञसेन को सेना लेकर यहाँ आने का निमंत्रण दिया है, यह आप जानते हैं या नहीं ? एक ओर से वह आ रहा है, दूसरी ओर से यवन आने की तैयारियाँ कर रहे हैं। अब तो जागिए महाराज ! मेरे इस कथन में किसी प्रकार का सन्देह, अविश्वास या भ्रान्ति नहीं है। मैं जो कह रहा हूँ वही वास्तविकता है।'

'क्यों कौंडिन्य, क्या सच ही तुमने उसे बुलाया है ?'

'बुलाया भी है महाराज, तो केवल समझाने के लिए।'

'हाँ, यह तो उचित ही है।'

'लेकिन कौन कहता है कि समझाने के लिए बुलाया है ?'

'मैं कहता हूँ। उसे समझाने के लिए ही बुलाया है।'

'परन्तु कहनेवाले तो कुछ और ही कहते हैं।'

'वे कहनेवाले सब अविश्वास से भरे और नासमझ हैं।'

'कहनेवाला कोई भी नासमझ नहीं। तुमने ही नाटक रचा है। धर्म की रामनामी तुमने ही ओढ़ रखी है। केवल कहने के लिए तुम को युद्ध नहीं चाहिए, पर यथार्थ में तुम निर्दोष प्रजा के रक्त से अपने हाथ रँगना चाहते हो। अहिंसा की ओट में तुम जघन्य क्रूर कर्म करने को उद्यत हो। तुम्हारा विश्वास युद्ध में नहीं हत्या में है। युद्ध तो आर्य को चाहिए; अनार्य तो हत्या ही चाहता है। मैं कहता हूँ कि तुमने विदर्भराज को बुलाया है। बताओ किस लिए बुलाया है ?'

'युद्ध करने के लिए नहीं, समझाने के ही लिए बुलाया है। युद्ध तो यहाँ अब हो ही नहीं सकता। यह भूमि तो धर्म-भूमि है। लेकिन आप बार-बार विदर्भराज यज्ञसेन का नाम क्यों ले रहे हैं ? क्या आपके पास और कुछ कहने के लिए है ही नहीं ?'

पुष्यमित्र उत्तर देने के बदले उस विशाल प्रकोष्ठ के एक कोने पर जा पहुँचा। वहीं नीचे के तलघर का द्वार था। कौंडिन्य इस बात को जानता था। स्वयं उसने वहाँ अपने कई विरोधियों और राजकर्मचारियों को मूँदा था। पुष्यमित्र को वहाँ जाते देख वह घबरा उठा।

वहाँ पहुँचकर पुष्यमित्र ने जोर से पुकारा—वसुमित्र !

कौडिन्य चौंक पड़ा। मित्रदेव सतर्क हो गया। ठीक उसी समय सशस्त्र सैनिकों ने सुगंगप्रासाद को चारों ओर से घेर लिया। कौडिन्य अवाक् बना देखता रहा।

'वसुमित्र!' पुष्यमित्र ने पुनः उच्च स्वर में पुकारा और उसके स्वर की प्रतिध्वनि सारे राजमहल में गूँज गई। दूसरे ही क्षण वसुमित्र तलघर के अन्दर से बाहर आता दिखाई दिया। उसके पीछे-पीछे भद्रघोष चला आ रहा था। उसके दोनों हाथ बँधे हुए थे। सैनिक शस्त्र लिये उसके पीछे चले आ रहे थे।

यह देखते ही कौडिन्य का चेहरा रुई की तरह सफेद हो गया। जो भद्रघोष सहसा अदृश्य हो गया था वह इस समय इस रूप में दिखाई देगा, इसकी तो उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। परन्तु वह ऊपर से साहस का दिखावा करता रहा और उसने कहा—यह सब पारस्परिक समझ का अभाव ही है महाबलाधिकृत! हम अविश्वासों की सन्तान....

परन्तु पुष्यमित्र ने उसकी इस बकवास का कोई उत्तर नहीं दिया। इस बीच वसुमित्र बहुत निकट आ पहुँचा था। अब कौडिन्य के प्राण नहों में समाने लगे। उसने यज्ञसेन को एक गुप्त पत्र लिखकर पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने के लिए प्रस्तुत रहने को कहा था। उसने लिखा था कि जैसे ही मगधपति की हत्या के संवाद मिलें, दौड़ चले आना और पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लेना; यहाँ कोई तुम्हारा प्रतिरोध नहीं करेगा। वह पत्र उसने भद्रघोष को दिया था और अब डर रहा था कि कहीं इस समय चूहे के बिल में से साँप के निकल आने की तरह वह पत्र भद्रघोष के पास न निकल आये। इसलिए उसने घबराये हुए स्वर में हकलाते हुए कहा—पुष्यमित्र, हम यहाँ जो कर रहे हैं उस पर कइयों की दृष्टि लगी हुई है। यूनानी यवन, कलिंग, आन्ध्र, विदर्भ सभी स्थानों के गुप्तचर टोह में रहते हैं। युद्ध यदि टालना ही है तो वह इस तरह नहीं....

'महामात्य, हम युद्ध टालना नहीं चाहते। हम तो यह चाहते हैं कि कोई हमारे देश पर सहसा आक्रमण करके यहाँ की प्रजा को भेड़-बकरी की तरह काट न डाले। युद्ध तो होगा ही। और यदि आततायी चढ़ ही आये तब तो युद्ध कदापि रुक नहीं सकता। मेरे रहते किसी की मजाल नहीं कि पाटलिपुत्र

को पददलित करे....वसु ! भद्रघोष को आगे करो । महाराज मगधपति स्वयं उसका न्याय करेंगे । लेकिन यहाँ नहीं, कल चन्द्रगुप्त-सभा में ।'

भद्रघोष समाने लाया गया । कारावास ने उसे दुर्बल, अशक्त और क्षीण कर दिया था । उसके बँधे हुए हाथों में एक पत्र था । कौंडिन्य ने उस पत्र को पहचाना । यह वही गुप्त पत्र था जो उसने यज्ञसेन के नाम लिखा था ।

'महाराज, यह वही सन्देश है, मैं कहूँगा कि निमंत्रण है, जो आपके परम-प्रिय मंत्री ने अपने बहनोई को भेजा था । मेरा निवेदन है कि महाराज इसे पढ़ लें और तब निर्णय करें । महामात्य का न्याय करें, चन्द्रगुप्त-सभा में इस पर आपके द्वारा न्याय किया जाये ।'

परन्तु यह सुनकर भी बृहद्रथ ने जो कहा उससे पुष्यमित्र को विश्वास हो गया कि इस मूर्ख राजा को आत्मघात के सर्वनाशी मार्ग से हटाया नहीं जा सकता । बृहद्रथ ने उस सन्देश की ओर एक सरसरी दृष्टि डालकर कहा—पुष्यमित्र, धर्मनीति तो यह कहती है कि जो कृपाण लेकर तुम्हारा वध करने आये तुम उसके हाथ में दूसरी कृपाण दे दो । वह कब तक मारता रहेगा और कितनों को मारेगा ! अन्त में स्वयं थक जायेगा । हमारे मगध में मनुष्यों की कमी तो है नहीं । सबको तो कोई मार नहीं सकता । हिंसा कभी शाश्वत नहीं हो सकती । शाश्वत तो अहिंसा ही है । भद्रघोष के इस कागज को मैंने देख लिया है; छोड़ो इसको । इस पर जितना ही ध्यान देंगे उतना ही पारस्परिक अविश्वास बढ़ेगा, और हम ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहते जिससे अविश्वास और सन्देह बढ़े। हम तो पारस्परिक समझ ही स्थापित करना चाहते है ।

'महाराज !' पुष्यमित्र ने कठोर, आदेशात्मक स्वर में डपटकर कहा, 'कल आपको चन्द्रगुप्त-सभा में उपस्थित होना है । यह बात आप वहीं कहे ।'

'हाँ, यह तो तुमने सच कहा । अविश्वासों का अन्त और पारस्परिक समझ की स्थापना....'

'देखो मित्रदेव !' पुष्यमित्र ने मित्रदेव की ओर मुड़कर कहा, 'महाराज की रक्षा का भार तुम पर है । नगर की रक्षा का भार मुझ पर है । कौंडिन्य को इसी समय बन्दीगृह में डाल दो । वसुमित्र, इसे भूगर्भ-द्वार के पास ले जाओ और अन्दर ढकेलकर बाहर से कपाट बन्द कर दो ।'

....' मगधपति ने भी अपने मंत्री के स्वर-में-स्वर मिलाया और फिर मूर्ख की भाँति खिलखिलाकर हँस पड़ा। बड़ी ही निरर्थक और खोखली थी उसकी वह हँसी!

कई लोगों की हँसी ऐसी ही खोखली, निरर्थक और मूर्खतापूर्ण होती है। वे मरते समय भी इसी तरह हा-हाकर हँसते रहते हैं। वे सन्त नहीं होते। होते हैं वज्रमूर्ख। जीवन में उनके लिए कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं होता। जीवन को वह परिहास अथवा दम्भ समझते हैं। कोई महत्त्वपूर्ण काम वे अपने जीवन में कर ही नहीं सकते। समय-असमय हा-हाकर हँसते रहते हैं। मगध-पति भी इसी तरह हँस रहा था। उस मूर्ख को हँसता हुआ छोड़कर ही सब वहाँ से चले गये।

२२ : चन्द्रगुप्त-सभा

चन्द्रगुप्त-सभा का नाम और गौरव तो प्रायः समाप्त ही हो चुका था। इधर कई वर्षों से उसका कोई अधिवेशन नहीं हुआ था। इसलिए जब उसके अधि-वेशन की घोषणा हुई तो लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस प्राचीन परम्परा के पुनः प्रारम्भ किये जाने की बात से कई लोगों के हृदय प्रफुल्लित हो उठे। वे सोचने लगे कि समय सचमुच ही बदल गया है, अवश्य कोई चमत्कार हुआ है, और शासन-कार्य में हमारा भी हाथ है।

निर्धारित समय और स्थान पर, चन्द्रगुप्त-सभा के अधिवेशन में सम्मि-लित होने के लिए, लोगों की भीड़ उमड़ने लगी। सैकड़ों की संख्या में नाग-रिक, अधिकृत पुरुष, आबाल-वृद्ध पृथकजन, कर्मचारी आदि आने लगे। दर्शक भी हजारों की संख्या में एकत्रित हो गये।

मंच-स्थान के अधिकारियों ने अपना स्थान ग्रहण किया। मंडप के रक्षक सैनिक अपने स्थानों पर खड़े हो गये। शान्ति बनाये रखने की घोषणाएँ निर-न्तर की जाने लगीं। नगर में सन्निपात भेरी का स्वर अन्तिम बार गूँजकर समाप्त हो गया। मुख्य मंच पर अधिकृत राजपुरुष अपना स्थान ग्रहण करने लगे। एक ओर भिक्खुओं की टोली भी आ जमी। देखते-ही-देखते सारा मंच खचाखच भर गया।

चन्द्रगुप्त-सभा का यह अधिवेशन कई वर्षों के बाद हो रहा था। कई लोगों को तो इसकी कार्यप्रणाली भी याद नहीं रही थी। प्रारम्भ में छन्दपुरुष अपने स्थान पर खड़ा हुआ और उसने सब लोग सुन सकें ऐसे उच्च स्वर में विज्ञापित किया :

'चन्द्रगुप्त-सभा के सम्माननीय सदस्यगण, भन्ते गण, मेरे कथन को सुनें। इस चन्द्रगुप्त-सभा में सभी को सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया गया था। परमभट्टारक परममाहेश्वर महाराजाधिराज मौर्य-वंश के वंशज श्रीप्रतापादित्य महाराज मगधेश्वर बृहद्रथदेव चन्द्रगुप्त-सभा की परम्परा और प्रणाली को पुनर्जीवित करते हैं। इस सभा में छन्द वही व्यक्ति प्रदान करे जिसे छन्द देने का अधिकार हो। अन्य कोई छन्द में भाग न ले। चर्चा और विवाद में सम्मिलित सभी हो सकते हैं, परन्तु छन्द में केवल छन्द के अधिकारी व्यक्ति। भन्ते नगरजन, आज हमारा यह महान् पाटलिपुत्र नगर अपनी प्राचीन परम्परा को पुनर्जीवित करने का संकल्प करता है। अवसर के उपयुक्त गौरवपूर्ण शान्ति सभी बनाये रहें। परमभट्टारक परममाहेश्वर महाराजाधिराज मगधेश्वर बृहद्रथदेव की जय हो!'

'जय हो!' एक गगनभेदी स्वर गूँज उठा।

उसी समय मगधपति बृहद्रथ ने सभा-भवन में प्रवेश किया।

तत्काल सभा-भवन में मृत्यु-जैसी शान्ति व्याप्त हो गई। राजा तो आ गया था, लेकिन महामात्य कौंडिन्य का कहीं पता नहीं था। लोग गरदनें तान-तानकर महामंत्री को देख और उसके बारे में अपने पड़ोसियों से पूछ रहे थे। उसे वहाँ न देख कई लोग घबरा भी रहे थे। कई यह सोच रहे थे कि कहीं उस कूटनीतिज्ञ ने कोई देश-विरोधी चाल न चली हो। कई डर रहे थे कि कहीं सभा में ही यवनों के आक्रमण के समाचार न सुनने पड़ जायें। और सभी उत्सुक थे कि देखें मगधपति क्या कहता है!

कुछ क्षण इसी प्रकार की असह्य शान्ति बनी रही, तभी एक महर्षि-जैसे प्रतापशाली विद्वान ने वहाँ प्रवेश किया। वह महामुनि पतंजली थे। महाबलाधिकृत पुष्यमित्र स्वयं उनकी अगवानी के लिए आगे बढ़ा और उनकी अभ्यर्थना करके आदरपूर्वक उन्हें मंच पर ले आया। पतंजलि मुनि को कई

नागरिक पहचानते थे, परन्तु किसी राजनीतिक समारोह में वह पहली ही बार उपस्थित हो रहे थे। इससे भी लोगों को विस्मय हुआ। वह विदर्भ की ओर से आये थे इसलिए सभा-गृह में सभी ने यही अनुमान लगाया कि आज की चर्चा का मुख्य विषय कहीं विदर्भ ही न हो।

महामुनि अपने लिए निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गये। उनके आगमन से जो हलचल हुई थी वह भी शान्त हो गई और पुनः मौन व्याप्त हो गया। जन-समूह प्रथम वक्ता के भाषण की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगा। तब महा-बलाधिकृत पुष्यमित्र अपने स्थान से उठकर आगे आया और उसने मेघ की गरज-जैसे प्रशस्त और विशद स्वर में सभासदों को उद्देश्य कर अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया। उसका स्वर सभा-स्थल के विभिन्न कोनों एवं स्थानों में गूँजने और प्रतिध्वनित होने लगा। उसने कहा :

'पाटलिपुत्र के नागरिक, भन्ते नगरजन, मेरे वक्तव्य को सुनें। चन्द्रगुप्त-सभा के सम्मुख मैं अपने कथन को प्रस्तुत करता हूँ। वह मिथ्या हो तो सभा मुझे दंड का अधिकारी मानकर दंडित करे। मिथ्या न हो तो मेरे कथन का न्याय-निर्णय किया जाये। आज चन्द्रगुप्त-सभा की परीक्षा है। महाराज मगधेश्वर की परीक्षा है। मेरी भी परीक्षा है। और यहाँ उपस्थित सारे प्रजाजनों की भी परीक्षा है। मेरा वक्तव्य अमात्य कौंडिन्य के विपक्ष में, विरोध में ही है... लेकिन....महामान्य स्वयं ही आ रहे हैं। भन्ते नगरजन, पहले आप उन्हीं का वक्तव्य सुन लें।'

पुष्यमित्र नीचे बैठ गया। मंच पर महामात्य कौंडिन्य दिखाई दिया। इस समय वह मुक्त था। उसका चेहरा उतरा हुआ और दुर्बल प्रतीत होता था। लेकिन धृष्टता की उसमें कोई कमी न थी। उसने आगे आकर उच्च स्वर में कहा :

'भन्ते नगरजन, महाबलाधिकृत का वक्तव्य आपने सुना। अब परिषद् मेरा वक्तव्य सुने। मैंने महाराज अशोक की परम्परा को निबाहते रहने का प्रयत्न किया है। परमभट्टारक महाराज मगधेश्वर भी यही प्रयत्न करते रहे हैं। परिणामस्वरूप देश से युद्धों का अन्त हुआ। आज कहीं युद्ध का नाम भी नहीं रह गया। पारस्परिक समझ के अभाव में धृष्ट और अविनीत हो रहे

प्रदेशपतियों को महाराज मगधेश्वर शान्ति और अहिंसा की नीति के द्वारा वश में कर लेते हैं, समझा लेते हैं। विदर्भ का यज्ञसेन मेरा बहनोई है। वह अभी तक हमारी धर्मनीति में यथोचित विश्वास नहीं करता। उसे सीधे-सीधे शान्ति का उपदेश देने से वह और भी अविनीत हो जाता। उसे समझाने की रीति प्रचलित रीति से कुछ भिन्न ही होनी चाहिए। सभी के साथ एक ही नीति का अवलम्बन तो हो नहीं सकता। व्यक्ति और प्रसंग के अनुसार कार्य-प्रणाली का परिवर्तन स्वाभाविक और अवश्यम्भावी ही है। मुख्य बात पारस्परिक समझ उत्पन्न करना है। इसलिए मैंने यहाँ उपस्थित, यह जो भद्रघोष है, उसके साथ अपना एक सन्देश यज्ञसेन को भेजा था। मैं स्वयं इसे स्वीकार करता हूँ। परन्तु हमारे महाबलाधिकृत उस सन्देश के भावार्थ को समझने मे असमर्थ रहे। उन्होंने केवल उसके शब्दार्थ को पकड़ लिया। इसी का नाम पारस्परिक समझ का अभाव है। अपनी भ्रान्ति से प्रेरित होकर उन्होंने सभागृह में मेरे सम्बन्ध में मिथ्या वक्तव्य दिया, मेरे देशद्रोह की बात कही। लेकिन यह सब उनकी कपोल-कल्पना और निरा असत्य है। चन्द्रगुप्त-सभा मेरा न्याय करे। चन्द्रगुप्त-सभा मगध की राजनीति का निर्णय और निर्धारण करे। भन्ते नगरजन, आप क्या चाहते हैं—युद्ध चाहते हैं या प्रातःस्मरणीय सम्राट् अशोक की शान्ति नीति?'

'हमें युद्ध नहीं चाहिए।' नागरिकों ने एक स्वर में कहा, 'युद्ध यहाँ किसी को नहीं चाहिए।'

'उचित ही है! तो चन्द्रगुप्त-सभा न्याय करे। हमारे बलाधिकृत पुष्यमित्रदेव युद्ध चाहते हैं। उनकी बातें सुनकर आप काँप उठेंगे। वह तो भगवान् तथागत के धर्म को ही नष्ट कर देना चाहते हैं। वह यहाँ अश्वमेध-यज्ञ करना चाहते हैं।'

'अश्वमेध-यज्ञ? यह क्या वस्तु है?'

'सेनापति एक अश्व छोड़ना चाहते हैं। वह सारे भरत-खण्ड में घूमेगा। जो उस अश्व को बाँध लेगा, मगध उससे युद्ध करेगा। इसको कहते हैं अश्वमेध। यह भयंकर रक्त-रंजित युद्धों का श्रीगणेश है। ऐसा होता है अश्वमेध-यज्ञ।'

'ओह, ऐसा होता है अश्वमेध-यज्ञ !' एक साथ सैकड़ों स्वर गूँज उठे ।

'हाँ, ऐसा ही होता है अश्वमेध । अश्वमेध में युद्ध के सिवाय और हो ही क्या सकता है !'

कौंडिन्य अपनी वाक्चातुरी से चन्द्रगुप्त-सभा का समर्थन प्राप्त करता जा रहा था । यह देख महामुनि पतंजलि उठ खड़े हुए और उन्होंने अपने धीर-गम्भीर और गूँज-भरे स्वर में कहना प्रारम्भ किया :

'अश्वमेध में और क्या हो सकता है, यह मैं आप लोगों को बताता हूँ । भन्ते सदस्यगण, अब मेरे वक्तव्य को सुनें । मैं विदर्भ से चलकर आया हूँ । मैंने वहाँ देखा है कि विदर्भ मगध की सत्ता को स्वीकार नहीं करता । अवन्ती भी आपकी सत्ता को नहीं मानता । कलिंग नहीं मानता, सौराष्ट्र नहीं मानता, आनर्त भी नहीं मानता । मध्यमिका प्रदेश में तो कोई आपको पूछता भी नहीं । आज मगध का साम्राज्य विशाल महासागर के स्थान पर केवल चुल्लू बराबर रह गया है । मगध के गौरव और भव्यता को पुनर्जीवित करके ही आप जीवित रह सकते हैं । भगवान् तथागत-जैसे महान् पुरुष का जन्म सहस्रों वर्षों में केवल एक बार होता है । उस अवतारी पुरुष ने अपना कार्य किया और निर्वाण को प्राप्त हुआ । अब यदि आप उनके नाम की निरर्थक पूजा करते रहें और देश के आज के प्रश्नों को न समझें तो आपका पतन अनिवार्य है । भगवान् तथागत के समक्ष उनके युग के प्रश्न थे । हमारे सम्मुख हमारे युग के प्रश्न हैं । भगवान् तथागत ने अपने रिपुओं का दमन किया, हमें अपने रिपुओं का दमन करना है । दमन ही नहीं करना है, उनका निष्कासन भी करना है । यदि हमने इस बात को नहीं समझा तो यूनानी यवन हमें रौंद देंगे । हमारा आज का सबसे प्रमुख प्रश्न विदेशी आक्रान्ताओं के सफल प्रतिरोध और निवारण का ही प्रश्न है । आज चन्द्रगुप्त-सभा के अधिवेशन का प्रयोजन भी यही है कि वर्तमान परिस्थिति का सामना कैसे किया जाये ? हमारा सन्देश क्या हो ? क्या हम सर्वत्र युद्ध करने के लिए जायेंगे ? जा सकेंगे ? सन्देश हमारा स्पष्ट ही है । नीति हमारी युद्ध की नहीं, शान्ति की ही हो सकती है । लेकिन वह शान्ति दुर्बल की नहीं, सबल की शान्ति होनी चाहिए । प्रदेशपतियों से हम कहेंगे कि यदि तुम निर्बल रहे, मगध से पृथक्

अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करते रहे तो विदेशी आक्रमणकारी तुम्हीं को नहीं समस्त भारतवर्ष को पददलित कर देंगे, और जब भारत ही नहीं रहेगा तो तुम कहाँ रहोगे ? वस्तुस्थिति का यह निरूपण मेरी कल्पना नहीं, वास्तविकता है। इससे उद्धार का मार्ग क्या है ? मार्ग केवल यह है कि हम सब मिलकर मगध को एक, अखण्ड और महान् बनायें। मगध और पाटलिपुत्र की महानता, सबलता और सामर्थ्य पर ही सबकी महानता और सबलता निर्भर है। एक शक्तिशाली, संयुक्त और दृढ़ मगध ही सबकी ओर से, सभी प्रदेशपतियों की ओर से यवन आक्रान्ताओं को रोक सकता है। उनका प्रतिरोध कर उन्हें निष्कासित कर सकता है। इसी प्रकार भारत देश को बचाया जा सकता है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। चन्द्रगुप्त-सभा का यही सन्देश हो सकता है। लेकिन प्रदेशपति इस सन्देश को कैसे ग्रहण करेंगे ? उन्हें किस तरह समझाया जा सकता है कि एक केन्द्रीभूत शासन के बिना जीवित रहने का अन्य कोई मार्ग नहीं? यह कहा जा सकता है अश्वमेध-यज्ञ के द्वारा। अश्वमेध तो केवल प्रतीक है। मुख्य बात तो उसमें निहित सन्देश है। पारस्परिक समझ की बात यहाँ कही गई। अश्वमेध के अश्व के द्वारा ही वह पारस्परिक समझ उत्पन्न और प्रस्थापित की जा सकती है। एक अश्व और उसके साथ देश के सर्वश्रेष्ठ योद्धा सारे देश में विचरण करें और पारस्परिक समझ उत्पन्न करें, यह उचित है अथवा मगध का राजा विशाल सेना लेकर देश में ठौर-ठौर फिरता रहे, यह उचित है ? क्या यह उचित होगा कि मगध का महाराजा प्रदेश-प्रदेश में कहता फिरे कि एक केन्द्रीभूत शासन के बिना देश को बचाया नहीं जा सकता ? चन्द्रगुप्त-सभा इसका न्याय-निर्णय करे। अश्वमेध तो प्रतीक है। मुख्य बात देश की एकता, उसका गौरव और भव्यता है। देश एक होगा, संगठित होगा, एक केन्द्रीभूत शासन होगा, सन्नद्धता होगी तो विदेशी आक्रमणकारी अलिकसुन्दर की भाँति सौ बार विचार करेगा कि आगे बढ़ूँ या न बढ़ूँ। अश्वमेध-यज्ञ का यही प्रयोजन है। उसके द्वारा विदेशी आक्रमणकारियों को यह बताया जा सकेगा कि देश एक है और इसकी ओर किसी ने आँखें उठाकर देखा तो उसकी आँखें निकाल ली जायेंगी। यही बतलाने के लिए मैं खड़ा हुआ हूँ। मैं चला आ रहा हूँ विदर्भ से। जानते हैं, विदर्भ में कौन है ?'

'वहाँ हमारा प्रदेशपति है। और कौन है?' कौंडिन्य ने कहा।

'नहीं महामात्य! वहाँ कोई प्रदेशपति नहीं। आप चन्द्रगुप्त-सभा को व्यर्थ की वितण्डा में न डालें। मैं स्वयं अपनी आँखों से देखकर आया हूँ। विदर्भ में मगध का कोई प्रदेशपति नहीं, प्रदेशपति में उनकी आस्था नहीं, वहाँ है विदर्भराज!'

'विदर्भराज? यह कौन नया राजा उत्पन्न हो गया? विदर्भ क्या मगध का प्रदेश नहीं?' सैकड़ों स्वर एक साथ गूँज उठे : 'क्या वहाँ मगध का राज्य नहीं? हम जानना चाहते हैं, मगध का राज्य कहाँ-कहाँ है?'

'केवल पाटलिपुत्र की नगर-सीमाओं तक। वास्तव में तो पाटलिपुत्र की नगर-सीमाओं तक भी नहीं।'

'अरे, यह हम क्या सुन रहे हैं? मगध के महान् राज्य का क्या हुआ? आसेतुहिमालयवाला महान् मगध-साम्राज्य कहाँ चला गया?'

'भन्ते नगरजन, जैसा मैंने आपसे कहा, आज मगध की सत्ता केवल पाटलिपुत्र की नगर-सीमाओं तक ही सिकुड़कर रह गई है। महाराज मगधेश्वर का कहना है कि सीमा सिकुड़ी तो कोई हानि नहीं, पारस्परिक समझ में तो वृद्धि हुई है। उनकी यह ज्ञान-गोष्ठी उन्हीं के पास बनी रहे। आपको तो यह देखना होगा कि जब मगध पर आक्रमण हो उस समय आपकी और आपके बाल-बच्चों की रक्षा कौन कर सकता है? कोई कर भी सकता है या नहीं? या विदेशी आक्रमणकारी इस महान् नगर के निवासियों को भेड़-बकरियों की भाँति काट ही डालेंगे? तो उस परिस्थिति का सामना कौन करेगा? विदेशियों से संघर्ष कौन करेगा? धर्म-घोषणाओं और धर्म-नीतियों के द्वारा और सीमाओं को संकुचित कर थोथी अहिंसावादिता के द्वारा क्या शत्रु का सामना किया जा सकेगा? यदि सैन्य-महोत्सव न किया गया, युद्ध-घोषणा न की गई, रणभेरी न बजी तो क्या आप समझते हैं कि दुर्दान्त विदेशी दस्युओं का प्रतिरोध किया जा सकेगा? आपको पुनः शक्ति-सम्पन्न होना पड़ेगा। मगध के सभी प्रदेशपतियों को मगध के केन्द्रीभूत शासन के अन्तर्गत संगठित और संयोजित करना ही होगा। अश्वमेध-यज्ञ उसी शक्ति, संगठन और संयोजन का प्रतीक है। इसी लिए उस पर मेरा इतना आग्रह है। अब भन्ते सदस्यगण

मेरे दूसरे वक्तव्य को सुनें। यह जो आप लोगों के समक्ष खड़ा है, यह भद्रघोष, वैदर्भ का रहनेवाला है। यहाँ आया था आपकी दुर्बलता को देखने। इसके साथ आपके ही महामात्य ने विदर्भराज के नाम जो सन्देशा भेजा था, क्या उसे आप जानते हैं, जानना चाहते हैं?'

'हाँ, अवश्य जानना चाहते हैं। चन्द्रगुप्त-सभा जानना चाहती है। जानने का उसे अधिकार भी है। बताओ, क्या सन्देश था?'

भगवान् पतंजलि ने कहा—वसुमित्र, भद्रघोष को आगे लाओ और चन्द्रगुप्त-सभा को बताओ कि वह सन्देश क्या था।

'वह सन्देश तो अतीव भयंकर है भगवन्! उसमें मगध को बेचने और पददलित करने की बात कही गई है।' वसुमित्र ने कहा।

'उद्धत किशोर, चुप रह! तू राजनीति नहीं समझता!' कौंडिन्य ने कहा, 'उस सन्देश में मगध को पददलित करने की कोई बात नहीं। उसमें तो राजनीति की कूटभाषा में यज्ञसेन को यहाँ आने का निमंत्रण दिया गया है। वह यहाँ आये। यहाँ आने को प्रेरित हो। महाराज मगधपति से समीप वह आये। यही है उस सन्देश का अभिप्राय। बड़ी मधुर वाणी है वह तो। अभिप्राय है उसको जीतना। युद्ध के बिना ही उसको विजित करना। इस बात को यह भिक्खु-सम्प्रदाय समझता है। सभी समझते हैं। जिन्हें यहाँ पर यवन आक्रमणकारी कहा गया है वे भी समझते हैं। नहीं समझते हैं तो द्वेष से प्रेरित हमारे यह महाबलाधिकृत पुष्यमित्र और उनका यह अज्ञ, उद्धत किशोर और यह ब्राह्मण देवता। यह इसलिए नहीं समझते कि इन्हें युद्ध चाहिए, परन्तु मैं तो युद्ध नहीं चाहता। मैं मगध को हिंसा के रक्त-रंजित मार्ग पर नहीं ले जाना चाहता। सारी बात केवल इतनी ही है। अब चन्द्रगुप्त-सभा निर्णय करे।' कौंडिन्य ने बात के मुख्य पहलू को ही बदल दिया था।

'भन्ते सदस्यगण, अब मेरे वक्तव्य को सुनें।' वसुमित्र ने आगे आकर कहा। उसके प्रतिभाशाली मुख को सभी लोग स्नेहपूर्वक देखने लगे। उसने आगे कहा, 'भन्ते सदस्यगण, हम इस भद्रघोष से ही पूछें। भणे भद्रघोष, तुम्हें सन्देश किसने दिया था?

'महामात्य ने!'

'वह किसको देने के लिए था ?'

'विदर्भराज को !'

'लेकिन यह विदर्भराज कौन है ? हम तो किसी विदर्भराज को नहीं जानते हैं । और हो तो मानते भी नहीं । विदर्भ में केवल मगध का प्रदेशपति है । वहाँ कोई राजा नहीं । कहाँ गया वह प्रदेशपति ?' चन्द्रगुप्त-सभा से एक साथ सैकड़ों स्वर उठते सुनाई दिये ।

अब मगधपति राजा बृहद्रथ पहली बार बोलता हुआ सुनाई दिया—विदर्भराज तो केवल प्रतीक है । भन्ते नगरजन, अब मेरा वक्तव्य सुनें । प्रदेशपति स्वयं को राजा कहलाए, प्रदेशपति कहलाए या महाराजाधिराज कहलाए, क्या अन्तर पड़ता है ? शब्दों में क्या धरा है ? राजा क्या और पति क्या ? मुख्य बात तो पारस्परिक समझ है । क्या शब्दों के वितंडावाद में उलझकर हम मूल वस्तु—धर्म को ही खो देंगे ? विदर्भराज या विदर्भ-प्रदेशपति में अन्तर ही क्या है ?

'यदि विदर्भ स्वतंत्र भी हो जाये तो भी क्या अन्तर पड़ता है ?' वसुमित्र ने कहा ।

'हाँ, मैं भी यही कहता हूँ कि क्या अन्तर पड़ता है ।'

'और यवन आक्रमणकारी पाटलिपुत्र में आ बैठें अथवा शाकल में बैठे रहें, तब भी क्या अन्तर पड़ता है ? जैसे वहाँ वैसे यहाँ । क्यों महाराज, ठीक है न ?' वसुमित्र के इस प्रश्न को सुनकर सारी चन्द्रगुप्त-सभा हँस पड़ी ।

'हाँ, इसमें भी क्या अन्तर पड़ेगा ? सारा अन्तर तो हमारे मन में है वसुमित्र !' मगधराज ने कहा, 'यूनानी तो यहाँ हमसे सीखने-समझने के लिए ही आना चाहते हैं । आ सकें तो अच्छा ही है । कुछ हमसे ले जायेंगे कुछ हमको दे जायेंगे । यह पारस्परिक आदान-प्रदान....'

चन्द्रगुप्त-सभा मगधपति के इस मूर्खतापूर्ण प्रलाप को सुनकर पुनः उच्च स्वर में हँस दी ।

'भद्रघोष ! तुम्हें जो सन्देश दिया गया था वह तुम स्वयं चन्द्रगुप्त-सभा को पढ़कर सुनाओ !' पुष्यमित्र ने एक हाथ से लोगों की हँसी को रोकते और दूसरे हाथ से भद्रघोष को आदेश देते हुए कहा ।

भद्रघोष ने पुष्यमित्र की आज्ञानुसार सन्देश पढ़कर सुनाया। उस सन्देश में मगधपति को पदच्युत करने की बात थी। यूनानी आक्रमणकारियों से समझौता करने की बात भी थी। यज्ञसेन से कहा गया था कि मगधपति के पदच्युत किये जाने के समाचार सुनते ही वह पाटलिपुत्र पर चढ़ आये। यूनानी आक्रमणकारियों से कहा गया था कि वे मध्यमिका की ओर बढ़ें, जिसमें लोगों का ध्यान उधर बँटा रहे। इस बीच यज्ञसेन मगधपति बन सके और तब यूनानी आक्रमणकारियों को प्रसन्न किया जा सके....

सब लोगों ने ध्यान से इस सन्देश को सुना। लोग रोष से उत्तेजित हो उठे। यह तो मगध का महामात्य ही मगध को विदेशियों के हाथों में सौंपे दे रहा था। लोगों की उत्तेजना निरन्तर बढ़ती ही गई। तब पुष्यमित्र ने हाथ उठाकर कहा :

'अब भन्ते सदस्यगण, मेरा वक्तव्य सुनें। दुर्व्यवस्था और अराजकता की जड़ें कितनी गहराई तक पहुँच गई हैं यह आपने देख ही लिया। अब उपाय एक ही है। यहाँ सैन्य-महोत्सव हो, प्रदेशपति उसमें आयें, मगध की एक केन्द्रीभूत सत्ता को सब स्वीकार करें तभी देश बच सकता है। महामात्य को चन्द्रगुप्त-सभा यथोचित दंड दे। पत्र स्पष्ट है। उसमें लिखा सन्देश भी स्पष्ट है। सन्देश ले जानेवाला यहाँ है। भेजनेवाला भी यहाँ है। सभा न्याय करे।'

'महामात्य झूठा है....उसकी बात झूठी है ...सैन्य-महोत्सव आयोजित किया जाये... और कोई बात हम नहीं चाहते!'

'चन्द्रगुप्त-सभा की जय हो!' पुष्यमित्र ने अपने उच्च-स्वर में गगनभेदी निर्घोष किया।

२३ : मगधपति का तेजोवध

'चन्द्रगुप्त-सभा की जय हो!' इस प्रचण्ड निनाद से दसों दिशाएँ और आकाश प्रतिध्वनित हो उठा। यह स्वर गूँजता हुआ पाटलिपुत्र के राजपथ और वीथियों में आन्दोलित होता, बन-जंगल और पहाड़ों-नदियों को भी प्रतिध्वनित करने लगा। सुगंगप्रासाद की अटारियों, झरोखों और गवाक्षों से भी यह घोष निनादित होने लगा। आज पाटलिपुत्र में अनेक वर्षों के

पश्चात् यह स्वर सुना जा रहा था। महाराज अशोक के पश्चात् यह स्वर लगभग मृत्यु को प्राप्त हो चुका था। चन्द्रगुप्त-सभा तो थी, परन्तु उसमें न वह तेज रहा था और न वह गौरव। वह लगभग निर्जीव ही हो गई थी। प्रजा भी अन्धकार में भटक रही थी। कोई उसको समझनेवाला, उसका मार्गदर्शन करनेवाला नहीं था। पुष्यमित्र ने उस सभा को जागृत किया, अन्धकार में प्रकाश की किरण प्रकट की; सारी जनता को उसने तेजपूरित कर दिया।

जनता अपनी मोह-निद्रा से जाग उठी थी। जब विदेशी आक्रान्ता पाटलिपुत्र के द्वारों पर टकरा रहे थे, निर्दोष प्रजा का वध किया जा रहा था तब शालिशुक-जैसे भीरु राजा मिथ्या-धर्म का प्रवचन करते रहे। उसके बाद बृहद्रथ ने भी वही किया और प्रजा मोहाच्छन्न होती गई। आज उसी सोयी प्रजा को पुष्यमित्र ने जगा दिया। प्रजा को उत्साहपूर्वक चन्द्रगुप्त-सभा का जयजयकार करते देख महाबलाधिकृत पुष्यमित्र ने अपना अगला कदम उठाया।

उसने कहा—भन्ते नगरजन, पुनः मेरा वक्तव्य सुनें। आज से पाटलिपुत्र नगर में चन्द्रगुप्त-सभा ही सर्वोच्च मानी जाये। उसे वही स्थान प्राप्त हो जो महाराज अशोक के समय था, जो महाराज बिन्दुसार के समय था। भन्ते सदस्यगण, चन्द्रगुप्त-सभा की गौरवशाली परम्परा की रक्षा करना और उसे निबाहना अब आपका कर्त्तव्य है। अब चन्द्रगुप्त-सभा न्याय-निर्णय करे।

'किसका न्याय-निर्णय करे?' राजा बृहद्रथ उठकर खड़ा हो गया और उसने असहिष्णु स्वर में पूछा, 'किस-किस का न्याय-निर्णय करवाना चाहते हो पुष्यमित्र?'

'महामात्य कौंडिन्य का।' पुष्यमित्र ने दृढ़ स्वर में कहा।

'सेनापति पुष्यमित्र! उसका न्याय-निर्णय मैं करता हूँ। कौंडिन्य को विदर्भ भेजो। वहाँ जाकर वह समाधान करे, समझौता करे। युद्ध तो पशु का भी धर्म नहीं, हम तो मनुष्य हैं। यहाँ युद्ध-घोषणा हो नहीं सकती।'

'महाराज, प्रश्न युद्ध की घोषणा का नहीं, महामात्य के न्याय का है। और आप उसका न्याय-निर्णय नहीं कर सकते। केवल चन्द्रगुप्त-सभा ही उसका

न्याय कर सकती है। मगध की यही प्रणाली है। आपने जो कहा वह केवल आपका अकेले का छन्द है। महामात्य के बारे में न्याय करते समय चन्द्रगुप्त-सभा आपके मत को भी लक्ष्य में रखेगी। भन्ते नगरजन....' पुष्यमित्र ने चन्द्र-गुप्त-सभा को उसके गौरव और अधिकार के बारे में और भी सजग करने के उद्देश्य से कहा, 'चन्द्रगुप्त-सभा ही समर्थ है। वही न्याय करे। और चन्द्रगुप्त-सभा यह भी निर्णय करे कि सभी प्रदेशपतियों का सैन्य-महोत्सव में आना अनिवार्य हो। महाराज मगधपति सैन्य-महोत्सव की घोषणा करें।'

'अरे पुष्यमित्र, इस भाँति तो हम अधार्मिक हो जायेंगे।'

'नहीं महाराज, इस भाँति तो हम अपने-आपको आत्महत्या के मार्ग से रोक रहे हैं। देश के दूषित वातावरण को शुद्ध कर रहे हैं। हमने सच्चे धर्म-गौरव का नाश ही कर डाला है। हमने प्रजाजनों पर भाँति-भाँति के कर बढ़ा दिये हैं। महाराज, ये कर सैनिक तैयारियों के नाम पर लगाये गये थे। इन करों को अब हमें उठा लेना चाहिए।' यह उसने अपने आगामी कार्यों के लिए लोगों का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से कहा और तब उसने जन-समूह की ओर मुड़कर घोषणा की, 'भन्ते नगरजन, अब यह वक्तव्य सुनें। परम-भट्टारक महाराज मगधेश्वर घोषणा करते हैं कि आज से पाटलिपुत्र से सुपेशाण उठा लिया जाता है। अब भविष्य मे यह कर नहीं लिया जायेगा।'

सुपेशाण बड़ा ही दुःखदायी कर था। लोग इस कर से संत्रस्त हो उठे थे। प्रत्येक चूल्हे पर यह कर लगाया जाता था। चूल्हों की गिनती में बड़ी धाँधली की जाती थी और कर की वसूली में तो भयंकर अत्याचार होता ही था। जब लोगों ने इस कर के उठाये जाने की बात सुनी तो तालियों की गड़गड़ाहट से आसमान को गुँजा दिया।

जनसामान्य का यह उत्साह देखकर पुष्यमित्र ने और भी कई कर हटाने का निश्चय किया। उसने अपने प्रशस्त और विशद स्वर में कहा—आज से समस्त मगध-राज्य से और विदर्भ से भी 'मुकुटेकार्षापणम्' नाम का कर भी उठाया जाता है। अब किसी से यह कर वसूल नहीं किया जायेगा! चन्द्र-गुप्त-सभा महाराज के इस निर्णय का भी अनुमोदन करे।

'अनुमोदन है! अनुमोदन है। मगधपति की जय हो!'

'सेनापति पुष्यमित्र की जय हो !'

एक के बाद एक हर्ष-ध्वनियाँ होने लगीं। मगधपति यह सब बैठा देख रहा था। उसकी समझ में नहीं आया कि यह क्या हो रहा है। और पुष्यमित्र ने उसे समझने अथवा कुछ कहने का अवसर भी नहीं दिया। वह कहता चला गया—अब मगध में किसी से दघदिमापक कर भी नहीं लिया जायेगा। महाराज का यही मन्तव्य है।

'जय हो ! महाराज बृहद्रथ की जय हो ! सेनापति पुष्यमित्र की जय हो !'

'वसुमित्र की जय हो !' कुछ युवकों ने वसुमित्र का भी जयजयकार किया।

सारी चन्द्रगुप्त-सभा हर्षोत्फुल्ल हो उठी। चारों ओर से जयजयकार का नाद उठने लगा। पुष्यमित्र ने सब लोगों के हृदयों को जीत लिया था।

तभी एक स्वर सुनाई पड़ा :

'पुष्यमित्र, अभी तक चली आती एक और निरर्थक प्रथा है। आज उसे भी समाप्त कर दिया जाये। वह प्रथा है खीरमूलकाहापण। अब भविष्य में किसी से भी खीरकाहापण (क्षीरकार्षापण) न लिया जाये। प्रकृति यही कहती है। नवग्रह यही कहते हैं। आकाश के रंग और जल की धाराएँ भी यही कहती हैं। समाप्त करो इस कर को !'

यह स्वर महामुनि पतंजलि का था। उन्होंने अपने हाथ को चारों ओर घुमाते हुए एक भविष्यद्रष्टा ऋषि के शब्दों में यह बात कही। इसे सुनते ही लोगों की खुशी का पार न रहा। कई-कई तो मारे आनन्द के उछलने लगे। खीरकाहापण राजकुमार के जन्म के समय सभी नागरिकों को अनिवार्य रूप से राजकोष में जमा करना होता था। प्रत्येक व्यक्ति की ओर से एक-एक रौप्य कार्षापण राजकुमार के जन्म के समय राजा को भेंट-स्वरूप दिया जाता था। राजप्रासाद में रानियों का कोई पार न था। राजकुमारों के जन्म का भी कोई पार न था। खीरकाहापण की भी कोई सीमा नहीं थी। मँहगाई हो, अर्थाभाव हो, परन्तु खीरकाहापण तो देना ही होता था। उससे कोई निस्तार नहीं था। न देने का अर्थ सीधे-सीधे राजद्रोह माना जाता था। राजा के घर में राजकुमार हो और प्रजा उत्सव और आनन्द के रूप में खीरकाहापण

न दे, इससे बड़ा अपराध और क्या हो सकता था ? इसलिए जब लोगों ने यह सुना कि क्षीरकाहापण समाप्त किया जा रहा है तो उनके आनन्द की सीमा न रही।

'महाराज मगधपति समस्त मगध राज्य से क्षीरकाहापण भी समाप्त करते हैं। चन्द्रगुप्त-सभा इसे भी स्वीकार करे।' पुष्यमित्र ने कहा।

'स्वीकार है ! सभा को स्वीकार है !' पुष्यमित्र के कथन के समर्थन में चारों ओर से प्रतिध्वनि उठी।

इन घोषणाओं का एक दूसरा शुभ परिणाम यह भी हुआ कि लोगों के मन में गौरव की भावना जाग्रत हुई। वह समझने लगे कि अब शासन हमारे हाथ में आया, चन्द्रगुप्त-सभा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ।

पुष्यमित्र ने आगे कहा---सभी अनावश्यक कर समाप्त किये जाते हैं। नगरजन आनन्दित हों। अब हम सम्पन्नता के युग में प्रवेश करते हैं। अर्थाभाव में लोगों को कुलमाष और कुलत्थ-जैसे निकृष्ट धान्य खाकर दिन व्यतीत करना पड़ते हैं। लेकिन अब यह भूतकाल की बात हो जायेगी। आज जिस महाव्रीहि के कहीं दर्शन नहीं होते वह मद्रदेश की दाविकाकुलशालि सबके लिए सुलभ हो जायेगी। भविष्य में महाराज मगधपति इसी प्रकार चन्द्रगुप्त-सभा के समक्ष अपने विचार और निर्णय प्रस्तुत करते रहेंगे। नगरजन महाराज की इस परम्परा को गौरवान्वित करें। महाराज का अभिनन्दन किया जाये।

'अभिनन्दन है ! अभिनन्दन है !'

'पुष्यमित्र सेनापति का भी अभिनन्दन !' चारों ओर से स्वर सुन पड़े।

'महाराज मगधेश्वर ने सैन्य-महोत्सव की जो घोषणा की है, उसमें सभी उपस्थित हों। चन्द्रगुप्त-सभा सैन्य-महोत्सव का स्वागत करे। सैनिकों की नियुक्ति के लिए महाराज विज्ञप्ति करें। अनुशातिक नियुक्त किये जायें। ये अनुशातिक अपने दलों और गुल्मों के लिए सैनिकों की भर्ती करें। साधुओं की भर्ती तो बहुत हुई, अब हमें सैनिकों की भर्ती करनी चाहिए। सभी नगरजन इसमें भाग लें। सैनिक भर्ती से सम्बन्धित चन्द्रगुप्त-सभा के निर्णय का सब उपस्थित अनुमोदन करें।'

'अनुमोदन है ! अनुमोदन है !' चारों ओर से स्वर सुनाई दिये ।

'अब भन्ते सदस्यगण सुनें ! महामात्य कौंडिन्य यहीं पर हैं । चन्द्रगुप्त-सभा उनका न्याय-निर्णय करे ।'

चारों ओर से सुनाई दिया – अमात्य को कारागृह में डाला जाये । उसे कठोर दंड दिया जाये । पाटलिपुत्र को कोई विदेशियों के हाथ बेच नहीं सकता....

'नगरजन यह न भूलें कि अमात्य हमारी कृपा के अधिकारी हैं । उन्होंने वर्षों तक हमारी सेवा की है ...'

'हाँ, विदर्भ को आक्रमण के लिए बुलाना कोई साधारण सेवा तो है नहीं !' किसी ने कटाक्षपूर्वक कहा ।

'विदर्भ का प्रदेशपति महामात्य का बहनोई है, इसे निरा संयोग ही समझना चाहिए । अपने सम्बन्धी के प्रति सभी में कुछ-न-कुछ दुर्बलता होती ही है । मानवी दुर्बलता के वशीभूत महामात्य से भी ऐसा कृत्य हो गया । अब इन्हें सुगंगप्रासाद में ही रखना चाहिए । चन्द्रगुप्त-सभा उदारतापूर्वक यह अनुज्ञा प्रदान करे ...'

'परन्तु वहाँ इनकी देख-भाल कौन करेगा ?'

पुष्यमित्र ने चारों ओर देखा और लोगों के स्वर सुनाई दिये—कुमार वसुमित्र को यह उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए कहा जाये । वह आन्तर्वंशिक मित्रदेव के साथ इस कार्यभार को ग्रहण करें ।

'और इस भद्रघोष के साथ आज ही यह सन्देश अग्निमित्र को भेजा जाये कि वह विदर्भ के प्रदेशपति को उसकी पद, मर्यादा और वास्तविक स्थिति का ध्यान कराने के लिए विदर्भ जायें । चन्द्रगुप्त-सभा इस प्रस्ताव का भी अनुमोदन करे ।'

'लेकिन अग्निमित्र को वहाँ पारस्परिक समझ स्थापित करने के लिए ही जाना चाहिए । मगध में अब रणभेरी बज नहीं सकती पुष्यमित्र ! समझाने के लिए कोई भी वहाँ जा सकता है । चाहो तो तुम भी जा सकते हो । लेकिन युद्ध के लिए कोई भी नहीं ।' मगधपति ने कहा ।

'महाराज का कथन यथार्थ ही है । अग्निमित्र वहाँ पारस्परिक समझ

स्थापित करने के लिए ही जायेगा। हाँ, वहाँ वह अपने साथ सेना अवश्य ले जायेगा। महाराज, सेना भी समझ प्रस्थापित करने का एक साधन है। कुछ लोग सेना के माध्यम से ही समझाये जा सकते हैं; अन्य किसी भाँति वे समझ ही नहीं सकते। चन्द्रगुप्त-सभा इसका भी अनुमोदन करे।'

'अनुमोदन है! अनुमोदन है! महाबलाधिकृत पुष्यमित्र की जय हो!'

परन्तु राजा बृहद्रथ ने वस्तुस्थिति को अब भी देखना नहीं चाहा। वह अब भी अपनी ही हाँकता रहा। उसने कहा—यह तो बड़ी भयंकर बात है। धर्म-घोषणा के स्थान पर आज यहाँ युद्ध-घोषणा हो रही है, रणभेरी का स्वर गूँजने लगा है। विदेशी यवन अब हमारा परिहास करेंगे। जो यहाँ धर्म-ज्ञान ग्रहण करने के हेतु आने को उत्सुक थे, वे अब क्या करने के लिए यहाँ आयेंगे?

'महाराज! हम अब कुछ कर नहीं सकते। चन्द्रगुप्त-सभा के निर्णय का अब हमें पालन करना ही होगा। उचित यही है कि आज का यह निर्णय हम अग्निमित्र के पास भेजें, उसे सूचित करें। वसुमित्र, तुम महामात्य कौंडिन्य को आदरपूर्वक सुगंगप्रासाद में ले जाओ और उन्हें वहाँ सुखपूर्वक रखो। मित्रदेव, उनकी देख-भाल अब तुम्हारे ऊपर रहेगी। विदर्भ के समाचार आने के पश्चात् महामात्य स्वयं वहाँ जायेंगे। बोलो भन्ते नगरजन महाराज....'

लेकिन महाबलाधिकृत पुष्यमित्र के जयजयकार में राजा बृहद्रथ का जय-जयकार न जाने कहाँ विलीन होकर रह गया।

२४ : शातकर्णी का सन्देश

चन्द्रगुप्त-सभा द्वारा की हुई सैन्य-महोत्सव की घोषणा अभी हवा में गूँज ही रही थी कि सभा-भवन के प्रवेश-द्वार पर एक व्यक्ति खड़ा दिखाई दिया। उसके हाथ में लम्बा भाला था। कमर में तलवार बँधी हुई थी। वेश-भूषा से वह कोई विदेशी योद्धा प्रतीत होता था। एक साथ सैकड़ों दृष्टियाँ उसकी ओर उठ गईं। कुछ लोगों के हृदय मारे भय के धुक-धुक भी कर उठे। आगन्तुक का चेहरा सहज साँवला और नेत्र रक्तवर्ण थे। वह दिखावे से शस्त्रास्त्रों और युद्धों का पक्षपाती प्रतीत होता था। दबंग चाल से चलता

हुआ वह मंचस्थान की ओर बढ़ रहा था। पुष्यमित्र उसे देखते ही पहचान गया। वह आन्ध्र की ओर का कोई सन्देशवाहक था। लोगों ने बिना कहे ही अगल-बगल हटकर उसके जाने के लिए मार्ग बना दिया। बड़ी शान से, मानो किसी स्वतन्त्र राजा का कोई महत्वपूर्ण सन्देश लाया हो इस भाँति, वह मंच के सामने आ खड़ा हुआ।

मंचस्थान के सम्मुख खड़े होकर उसने दोनों हाथ जोड़कर महाराज मगधपति का अभिवादन किया। महाबलाधिकृत पुष्यमित्र को उसने झुककर प्रणाम किया। भगवान् पतंजलि की ओर दृष्टि जाते ही साष्टांग दंडवत कर रहा हो इस भाँति उनकी दिशा में हाथ बढ़ाकर और सिर झुकाकर उसने उनकी अभ्यर्थना की। उसकी इन क्रियाओं को सभा में उपस्थित सभी लोगों ने ध्यानपूर्वक देखा। जिस प्रकार उसने महामुनि पतंजलि को प्रणाम किया वह ढंग मगध-वालों के लिए बिलकुल ही नया था। और जो सन्देश वह लेकर आया था वह तो और भी नया और आश्चर्यजनक था।

उस सन्देशवाहक ने एक हाथ फैलाकर कहा—महाराज मगधपति, मैं आन्ध्रपति महाराज शातकर्णी के यहाँ से आया हूँ। महाराज शातकर्णी और महाराज्ञी देवी नायानिका मगधपति का कुशल-क्षेम पूछने के पश्चात् यह विज्ञापित करते हैं कि अवन्ती प्रदेश की उज्जयिनी नगरी के समीपस्थ भगवान् महाकाल के महावन में महाराज शातकर्णी एक महायज्ञ प्रारम्भ कर रहे हैं। उस यज्ञ में आने के लिए महाराज मगधपति आदरपूर्वक निमंत्रित किये जाते हैं। महाराज प्रतिष्ठानपुरपति अपने यज्ञ में सम्मिलित होने की महाराज मगध-पति से विनम्र प्रार्थना करते हैं।

सन्देशवाहक के शब्द शिष्टाचारपूर्ण, परन्तु साथ ही कड़े और रूक्ष थे। और जो सन्देश वह लाया था वह तो बहुत ही भयंकर और अपमानजनक था। उस सन्देश में मगधपति को खुली चुनौती ही दी गई थी। सन्देश का भावार्थ यह था कि मैं दक्षिणापथ का अधिपति हूँ। उत्तरापथ की ओर से मगध को इस ओर बढ़ने के सभी विचारों का परित्याग कर देना अन्यथा युद्ध के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। इतना कहकर सन्देशवाहक छाती पर दोनो हाथ बाँधकर खड़ा हो गया।

मगधपति बृहद्रथ ने पूछा—यह यज्ञ कैसा है, सन्देशवाहक ?

'अश्वमेध-यज्ञ है महाराज !'

यह शब्द सुनते ही चन्द्रगुप्त-सभा में उपस्थित सभी व्यक्ति चौंक पड़े। अभी थोड़ी देर पहले यहाँ भी अश्वमेध-यज्ञ की ही बातें हो रही थीं।

'अश्वमेध-यज्ञ ?' मगधपति का तीक्ष्ण स्वर सुनाई दिया, 'यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? क्या तुम जानते नहीं कि पाटलिपुत्र नगर में किसी को अश्वमेध-यज्ञ का उच्चारण करने की भी अनुमति नहीं ! यहाँ तो इस शब्द का उच्चारण भी निषिद्ध है। अभी थोड़ी देर पहले यहाँ इन ब्राह्मण देवता ने इसी शब्द का उच्चारण किया था और अब तुम पुनः इसका उच्चारण कर रहे हो। यह तो हम आज नयी ही बात सुन रहे हैं।'

'यह नयी बात नहीं है महाराज। महाराज अशोक के समय में तत्कालीन आन्ध्रपति सीमुक ने ऐसा ही सन्देश भेजा था। उन्होंने कहलवाया था कि आप उत्तरापथ के अधिपति हैं और हम दक्षिणापथ के। हमारे महाराज शातकर्णी का भी यही अभिप्राय है।' सन्देशवाहक ने अपनी बात को और भी स्पष्ट किया।

तभी भगवान् पतंजलि ने कहा—महाराज, अश्वमेध की बात नयी नहीं है। यह बात तो स्वयं महाकाल की इच्छा का संकेत है। महाराज को महाकाल की इच्छा का सम्मान करना चाहिए। क्षत्रियों की यही महान् परम्परा रही है। क्षात्रधर्म यही है। निर्बलों की रक्षा के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग करनेवालों का यही धर्म है। आज महाकाल की भी यही इच्छा है। जानते हैं क्यों ? जब देश पर आक्रमण करनेवाले अपने शस्त्रों का सन्धान कर रहे हैं, यहाँ शान्ति और अहिंसा का वितण्डावाद करनेवालों की भीड़ लग गई है। इसलिए स्वयं भगवान् महाकाल अश्वमेध-यज्ञ चाहते हैं। दानों में श्रेष्ठ दान अभय-दान है। युगधर्म की माँग है कि महाराज मगधपति अपनी प्रजा को अभय-दान दें। और आज के दिन अश्वमेध-यज्ञ का यही अभिप्राय है।

मगधपति ने सिर हिलाकर कहा—ब्राह्मण देवता, तुम तो लगता है कि यहाँ धर्म का सत्यानाश ही कर दोगे। अच्छा हो कि कहीं तुम आश्रम स्थापित कर लो। एक शतस्थाली भोजन मैं तुम्हें प्रतिदिन देता रहूँगा। तुम तप करो,

भिक्खु-पन्थ को स्वीकार करो, व्यर्थ में राजनीति में माथा क्यों मारते हो ! तपस्या ही तुम्हारे लिए उचित है ।

'महाराज ! हमें तो अराजकता का अन्त करना है । अराजकता कब तक चल सकती है ? तुम साधुओं के समूह बढ़ा दोगे तो बताओ फिर कृषि कौन करेगा, युद्ध कौन करेगा ? संसार को मिथ्या माननेवाली शून्यता क्या इस धरती को ही शून्य नहीं कर देगी ? तुम मुझे शतस्थाली भोजन देने की बात करते हो, परन्तु उसका बोझ कौन उठायेगा ? तुम नये विचारों का आना रोक नहीं सकते । अश्वमेध-यज्ञ भी आज की परिस्थिति में, पुराना होते हुए भी, ऐसा ही एक नवीन विचार है । काश्मीर में शिव-शक्ति का जन्म हुआ है । उधर विदर्भ में भागवत-धर्म का उदय हुआ है । यह भागवत-धर्म सभी प्रकार की अतियों का विरोधी है । महाकालवन में शातकर्णी के अश्वमेध-यज्ञ का जन्म हो रहा है । यहाँ भी उसका जन्म होगा । उसे तुम रोक नहीं सकते । परन्तु इस समय तो विचारणीय यह है कि शातकर्णी को क्या प्रत्युत्तर दिया जाये । यही कहलवाना उचित होगा कि दो अश्वमेध-यज्ञ एक साथ नहीं हो सकते । यहाँ सैन्य-महोत्सव हो रहा है । हमारी ओर से शातकर्णी को उसमें सम्मिलित होने का निमंत्रण देना ही समीचीन होगा ।'

राजा बृहद्रथ के लिए ये सब बातें नयी और विस्मयकारक थीं । वह अपनी भ्रान्तियों में मग्न, कल्पना के जगत् में विचरता रहता था । आज उसके सभी भ्रम टूट रहे थे । उसने शातकर्णी के सन्देशवाहक की ओर देखा । मूर्ख होते हुए भी इतना तो वह समझ गया था कि आज कोई उसका समर्थन नहीं करेगा और शातकर्णी के सन्देशवाहक को उसे प्रत्युत्तर देना ही होगा । इसलिए उसने पुष्यमित्र की ओर देखते हुए कहा—हाँ, पुष्यमित्र, यही प्रत्युत्तर दिया जाये कि एक साथ दो अश्वमेध-यज्ञ करने में किसी का भी गौरव नहीं....परन्तु हम यही क्यों न कहें कि मगध में अश्वमेध होता ही नहीं, और होगा भी नहीं....

'महाराज, हम यह जानने के लिए नहीं आये हैं कि आपके यहाँ अश्व-मेध होता है अथवा नहीं । दक्षिणापथ के अधिपति महाराजाधिराज शात-कर्णी ने तो केवल इस उद्देश्य से सन्देश भेजा है कि आपका कोई प्रदेशपति

अथवा सेनापति अति उत्साह में आकर हमारे अश्व को पकड़ न ले। अब समय आ गया है कि मगध के महाराज अपनी सीमाओं और अपनी मर्यादाओं को समझें और स्वीकार करें। नर्मदा-गोदावरी के पार का प्रदेश हमारा है। उधर हम किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहते। अवन्ती में आपका प्रादेशिक अग्निमित्र है। उसे समझा दीजिए। वह कोई विघ्न न डाले, अन्यथा भयंकर युद्ध छिड़ जायेगा। हमारे महाराज का इतना ही सन्देश है। यदि मगधपति को कोई सन्देश देना हो तो मैं उसे ग्रहण करने के लिए सावधान हूँ।'

'मगध में अश्वमेध नहीं होता, आन्ध्रपति से यही कहना....'

'आपके यहाँ अश्वमेध नहीं होता तो आप न करें....' सन्देशवाहक ने दो टूक उत्तर दिया।

'लेकिन यह भी सोचा है कि कलिंगराज खारवेल तुम्हारे इस कार्य को सहन कर भी सकेगा?' पुष्यमित्र का लोहे की खनक-जैसा स्वर सुनाई दिया, 'और उस समय तुम्हें मगध की सहायता की आवश्यकता हुई तो....'

'यह देखना हमारा काम है सेनापतिराज!'

'और कदाचित् तुम्हें यह भी विस्मरण हो गया है कि अवन्ती अभी मगध के शासन के अन्तर्गत है....'

'नहीं, विस्मरण तो नहीं हुआ है।' सन्देशवाहक ने कहा, 'परन्तु महाराज शातकर्णी मगध के इस दावे को स्वीकार नहीं करते।'

'जानते हो, इसका परिणाम क्या होगा?' पुष्यमित्र के स्वर में धनुष के टंकार की ध्वनि थी।

'युद्ध!' सन्देशवाहक ने अत्यन्त संक्षिप्त उत्तर दिया।

'और फिर भी इतना औद्धत्य?'

'महाराज शातकर्णी ने कहलवाया है कि पहले तुम यवन आक्रमणकारियों को तो रोक लो! शाकल प्रदेश में ही सात-सात यवन राजा बैठे हुए हैं। वे मध्यमिका नगरी की ओर बढ़ रहे हैं। पहले उन्हें रोको, अवन्ती की बात उसके बाद करना। आज तो विदर्भ भी तुम्हारा अपना नहीं रहा। महाबलाधिकृत, समझदार वही है जो सर्वस्व जाता देखे तो आधा स्वेच्छा से छोड़ दे....'

वार्त्तालाप का यह क्रम मगध के गौरव को क्षति पहुँचाने की सीमा तक चला जा रहा था। पुष्यमित्र इस क्रम को इस भाँति चन्द्रगुप्त-सभा में अधिक समय तक चलने नहीं देना चाहता था। उसने विवाद को समाप्त करते हुए कहा—अच्छी बात है; जाकर अपने महाराज से कहना कि हमें उनका सन्देश मिल गया है। अब रही प्रत्युत्तर की बात। कई सन्देश ऐसे होते हैं जिनके प्रत्युत्तर उसी समय दे दिये जाते हैं; और कई सन्देश ऐसे होते हैं जिनके प्रत्युत्तर समय स्वयं देता है। देखना है कि तुम्हारे सन्देश का प्रत्युत्तर कौन देता है—हम या समय ? तुम्हें और तो कुछ नहीं कहना है ?

'नहीं !'

'तो तुम जा सकते हो। और इस आश्वासन के साथ जा सकते हो कि जब कलिंग का दबाव तुम पर बढ़े तो मगध की ओर सहायता के लिए अपना हाथ फैला सकते हो।'

'हमें भी ठीक यही बात आपसे कहनी है महाबलाधिकृत ! यूनानी आक्रमणकारी विदेशी हैं। उन्हें पराभूत करने के लिए महाराज शातकर्णी प्रस्तुत ही है। जब भी आपको सहायता की आवश्यकता हो निःसंकोच हाथ फैलायें। आन्ध्र आपको विमुख न करेगा।'

उसने दोनो हाथ जोड़कर सारी सभा का अभिवादन किया और सिंह की भाँति उन्नत सिर जैसा आया था वैसा लौट गया। और यह स्पष्ट करता गया कि अब मगध के राज्य की कहीं कौड़ी बराबर भी कीमत नहीं रही।

उसके जाने के पश्चात् चन्द्रगुप्त-सभा एक क्षण तो स्तम्भित ही रह गई। फिर मारे चिन्ता और लज्जा के सबके मुँह काले पड़ गये। अब पहली बार लोगों की समझ मे आया कि राजा बृहद्रथ ने मगध के गौरव को किस सीमा तक मिट्टी में मिला दिया था !

और लोगों के मन में घुमड़ रहे इस विचार को मानो प्रत्युत्तर देता हुआ-सा किसी का स्वर वायुमण्डल को चीरता हुआ सुनाई दिया—महाबलाधिकृत महाराज पुष्यमित्र देव की जय हो ! सैन्य-महोत्सव मे सभी यथासमय सम्मिलित हों। सर्वत्र सैन्य-महोत्सव की घोषणा करवाई जाये। मगध के कोने-कोने में सैन्य-महोत्सव का नाद गूँजे !

जिस मगधपति ने देश के गौरव को क्षति पहुँचाई थी उसका किसी ने नाम भी नहीं लिया। यह इस बात का सूचक था कि बृहद्रथ का पराभव हुआ और एक नयी शक्ति का, नये व्यक्तित्व का उदय हो गया था या होने को था।

२५ : षड्यन्त्र

आन्ध्र के राजा शातकर्णी का सन्देश अवश्य ही बहुत धमकी-भरा था। यह भी सच था कि विदर्भ के यज्ञसेन को उसने मिला लिया था। परन्तु फिर भी मगध पर उन दोनों के तात्कालिक आक्रमण की कोई सम्भावना नहीं थी। कलिंग का राजा खारवेल यह कभी देख नहीं सकता था कि उसके रहते विदर्भ और आन्ध्र इतने शक्तिशाली हो जायें। यह स्थिति जहाँ मगध के अनुकूल थी वहीं प्रतिकूल भी। जब तक विदर्भ की पीठ पर शातकर्णी का हाथ रहता, मगध उसके विरुद्ध कुछ भी कर पाने में असमर्थ था। और इन समस्त समस्याओं का अन्तिम समाधान एक अश्वमेध ही था। लेकिन अश्वमेध के लिए सैन्य-महोत्सव आवश्यक था। चन्द्रगुप्त-सभा में उसके आयोजन का निर्णय हो ही गया था। अतएव पुष्यमित्र ने उसकी तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी थीं।

उसने मगध के सभी प्रदेशों में सैन्य-महोत्सव की घोषणाएँ करवाईं। साम्राज्य के दूरस्थ स्थानों में भी डिंडिमिका-घोष के द्वारा इस महत् आयोजन की सूचना सर्वसाधारण जनता, राज्य-अधिकारियों एवं सैनिकों तथा सेना-नायकों को दे दी गई। कोई स्थान छोड़ा नहीं गया—अंग, वंग, कोशल, विदेह, विदर्भ, अवन्ती, मध्यमिका, मथुरा, सौराष्ट्र, भृगुकच्छ—सभी स्थानों में बार-बार घोषणाएँ की गईं।

इन घोषणाओं को सुनकर मगध-राज्य की प्रजा को दो बातों का विश्वास तो अवश्य हो गया—एक तो यह कि अब भी मगध के पास विशाल सेना है, एक ऐसी सेना जो किसी भी शत्रु के दाँत खट्टे कर सकती है; और दूसरे यह कि वर्षों की नींद में सोया पड़ा मगध का सिंह जाग उठा है और पाटलिपुत्र में अवश्य किसी नूतन शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है।

घोषणा सुनते ही सारे मगध-राज्य से गज-सैनिक, अश्व-सैनिक, रथी

और पदाति पाटलिपुत्र की ओर चल पड़े। अनेक प्रदेशपति भी अपनी सेनाओं के साथ रवाना हो गये। कई पाटलिपुत्र पहुँच गये, कई मार्ग में थे और कइयों के शीघ्रातिशीघ्र पहुँचने के सन्देश आ चुके थे।

पाटलिपुत्र की ओर जानेवाले मार्गों पर भीड़ उमड़ने लगी। जंगल और बस्ती के रास्ते हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट और पैदल सैनिकों के कोलाहल से गूँज उठे। गंगा-यमुना और अन्य नदियों पर नौकाओं की भीड़ लग गई। इस सैन्य-महोत्सव में युद्ध-कौशल के साथ ही शस्त्रास्त्रों के सन्धान और संचालन के प्रदर्शनों का भी आयोजन किया गया था। देश के सभी शस्त्रास्त्र-विद्या-विशारद इसमें आमंत्रित किये गये थे। नामांकित धनुर्धर अपनी कला और विद्या के प्रदर्शनार्थ दूर-दूर से पाटलिपुत्र की ओर चले आ रहे थे।

सामान्य रूप से सारे मगध की जनता और विशेष रूप से पाटलिपुत्र के नगरजनों के आनन्द, उल्लास और उत्साह की सीमा नहीं थी। राजा बृहद्रथ के धर्माडम्बर से संत्रस्त प्रजा कुछ सुरक्षा और आश्वासन का अनुभव करने लगी। धर्म का बोलबाला अब भी कम न हुआ था। समाज पर पीत चीवर-धारी भिक्खुओं का प्रभाव अभी वैसा ही था, इन भिक्खुओं की संख्या भी कम न हुई थी; फिर भी जनसामान्य यह अनुभव करने लगा था कि देश की रक्षा बृहद्रथ की धर्म-नीति से नहीं, महाबलाधिकृत द्वारा आयोजित ऐसे सैन्य-महोत्सवों से ही की जा सकती है।

जनता उल्लसित थी; लेकिन शाकल के, और छद्मवेश धारण कर मगध तथा पाटलिपुत्र में आये हुए, यूनानी यवन बहुत ही चिन्तित हो उठे थे। कहाँ तो वह पाटलिपुत्र पहुँचकर मगध के सिंहासन पर अधिकार करने के स्वप्न देख रहे थे और कहाँ उन्हें चुनौती देता हुआ यह सैन्य-महोत्सव सामने आ खड़ा हुआ था! अतः पुष्यमित्र के इस सारे आयोजन को विफल करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगाकर वे नये-नये षड्यन्त्रों की रचना करने लगे।

उनका एक हस्तक महामात्य कौंडिन्य तो कारागार में था। वास्तव में उसे कारागार तो नहीं कहना चाहिए; वह एक तरह से नजरबन्द था। पुष्य-मित्र ने उसके किसी से मिलने पर कड़ी रोक लगा दी थी। राजा बृहद्रथ को

भी उससे निराले में नहीं मिलने दिया जाता था। परन्तु कूटनीति में प्रवीण वह धूर्त पुष्यमित्र की आँखों में धूल झोंककर अपना कार्य किये जा रहा था। फिर भी यूनानी यवन उससे सीधा सम्पर्क बनाये रखने और उसकी गति विधि से लाभान्वित होने में इस समय असमर्थ थे।

इसलिए उन्होंने अपनी सारी शक्ति और दृष्टि राजा बृहद्रथ पर केन्द्रित कर दी। उन्होंने राजा को मिलाने के लिए आकाश-पाताल एक कर दिया था। नित नये यूनानी भिक्खु सुगंगप्रासाद में आते और राजा से नित नयी धर्म-चर्चाएँ करने लगे। वे एकान्त पाते ही राजा के कान में कहते कि यदि महाराज मगधेश्वर स्वीकार करें तो धर्म-घोषणाओं के लिए वे महाराज का प्रिय और योग्य सब-कुछ कर सकते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि किसी प्रकार एक बार बृहद्रथ हत्थे चढ़ जाये तो धर्म-घोषणाएँ करते-करते मगध और पाटलिपुत्र पर अपनी सत्ता स्थापित कर दें। परन्तु दुर्बल-चित्त, संशय-ग्रस्त और अनिश्चयी राजा से उन्हें कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं मिल पाता था।

राजा बृहद्रथ एक ओर धर्म-चर्चाओं का ढोंग करता और दूसरी ओर माद्री की रूप-मदिरा में डूबा रहता। यह यवनसुन्दरी मगध पर अधिकार करने की कार्य-नीति में यूनानियों का मुख्य और महत्त्वपूर्ण मोहरा थी। राजा रात-दिन उसके नृत्य-संगीत के जलसों में पड़ा रहता था। पुष्यमित्र की सैन्य-महोत्सव की घोषणाएँ उसे किंचिन्मात्र भी नहीं सुहाई थीं। उसका बस चलता तो वह सैन्य-महोत्सव के लिए प्रचारित किये जानेवाले आदेशों के हेतु अपनी मुद्रिका का उपयोग भी न करने देता; परन्तु पुष्यमित्र उसे सदैव स्मरण कराता रहता था कि सैन्य-महोत्सव वास्तव में धर्म-महोत्सव ही है और वहाँ पारस्परिक समझ प्रस्थापित करने के लिए भिक्खुओं तथा नगरजनों के प्रतिनिधि-मण्डल भेजने का निश्चय भी किया जायेगा।

फिर पुष्यमित्र राजा बृहद्रथ की धर्म-चर्चाओं, धर्म-गोष्ठियों, धर्म-नृत्यों एवं धर्म-संगीतों के सम्बन्ध में कुछ न कहता था। उसने राजा के इन मूर्खता-पूर्ण कार्यों एवं उसके राग-रंग पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया था, लगाना चाहता भी नहीं था। वह बृहद्रथ को माद्री के मोहपाश से अभी छुड़ाना उचित नहीं समझता था। हाँ, वह राजा पर, उसके आस-पास मँडराते हुए

यूनानियों और महामात्य पर सतर्क दृष्टि अवश्य रखे था। जब तक सैनिक-व्यवस्था पूरी न हो जाये वह कुछ करना नहीं चाहता था।

महामुनि पतंजलि को सबसे अधिक भय यूनानी आक्रमणकारियों से ही था। वह तो यहाँ तक प्रस्तुत थे कि यदि कलिंग अथवा आन्ध्र के सम्मुख झुकना भी पड़े तो अभी झुक लिया जाये। सबसे पहले वह अपने घर को संगठित करना, उसके बाद यूनानियों से निपटना और तब शातकर्णी, खारवेल और यशसेन से सुलझना चाहते थे। उनका कार्यक्रम था कि पहले सैन्य-महोत्सव सम्पन्न किया जाये और उसके तत्काल बाद एक केन्द्रीभूत चक्रवर्ती शासन का वातावरण निर्माण करने के लिए अश्वमेध-यज्ञ का अश्व छोड़ दिया जाये।

भारत में पुनः चक्रवर्ती शासन स्थापित करने की चिन्ता अकेले महामुनि पतंजलि को ही नहीं, पुष्यमित्र, आन्तर्वंशिक मित्रदेव और अग्निमित्र को भी थी। सैन्य-महोत्सव एक प्रकार से उस अन्तिम लक्ष्य की पूर्व घोषणा ही थी।

जैसे-जैसे सैन्य-महोत्सव का दिन निकट आता गया, प्रजा का उत्साह भी उसी मात्रा में बढ़ता गया। चारों ओर जागृति, जोश, प्राचीन गौरव की बातें और आत्माभिमान दृष्टिगोचर होने लगे। सैनिक-प्रबन्ध कुछ कड़े कर दिये गये। पाटलिपुत्र के नगर-दुर्ग की मरम्मत का कार्य प्रायः पूर्ण हो चला। गुप्तचरों की हलचल और गति-विधियाँ बहुत बढ़ गईं। वे प्रत्येक आने-जाने-वाले पर दृष्टि रखने लगे। सारे पाटलिपुत्र का वातावरण ही बदल गया।

यूनानियों को अभी तक आशा थी कि सम्भवतः सैन्य-महोत्सव नहीं हो सकेगा। लेकिन जब उन्होंने अपनी इस आशा को विफल होते देखा तो अन्त में यही निश्चय किया कि सैन्य-महोत्सव के ठीक एक दिन पहले रात में राजा बृहद्रथ को गायब कर दिया जाये। दूसरे दिन सवेरे जब मगधपति ही नहीं होगा तो सैन्य-महोत्सव कैसे हो सकेगा? राजा को अपने बीच न पाकर अन्धाधुन्धी मच जायेगी, लोग उसकी शोध-खोज में भाग-दौड़ करने लगेंगे। उस समय यह अफवाह उड़ाई जा सकेगी कि अधार्मिकों ने राजा का वध कर डाला है। राजा के समर्थक भिक्खुओं की नगर में कोई कमी नहीं थी। प्रजा पर उनका प्रभाव भी था। धर्म के द्रोह की बातें करके बड़ी सरलता से विद्रोह

आरम्भ किया जा सकता था। जिस जनमत को पुष्यमित्र ने इतने परिश्रम से अनुकूल किया था, उसे बड़ी सरलता से प्रतिकूल किया जा सकत था।

सैन्य-महोत्सव आरम्भ हो जाने के बाद तो कुछ भी नहीं हो सकता था। तब राजा को भगा ले जाना असम्भव ही था। आशंका यही थी कि राजा बृहद्रथ बन्दी बना लिया जाता। और जब राजा ही न रहता तो क्या माद्री करती और क्या यूनानी यवन करते और क्या धर्मवादी भिक्खु करते!

इसलिए यूनानियों के परामर्श के अनुसार यवनसुन्दरी माद्री ने सारी योजना तैयार कर ली। दो महाजव (पवनवेगी) अश्व, सुगंगप्रासाद के पृष्ठभाग में, दुर्ग से बाहर जानेवाली उस गुहा के मुख पर, जो हिरण्यगुहा को जोड़ती थी, खडे रखने का निश्चय किया गया। दोनों महाजव अश्व वास्तव मे पवनवेगी थे। जब तक उनकी पीठ पर कोई सवार न होता वे पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़े रहते; लेकिन जैसे ही कोई उन पर सवार हो जाता वे पवन की भाँति उड़ चलते।

रात आधी बीत चली थी। सवेरा होते ही सैन्य-महोत्सव आरम्भ हो जायेगा। सारा नगर, सैनिक और अधिकारी उत्सव की तैयारियों में संलग्न थे। ऐसे समय चार व्यक्तियों ने सुगंगप्रासाद के पिछले भाग में दुर्ग के पार ले जानेवाली हिरण्यगुहा से सम्बन्धित सुरंग में चुपचाप प्रवेश किया। उनमें एक था महामात्य कौंडिन्य, दूसरा था राजा बृहद्रथ, तीसरा था सुमित्र और चौथी माद्री थी।

सुरंग में काफी अन्दर चले आने के बाद चारों एक स्थान पर बैठ गये और अपने अगले कार्यक्रम के बारे में विचार-विनिमय करने लगे।

२६ : हिरण्यगुहा में

यह वही हिरण्यगुहा थी जो सुगंगप्रासाद के नीचे, जमीन के अन्दर, गंगा आर शोण के संगम तक चली गई थी। इसका एक मुँह सुगगप्रासाद के पीछेवाले उद्यान में था और दूसरा दुर्ग के बाहर दोनों नदियों के संगम पर स्थित विशाल वन में। एक समय था जब पाटलिपुत्र के नन्द राजा अपना स्वर्ण-भंडार इसी गुहा में रखते थे।

उन दिनों इस गुहा की शोभा, ख्याति और महत्त्व कुछ अलग ही था। नन्द का स्वर्ण-भंडार यहाँ होने के ही कारण इसे हिरण्यगुहा कहा जाता था। इतना स्वर्ण यहाँ रहता था कि देखनेवाला या तो उन्मत्त होकर हँसने लगता, या उद्विग्न होकर धाड़ें मारने लगता। वैसे भी मनुष्य इस संसार से या तो हँसते या रोते हुए ही विदा होते हैं। हिरण्यगुहा में आकर भी वे या तो रोते थे या हँसते थे। हँसते तो यह देखकर थे कि अरे, इतना स्वर्ण यहाँ पड़ा है और मैं इसे देख सकता हूँ, छू सकता हूँ। वह अपार स्वर्ण-राशि उनका मानसिक सन्तुलन स्खलित कर देती थी और वे कहकहे लगाने लगते थे। रोते इसलिए थे कि हाय, इतना स्वर्ण यहाँ पड़ा हुआ है और हम इसे साथ ले नहीं जा सकते; स्वर्ण यहीं रह जायेगा और हमें इस लोक से रीते हाथों चले जाना होगा। यह विचार उन्हें इतना विषण्ण और शोकाकुल कर देता था कि वे धाड़े मार-मारकर रोने लगते थे और उनके आँसुओं का तार टूटता न था। उन दिनों इस शापित गुहा ने कितनों को ही पागल किया था। नन्दराज अपने अधिकारियों और राजपुरुषों को दण्ड देने के लिए भी इस गुहा का उपयोग करते थे। जब किसी का वध करना उन्हें अभीष्ट न होता तो उसे इस गुहा में भेज दिया जाता। वह यहाँ का अपार स्वर्ण-संग्रह देखकर पागल हो जाता और किसी काम,का न रहता था।

अब तो वह जमाना बीत गया था। स्वर्ण-कोष वहाँ रहा नहीं था। बचे रह गये थे केवल पत्थर। गुहा में लगे हुए संगमरमर पर जब प्रकाश प्रतिबिम्बित होता तो वहाँ की शोभा और सौन्दर्य देखते ही बनता था। अब उसमें प्रवेश करनेवाले द्वार पर उतना कड़ा नियन्त्रण और प्रतिबन्ध भी नहीं था। नन्दों के समय वहाँ अहर्निश प्रतिहारी रहते और द्वार को खोलने-बन्द करने की यांत्रिक व्यवस्था थी। गुहा में भी एक मूक-बधिर रक्षक रहता था। इन दिनों न द्वार पर प्रतिहारी रहते, न द्वार खोलने-बन्द करने की यान्त्रिक व्यवस्था थी और न अन्दर कोई रक्षक ही रहता था। सुगंगप्रासाद के अन्दर से एक सुरंग के द्वारा इस गुहा में अब बड़ी सरलता से प्रवेश किया जा सकता था। इस सुरंग पर अवश्य चौकी-पहरा रहता था। पहले हिरण्यगुहा में जल भरा रहता और तैरकर, पानी मे चलकर अथवा नौका मे बैठकर ही उसमें

प्रवेश किया जा सकता था। लेकिन इन दिनों वहाँ पानी नहीं था और आदमी बड़े मजे से सीधा खड़ा होकर अन्दर चल सकता था।

इधर कुछ दिनों से मंत्र तंत्र के समर्थक वज्रयानी बौद्ध साधु-संन्यासी अपनी साधनाओं एवं ध्यान-धारणाओं के लिए इस हिरण्यगुहा का उपयोग करने लगे थे। उन्होंने और उनके भक्तजनों ने गुहा के अधिकाश भाग को धवल आलेपन से सुशोभित कर दिया था। हाल ही में एक अत्यन्त ख्याति-प्राप्त तान्त्रिक बौद्ध महात्मा आकर इस गुहा में रहने लगे थे। उनकी सिद्धियों और चमत्कारों के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी बातें कही जाती थीं। वह भूत, भविष्य और वर्तमान को हस्तामलकवत देख सकते थे। वह किसी से भी कितने ही योजन के अन्तर पर रहकर वर्त्तालाप कर सकते थे। उनका नाम भदन्त संघरक्षित था। वह किसी से मिलते-जुलते न थे। गुहा के एक निभृत कोने में बैठे अपनी ध्यान-धारणा में लीन रहते थे। माद्री अकेले में उनसे कई बार मिल आई थी और गुहा के अन्दर के मार्ग को भी देख आई थी।

कुछ देर तक सुरंग मे बैठे रहने के पश्चात् माद्री ने सहसा खड़े होते हुए महामात्य कौंडिन्य और सुमित्र से कहा—महाराज का मन अब भी दुविधा में है। और शास्त्रों में कहा है कि संशयात्मा विनश्यति। इसलिए मैं जाकर भदन्त संघरक्खित से पूछ आतो हूँ। वह तो भूत, भविष्य और वर्तमान को हस्तामलकवत देख सकते हैं। वह बता सकेंगे कि हमारे लिए आगे कोई विघ्न तो नहीं है और हम गुहा को सकुशल पार कर बाहर वन में निर्विघ्न जा तो सकेंगे। भदन्त संघरक्खित के भविष्य-कथन से महाराज के संशय नष्ट होंगे, द्विधा शान्त होगी। मैं अभी पूछकर आती हूँ ...

और वह सुरंग में अकेली हिरण्यगुहा की ओर चल दी। वहाँ गुहा को जोड़नेवाले द्वार पर एक प्रतिहारी खड़ा था। उसने दीपशलाका उठाकर माद्री को देखा और देखते ही पिघलकर मोम बन गया। माद्री ने अपना कमल-जैसा सुन्दर हाथ उसके कन्धे पर रखते हुए प्रेम-मधुर स्वर में कहा—प्रतिहारी, कुशल से तो हो? मैं भदन्त धर्मरक्खित से मिलने जा रही हूँ। तुम तब तक यहीं खड़े रहना।

प्रतिहारी को तो मानो संदेह स्वर्ग मिल गया। वह मंत्र-मुग्ध की भाँति

एक ओर हट गया। माद्री ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा तथा गुहा के अन्दर चली गई।

अन्दर कुछ-कुछ अन्तर पर दीपिकाएँ जल रही थीं। स्फटिक शिलाओं पर उनका प्रकाश प्रतिबिम्बित होकर एक अनोखे सौन्दर्य की सृष्टि कर रहा था। दीपिकाओं की आलोक-माला गुहा की छत से बहती जलधाराओं में प्रतिबिम्बित होती वैदूर्य मणियों, रत्नों, पुखराजों और माणिक्यों का भ्रम उत्पन्न कर रही थी।

प्रकाश के प्रत्यावर्तन से उद्भूत उस सौन्दर्य-सृष्टि को निहारती हुई माद्री गुहा में आगे बढ़ी। वह सोचती जा रही थी कि नन्दों के समय में यहाँ कितना ऐश्वर्य रहा होगा! और आज भी भारत में कितना ऐश्वर्य और धन-सम्पदा है। यदि यूनानियों को उस ऐश्वर्य का स्वामी बनने का अवसर मिल जाये तो....

तो मेरा कार्य समाप्त हो और मैं अपने प्रियतम से जा मिलूँ!

माद्री ने मगधपति बृहद्रथ और अग्निमित्र के पुत्र सुमित्र के मन में यह भ्रम उत्पन्न कर रखा था कि वे दोनों ही उसके प्रियतम हैं। वह बारी-बारी से उन दोनों की प्रियतमा बनने का ढोंग भी करती थी। लेकिन यह केवल उसकी प्रवंचना थी। उसका वास्तविक प्रियतम तो काश्मीर के किसी शान्त ग्राम में अपनी भेड़-बकरियों के साथ फल-फूलों की खेती में लगा उसके आने की बाट जोह रहा था।

माद्री अपने राजा और अपने देश की पुकार पर अपने मन के राजा को छोड़कर भारत में यूनानी साम्राज्य की स्थापना के महत् कार्य में अपना योग देने के लिए घर से निकल पड़ी थी। वह उन नारियों में थी जो देश पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती हैं। सामान्यतः ऐसी नारियों का कोई व्यक्तिगत जीवन और व्यक्ति विशेष के प्रति प्रेम नहीं होता। वह तो वरण करती हैं अपने उद्देश्य का और उसी की उपलब्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहती हैं। परन्तु माद्री की यह विशेषता थी कि वह देश की विजय के लिए रूपांगना होते हुए भी अपने प्रियतम की प्रियतमा थी। जब भी उसे एकान्त मिलता वह अपनी हृदय-गुहा के कपाटों को अवरुद्ध करके उसके साथ प्रेमा-

लाप में संलग्न हो जाती थी। उसकी रूप-माधुरी का उद्गम भी हृदय-गुहा में अवस्थित प्रियतम के प्रति उसका उत्कट प्रेम ही था।

उसका वह प्रियतम निर्धन था, परन्तु वह उस पर हजार प्राण से निछावर थी। राजाधिराज भी उसके आगे हेच थे। वह उसे छोड़कर कभी न आती, यदि देश और उसके राजा का आदेश न होता।

माद्री जिस देश की रहनेवाली थी वहाँ देश और उसके राजा का आदेश सर्वोपरि समझा जाता था। यूनानियों के लिए देश पहले था और व्यक्ति उसके बाद। देश के हित के लिए जिस कार्य को भी उठाया जाता, उसे अधूरा छोड़ा नहीं जा सकता था। देश-हित के कार्य से भागनेवाला, उसे अधूरा छोड़कर चले जानेवाला अत्यन्त कायर और अधम प्राणी माना जाता था। शाकलपति यूनानी राजा मिनेण्डर ने माद्री को आदेश दिया था कि वह देश के हित के लिए या तो मगध के राजा बृहद्रथ को लुभाकर यहाँ ले आये या उसका वध कर दे, जिसमें पाटलिपुत्र में अराजकता फैल जाये और यूनानियों को मगध पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त हो सके। माद्री इसी लिए यहाँ आई थी। वह भी एक सैनिक की भाँति रणक्षेत्र में थी। भारत की ही भाँति यूनानी योद्धा भी रणक्षेत्र का परित्याग नहीं कर सकता था। भारत का पराजित सेनापति जल-समाधि लेता था, यूनान के पराजित सेनापति को विषपान करना पड़ता था। माद्री के सामने भी और कोई मार्ग न था। या तो सफलता प्राप्त करे या विषपान करे। सारे यूनान देश की दृष्टि उस पर लगी हुई थी। काश्मीर की किसी घाटी में उसका प्रियतम उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। आज की रात यदि वह बृहद्रथ को भगा ले गई या उसका वध कर सकी तो देश की विजय के साथ माद्री की व्यक्तिगत विजय भी निश्चित थी।

वह हिरण्यगुहा में आगे बढ़ती गई। थोड़ी दूर जाने पर उसे छोटी-छोटी कोठरियाँ दिखाई दीं। इन्हीं कोठरियों में बौद्ध भिक्खु पद्मासन लगाकर ध्यान-धारणा किया करते थे। प्रायः सभी कोठरियाँ इस समय खाली थीं। केवल एक कोठरी में एक साधु पद्मासन लगाये नासाग्र पर त्राटक किये बैठा था। वह इस भाँति ध्यानावस्थित था कि दूर से देखने पर प्रस्तर मूर्ति ही मालूम पड़ता।

माद्री उस संन्यासी के समक्ष खड़ी हो गई और प्रणाम करके बोली—भदन्त संघरक्खित, क्या बात है ? राजा बृहद्रथ का मन अब भी दुविधा में है। वह डर रहा है कि देश का परित्याग करके जानेवाले के नाम पर यावच्चन्द्रदिवाकरौ कलंक की कालिमा पुती रहेगी।

साधु संघरक्खित ने त्राटक का उच्चाटन किये बिना ही उत्तर दिया—और जो देश का परित्याग नहीं करेगा वह यावच्चन्द्रदिवाकरौ अधार्मिक और धर्म का विध्वंस करनेवाला समझा जायेगा। यह पुष्यमित्र ब्राह्मण बड़ा ही भयंकर है। उसकी वाणी में अहंकार है। वह अहिंसा धर्म का विध्वंस करना चाहता है। पतंजलि-जैसा बौद्ध धर्म का शत्रु उसका सहायक है। ये दोनो मिलकर यहाँ कौटिल्य की परम्परा को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। यदि मगधपति ने देश का परित्याग नहीं किया तो ये दोनो उसी के हाथों धर्म का विध्वंस करायेंगे और अन्त में उसे भी मार डालेंगे। धर्म, संघ और भिक्खुओं का विनाश मुझे हस्तामलकावत दिखाई दे रहा है। आज ही दुष्टों ने एक निरपराध भिक्खु का वध कर डाला ...

'क्या कह रहे हैं आप ? क्या सच ही किसी बौद्ध भिक्खु का वध किया गया ? किसने वध किया भगवान् बुद्ध के अनुचर का ?'

'हाँ माद्री, मुझे तुम्हारे प्रतिहारी ने ही बताया। हत्यारा कौन था, इसका तो अभी पता नहीं चला। अराजकता और अव्यवस्था के अतिरेक मे यह कब पता चलता है कि किसने किसकी हत्या की ! ऐसे समय तो पारस्परिक अविश्वास ही एक-दूसरे की हत्या का कारण होता है। आज वातावरण ही विषमय हो उठा है। मैं तो देख रहा हूँ कि एक कांस्य कार्षापण के लिए भी मनुष्य की हत्या की जाने लगेगी। ऐसी परिस्थिति मे मगधपति यहाँ रहे तो उनकी हत्या भी तुम निश्चित जानो।'

'उसका मारा जाना तो हमारे हित में ही होगा भदन्त। परन्तु वह इस भाँति मारा जाये कि हमें पाटलिपुत्र पर अधिकार करने मे उसकी हत्या से सहायता मिले। इस समय वह द्विधा मे पड़ा हुआ है। उसकी दुविधा को मिटाने के लिए मैं उसे आपके पास लाऊँगी। आप उसे उसका भविष्य बतायें। वह दूसरा अशोक बनना चाहता है। बौद्ध धर्म, संघ और वाङ्मय में

अशोक का स्थान प्राप्त करने की उसकी आकांक्षा है। वह एक बौद्ध परिषद् भी करना चाहता है। परन्तु उसके सेनापति ने हमारी सारी योजनाओं पर पानी फेर दिया है। सैन्य-महोत्सव के नाम पर उसने पाटलिपुत्र में सारे मगध-साम्राज्य की सेनाओं को ला जमा किया है। वह कोई सैनिक कारवाई कर सके उसके पहले हमें मगध पर वज्राघात करना होगा। और वह वज्राघात दो ही रूप में हो सकता है—या तो मगधपति को भगा दिया जाये या उसका वध कर दिया जाये।'

'क्या कोई विकल्प नहीं?'

'नहीं, और कोई विकल्प नहीं है।'

'पर उसका वध कौन करेगा?'

'उसके लिए मैंने अपने एक प्रेमी को प्रस्तुत किया है। मेरा एक प्रेमी दूसरे प्रेमी का वध करेगा, जिससे मेरे तीसरे प्रेमी को प्रसन्नता और परितोष होगा।' यह कहकर माद्री हँस दी। उसकी स्वर्ण किंकिणियों-जैसी मधुर हँसी से हिरण्यगुहा का कोना-कोना मुखरित हो उठा। उस हँसी को सुनकर साधु संघरक्खित के त्राटक का भी उच्चाटन हो गया। उसके मन ने कहा कि जो नेत्र इतनी मधुर हँसी हँसनेवाली सुन्दरी को न देखें उनका होना न होने के समान है। वह त्राटक का उच्चाटन कर अपनी आँखों को पूरा खोले माद्री की ओर देखने लगा। संघरक्खित की उस दृष्टि को देखकर माद्री ने अपने रूप-सौन्दर्य की विजय का अनुभव किया और बोली—भदन्त, आपको एक काम करना होगा। राजा बृहद्रथ से आपको यह कहना होगा कि माद्री नामक इस रमणी के हाथ की रेखाओं में महाराज अशोक से भी अधिक प्रतापी और धार्मिक पुत्र का योग लिखा हुआ है; जो सौभाग्य अशोक के पिता बिन्दुसार को उपलब्ध हुआ था उससे कहीं बड़े सौभाग्य के अधिकारी आप हो सकते हैं। भदन्त, आप उससे यह भी कहेंगे कि भारत के एक चक्रवर्ती धार्मिक राजा आप होंगे और साथ ही एक चक्रवर्ती धार्मिक राजा के पिता भी बनेंगे। आपको कहना होगा कि इस रमणी के हाथ की रेखाओं में भारत के धर्म-चक्रवर्ती की माता बनने का योग लिखा है।

भिक्खु संघरक्खित ने माद्री की फैली हुई हथेली को अपने हाथ में लेकर

देखते हुए कहा—कहाँ लिखा है तुम्हारे हाथ में यह सब ?

'लिखा-विखा कुछ नहीं है भदन्त, मैं जानती हूँ। परन्तु राजा बृहद्रथ की ऐसी ही महत्त्वाकांक्षा है। वह स्वयं भारत का धर्म-चक्रवर्ती बनना चाहता है। धर्म-चक्रवर्ती पुत्र के पितृत्व का प्रलोभन देकर ही उसकी दुविधा को मिटाया जा सकता है। तभी वह मेरे साथ देश का परित्याग करने को प्रस्तुत होगा। हिरण्यगुहा के द्वार पर मैंने दो पवनवेगी अश्वों का प्रबन्ध कर रखा है। महावन में निकट ही यूनानी योद्धा हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक बार राजा को यहाँ से निकाल ले जाऊँ अथवा उसका वध करवा दूँ तो पुष्य-मित्र की सारी योजना पर पानी फिर जायेगा। उसका सैन्य-महोत्सव धरा रह जायेगा। केवल कुछ ही घटिकाओं का समय अब हमारे पास शेष है। सूर्यो-दय के साथ तो सैन्य-महोत्सव प्रारम्भ हो जायेगा। फिर कुछ भी नहीं किया जा सकेगा। तब तो हम सभी बन्दी कर लिये जायेंगे। स्वयं मुझे भी उसके पहले यहाँ से पलायन कर जाना चाहिए। इसलिए भदन्त, आपको राजा बृहद्रथ से यह बात कहनी ही होगी। आप उसको जितना ही प्रलोभन देंगे हमारा कार्य उतना ही सरल होगा। मैं अभी उसे लिये आती हूँ। बस, लेकर आई....'

माद्री यह कहती हुई दौड़ी चली गई। वह तो चली गई परन्तु उसके शब्द भिक्खु संघरक्खित के कानों में गूँजते और हृदय में प्रतिध्वनित होते रहे। वह त्राटक की साधना को भूलकर बड़ी देर तक वैसे ही बैठा रह गया।

२७ : माद्री ने क्या कहा ?

मिथ्यावादी अहंकारी आदमी कभी वास्तविकता को देख नहीं पाता। वह मूर्ख सदैव भ्रान्तियों में पड़ा रहता है। उसे अपनी नाक के नीचे की धरती भी नहीं दिखाई देती। इसी लिए जब वह गिरता है तो चारों खाने चित हो जाता है और उसकी पूरी शक्ति टूट जाती है। मगधपति का भी यही हाल था। वह यही मानता था कि महाराज अशोक से भी महान् भविष्य स्वयं उसका अपना है और वह भारत के इतिहास में अपना नाम अमर कर जायेगा। वह यह भी मानता था कि स्वयं उससे अधिक धार्मिक और बुद्धिमान राजा

भारत में न पहले कभी हुआ, न आगे कभी होगा। माद्री ने उसके इसी मिथ्या अहंकार को जगाकर अपना उद्देश्य सिद्ध करने का निश्चय किया था।

वह हँसती-मुस्कराती राजा बृहद्रथ के निकट आ खड़ी हुई और प्रेम-मधुर वाणी में निमंत्रण-सा देती हुई बोली—महाराज सुनिए...

राजा शीघ्रतापूर्वक उठा और उसके समीप आकर खड़ा हो गया। माद्री ने उसके कान में कुछ कहा ! राजा चौंक पड़ा और उच्च स्वर में बोला – परन्तु छान-बीन तो कर ली है ? किसने की है छान-बीन ?

'सभी प्रतिहारियों ने, सभी यवनियों और सभी सैनिकों ने। गुहा के द्वार पर कोई नहीं है। वहाँ से आगे वनपथ पर और वन में भी कोई नहीं है। यहाँ रहने पर तो आपकी वही गति होगी जो आज एक बौद्ध भिक्खु की हुई। महाराज, आपका यह ब्राह्मण सेनापति यहाँ स्थिर होने भी नहीं पायेगा और हम यूनानी सेना के साथ लौट भी आयेंगे। इसके अतिरिक्त न हमारे लिए, न मगध एवं पाटलिपुत्र के लिए और न महाराज, जिसे प्राणों से भी प्रिय समझते हैं, ऐसे धर्म के ही लिए कोई मार्ग है।'

लेकिन ठीक निर्णय के समय, अपनी स्वाभाविक दुर्बलता के कारण, महाराज मगधपति का मन डगमगाने लगा। वह पक्का निर्णय तो कभी कर ही नहीं सकता था। माद्री इस बात को जानती थी। इसलिए उसने राजा को अपने आलिंगन में आबद्ध करके कहा—महाराज, भविष्य तो हमारा है। देखिए मेरे इस हाथ को....

राजा बृहद्रथ ने माद्री के उस कमल-जैसे सुन्दर हाथ को अपने हाथ में लेते हुए पूछा—क्या है इस हाथ में ?

'ओहो, जैसे जानते ही नहीं !' माद्री ने अपनी भौंहों को आकर्षक ढंग से नचाते हुए कहा, 'इस हाथ में जो लिखा है वह आपको भदन्त संघरक्खित बतायेंगे। बड़े सिद्ध साधु हैं वह। उन्होंने मुझे बताया है कि पाटलिपुत्र में सम्राट् अशोक से भी महान् नरपति अवतरित होगा। देखिए मेरी इस हस्त-रेखा को।'

'क्या देखूँ इसमें ? मुझे तो कुछ नहीं दीखता।'

'जाइए, मैं आपसे नहीं बोलती।' माद्री ने मानखंडिता का अभिनय करते

हुए कहा, 'इस तरह कह रहे हैं, मानो भोले शिशु हों ! परन्तु महाराज, अब अधिक विलम्ब करना ठीक नहीं। प्रातःकाल होने को ही है। कहीं हम इस गुहा में ही न रह जायें....'

'परन्तु तुम्हारे हाथ में क्या लिखा है, माद्री, पहले यह तो बताओ ?'

'यदि महाराज के इन ओठों का अमृत' माद्री ने राजा बृहद्रथ के ओठों पर अँगुली फेरकर दूसरे हाथ से अपने ओठों की ओर संकेत किया, 'इन ओठों के अमृत से मिल जाये महाराज, तो भावी मगधपति हम दोनों की भाग्य-लिपि का मूर्त लेख बनकर अवतरित होगा। भदन्त संघरक्खित ने मुझसे यही कहा है। और उनका कहा कभी असत्य नहीं हो सकता। इसलिए महाराज, चलिए, हम यहाँ से शीघ्रतापूर्वक भाग चलें। एक महान् भविष्य की रक्षा करने का गुरुतर भार हम पर है। परन्तु महाराज, अपनी इस प्रेमिका से कहीं छल न करें ! गुहा के द्वार पर पहुँचकर कहीं लौट न पड़ें।'

यह कहकर उसने राजा बृहद्रथ के गाल को हौले से थपथपा दिया—महाराज में धर्म-वीरता सम्राट् अशोक की, परन्तु धूर्तता खलनायक की है। तभी तो पाटलिपुत्र की रमणियाँ महाराज का दर्शन करने के लिए इतनी व्याकुल रहती हैं ! जब प्रजा महाराज की सन्तान को देखेगी तो चकित ही रह जायेगी। पर ओह, कितनी धूर्तता ! अपना भविष्य महाराज से छिपा हुआ नहीं है। अनेकों के मुँह से अनेक अवसरों पर सुन चुके हैं, जानते हैं, फिर भी अनजान बनकर मुझसे पूछ रहे हैं। यह धूर्तता नहीं तो क्या है ? मैं भी कितनी मूर्खा और भोली हूँ ! भदन्त संघरक्खित के मुँह से सुनते ही हर्ष से बावली हो उठी और दौड़े आकर महाराज से कह दिया। निस्सन्देह महाराज का पुत्र पिता से महान् होगा, होना भी चाहिए....परन्तु महाराज, मगध की पटरानी मुझी को बनाना होगा। मैं किसी को उस पद पर आसीन न होने दूँगी, यह अभी से कहे देती हूँ। अब महाराज, विलम्ब न करें, शीघ्र धावमान हों।

राजा बृहद्रथ ने इस भाँति कहा मानो कोई सुरम्य स्वप्न देख रहा हो—तो चलो माद्री, यवनसुन्दरी माद्री, भाग चलें। कहीं तुम दूसरी हेलेन तो नहीं हो ! एक हेलेन आई थी महाराज चन्द्रगुप्त के समय; दूसरी आई हो तुम।

'हो सकता है देवी हेलेन और उनके प्रेम ने ही मुझे प्रेरित किया हो ...

और माद्री वहाँ से उस स्थान पर भागी गई जहाँ महामात्य कौडिन्य और सुमित्र बैठे हुए थे। कौडिन्य उसे देखते ही उठकर खड़ा हो गया। माद्री ने उसे सारी योजना समझाकर सुमित्र को जगाया। वह सो नहीं रहा था, परन्तु जाग भी नहीं रहा था। वह विचारों में खोया हुआ था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि माद्री के किस रूप को यथार्थ समझे? वह माद्री यथार्थ है जो राजा बृहद्रथ से प्रेम करती है या वह यथार्थ है जो स्वयं उससे प्रेम करती है, या कुछ भी यथार्थ नहीं है!

परन्तु माद्री तो पुरुष के रोम-रोम से परिचित थी। एक ही दृष्टि में वह पुरुष का आसन पा जाती और तब उसे जिस कल चाहती उठाती-बिठाती थी। और अपने पर अनुरक्त पुरुष की तो वह नाक में नकेल ही डाल देती थी। मगधपति के अड़ियल घोड़े-जैसे मन को उसने सरपट दौड़ा दिया था। महामात्य कौडिन्य को भी गुहा-द्वार की ओर धकेल दिया था। अब उसने सुमित्र का हाथ पकड़कर उससे कहा—उठो प्रियतम, अब हमारा प्रेम-मिलन होने में अधिक विलम्ब नहीं है। मिलन की वेला आ रही है। कहीं तुम्हारे पाँव डगमगा न जायें, कहीं तुम्हारा हृदय दयार्द्र न हो उठे। ऐसी गति और इतने वेग से तुम्हें कार्य करना होगा कि विद्युत भी तुलना में ठहर न सके। जानते हो न....

'नहीं, मैं कुछ नहीं जानता।'

'तो सुन लो और भली प्रकार समझ लो। वह चला जा रहा है गुहा के बहिर्द्वार की ओर। बिना इधर-उधर या पीछे की ओर देखे वह चला जा रहा है। आओ, हम भी उसके पीछे-पीछे चलें। चलते हुए मार्ग में मैं तुम्हें बताती चलती हूँ कि क्या करना होगा। चलो प्रियतम, प्रातःकाल होने ही वाला है....'

माद्री के प्रेम-भरे शब्दों को सुनकर सुमित्र मंत्राहत की भाँति उठ खड़ा हुआ और उसके साथ चलने लगा।

'हाँ प्रियतम, प्रातःकाल होने ही वाला है—हमारे प्रेम का भी और गुहा के बाहर प्रकृति के दूसरे दिन का भी। चलो, शीघ्रतापूर्वक चलो और जो मैं कहती हूँ उसे ध्यान देकर सुनो। वहाँ गुहा के बहार द्वार पर ही दो पवन-

पंखी अश्व खड़े मिलेंगे। असल काम्बोजी अश्व हैं वे। जब तक कोई उन पर सवार नहीं होता वे पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़े रहते हैं, परन्तु जैसे ही किसी ने सवारी की वे पवन-वेग से उड़ चलते हैं। इसी लिए उन्हें पवनपंखी अश्व कहा जाता है। एक बार वे दौड़ने लगे तो फिर मजाल नहीं कि कोई उन्हें पा सके। पुष्यमित्र की समस्त सेना मिलकर भी उन्हें पकड़ नहीं सकती। श्रेष्ठतम धनुर्धर अपनी पूरी शक्ति लगाकर बाण चलाये तो भी वह उन पवन-पंखी अश्वों से पीछे ही रह जायेगा। प्रकाश की रेखा की भाँति केवल उनकी गति का आभास होता है, पर दौड़ना आरम्भ करने के पश्चात् वे देखे नहीं जा सकते! ऐसे दो पवनपंखी अश्व वहाँ गुहा के द्वार पर खड़े हैं। गुहा के द्वार पर पहुँचने के साथ ही तुम्हें राजा बृहद्रथ पर आघात करना होगा। तनिक-सा विलम्ब और किंचिन्मात्र असावधानी अभी तक के सारे किये-कराये पर पानी फेर देगी। राजा का भविष्य अन्धकारमय है। वह भीरु है। संशय से भरा हुआ है। गुहा-द्वार पर पहुँचकर वह काँपने लगेगा। बाहर निकलना न चाहेगा। तुम उस पर सतर्क दृष्टि रखना। वहाँ पहुँचते ही तुम मेरी ओर देखना और मेरा संकेत पाते ही, यदि वह बाहर जाने में अनाकानी करे तो अविलम्ब उसका वध कर देना। सारा कार्य त्वरित गति से पूरा करना होगा। कार्य समाप्त होते ही हमारे प्रेम-जीवन का सूर्योदय हो जायेगा। वहाँ खड़े दो अश्वों में एक तुम्हारे लिए है और दूसरा मेरे लिए। लेकिन विलम्ब हुआ तो हमारे नवजीवन का सूर्योदय कभी होने ही नहीं पायेगा। अब जल्दी-जल्दी पाँव उठाओ। मुझे जो कहना था वह मैं कह चुकी। आगे सारी बात बनाना या बिगाड़ना तुम्हारे हाथ में है। चलो, दौड़कर चलें....'

और वह सुमित्र का हाथ पकड़े भागती हुई हिरण्यगुहा में प्रविष्ट हो गई।

सब से आगे राजा बृहद्रथ चल रहा था। महामात्य कौंडिन्य उसके पीछे था। माद्री और सुमित्र एक-दूसरे का हाथ पकड़े सबके पीछे थे। कोई कुछ बोल नहीं रहा था। सभी अपने विचारों में लीन चुपचाप चले जा रहे थे। थोड़ी दूर जाने पर माद्री ने सुमित्र का हाथ छोड़ दिया और राजा बृहद्रथ के साथ हो गई। फिर राजा का साथ छोड़ कौंडिन्य की बगल में चलने लगी।

माद्री ने पीछे की ओर मुड़कर देखा और हाथ हिलाकर सुमित्र को अपने निकट बुलाया। वह झपटता चला आया। माद्री ने एक ऐसी प्रेम-पूरित दृष्टि से उसे देखा कि वह चुपचाप पालतू कुत्ते की भाँति उसके साथ हो लिया।

अब तीनों साथ-साथ चल रहे थे। अकेला कौंडिन्य ही पीछे रह गया था। माद्री को उसकी कोई विशेष चिन्ता थी भी नहीं। रहे वह पीछे ही!

थोड़ी ही देर में तीनों गुहा के द्वार पर पहुँच गये। बाहर अब भी घनान्धकार था। वन में झिल्लियाँ झनकार रही थीं।

गुहा-द्वार तक ले जानेवाली सीढ़ियों के निकट आकर सब क्षण-भर को ठिठक गये। चारों में से कोई कुछ न बोला। यह पहले ही निश्चित हो गया था कि जैसा माद्री कहेगी सब वैसा ही करेंगे। माद्री ऊपर चढ़ी और बाहर झाँककर देखा। पत्थर की मूर्ति की भाँति दो अश्व वहाँ खड़े हुए थे। उसने और भी अँधेरे में घूरकर देखा, परन्तु वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया। तब उसने अत्यन्त मन्द स्वर में कहा—अश्व आ गये हैं।

२८ : मित्रदेव, तूने यह क्या किया !

अश्वों के अतिरिक्त वहाँ अन्य किसी को भी न देखकर पहले तो माद्री का हृदय भाँति-भाँति की आशंकाओं से भर आया। उसने एक यूनानी यवनी को वहीं गुहा-द्वार के आगे खड़े रहने का आदेश दिया था। वह कहाँ चली गई? क्या आने नहीं पायी या कहीं निकट ही छिपकर खड़ी है? यदि आने नहीं पायी तो क्या बात हुई? कहीं राजप्रासाद में कोई गड़बड़ तो नहीं हो गई? कोई बात अवश्य होनी चाहिए!

परन्तु सोच-विचार के लिए समय कहाँ था? शीघ्रता करने की आवश्यकता थी। विलम्ब करने का अर्थ था वहीं, उसी गुहा मे जन्म-भर के लिए बन्दी हो जाना। उसने धीरे से मगधपति के कन्धे पर हाथ रख दिया और कहा—महाराज, आगे बढ़िए....इस समय का एक-एक क्षण मूल्यवान है.... और याद रखिए, बाईं ओर का अश्व आपके लिए है।

मगधपति दो डग आगे बढ़ा और ऊपर की ओर जानेवाली तीन-चार

सीढ़ियाँ चढ़ गया। अब गुहा का बहिर्द्वार बिलकुल सामने था। एक कदम और वह गुहा के बाहर की जमीन पर पहुँच जाता।

परन्तु सहसा न जाने क्या हुआ....उसने किसी को देख लिया या वह उसका निरा भ्रम ही था; परन्तु वह काँपने लगा, उसकी संशयवृत्ति जाग उठी और अनिश्चय उस पर हावी हो गया। उसका उठा हुआ पाँव वहीं रुक गया और वह ठिठककर खड़ा हो गया।

उसी समय पीछे खड़े सुमित्र ने धीरे से कहा—महाराज, आगे बढ़िए।

मगधपति ने साहस करके अन्तिम कदम उठाया। वह बाहर निकल आया। उसने बाईं ओर दृष्टि डाली। एक अश्व वहाँ खड़ा हुआ था। परन्तु उसके समीप ही....उसने कुछ देखा और वह चौकन्ना हो गया।

उसे ऐसा लगा मानो समीप के गड़हे में कोई खड़ा है। वह घबराकर पीछे लौटा। लेकिन तभी सुमित्र ने अपने शरीर से उसे आगे की ओर धक्का दिया। वह पीछे लौटने की अपेक्षा गड़हे से आगे तक धकियाता चला गया। अब सुमित्र ने शीघ्रतापूर्वक अपनी तलवार म्यान से खींची। वार करने के लिए उसने एक पाँव पीछे हटाकर तलवार को तौला। लेकिन तभी न जाने कहाँ से एक सपसपाती हुई तलवार गिरी और उसके हाथ को काटती चली गई। उसका हाथ मुट्ठी में नंगी तलवार थामे हुए नीचे जा गिरा। और अभी वह सँभल भी नहीं पाया था कि दूसरे जनोइये वार ने उसे धराशायी कर दिया।

यह सब पलक झपकते ही हो गया। कौंडिन्य अभी दो सीढ़ियाँ नीचे ही था। उसने यह दृश्य देखा तो मुड़कर अन्दर की ओर भाग चला।

उसे भागे जाते देख माद्री विद्युत वेग से बाहर निकल आई। उसने न दायें देखा, न बायें; न यह देखने के लिए रुकी कि वहाँ क्या हुआ है। सरपट दौड़ती हुई वह दाहिनी ओर खड़े अश्व पर कूदकर जा बैठी। उसके बैठते ही अश्व हवा से होड़ करने लगा और माद्री-सहित वहाँ से अदृश्य हो गया।

मगधपति की कुछ भी समझ में नहीं आया कि क्या हुआ है और क्या हो रहा है। वह वहीं व्यग्र होकर बैठ गया। तभी उसे ये शब्द सुनाई पड़े :

'अरे, अरे, मित्रदेव ! मित्रदेव ! यह तूने क्या किया ! देख तो यह कौन गिरा है ! देखो, देखो ! दौड़ो, दौड़ो ! कौन है यहाँ ? भिषगाचार्य को बुलाओ....दौड़ो....हा हन्त ! यह तो सुमित्र मारा गया....'

ये शब्द पुष्यमित्र के थे। मगधपति कीट-पतिंगे की भाँति निःस्पन्द बैठा था। अब उसने गड्ढे में बैठे मित्रदेव को पहचाना। तब वह उठा और गुहा के अन्दर की ओर भाग चला।

'अरे !' पुष्यमित्र के शब्द सुनते ही मित्रदेव के हाथ की तलवार नीचे जा गिरी। उसने गुहा-द्वार के समीप ही एक छोटा-सा गड्ढा अपने लिए खुदवाया था और उसमें छिपकर बैठा हुआ था। उसने मगधपति को गुहा-द्वार में से बाहर निकलते देखा। उसने उसका ठिठकना भी देखा। वह चुप बैठा देखता रहा। राजा के अश्व की ओर बढ़ने पर ही उसने उसे रोकने का निश्चय किया था। परन्तु मगधपति को न जाने क्या सन्देह हुआ और वह पीछे की ओर लौट पड़ा। तभी सुमित्र ने उसे धक्का दिया और मारने के लिए तलवार उठाई। यह देख मित्रदेव खड़ा हो गया और एक ही बार में सुमित्र का हाथ काटकर फेंक दिया। दूसरा वार उसने सुमित्र के सिर पर किया और उसकी कपाल-क्रिया ही कर दी ! अब जो पुष्यमित्र के शब्द सुने तो उसके पश्चात्ताप और वेदना का पार न रहा।

पुष्यमित्र वहीं वृक्षों के एक झुरमुट में छिपा बैठा था। हलचल और गड़बड़ी सुनकर वह वहाँ दौड़ा आया। उसने झुककर नीचे गिरनेवाले को देखा। सुमित्र के रक्तरंजित शव को पहचानते ही उसके मुँह से चीख निकल पड़ी। उसने रुआँसे स्वर में कहा—अरे, अरे ! मित्रदेव ! मित्रदेव ! यह तूने क्या किया ? सुमित्र को ही मार डाला। दौड़ो, दौड़ो ! कोई भिषगाचार्य को बुला लाओ....

पुष्यमित्र का स्वर सुनते ही दूर खड़े दो-एक प्रतिहारी वहाँ भागे आये। इसी बीच गुरु पतंजलि भी आ पहुँचे। वह भी वहीं समीप छिपकर बैठे हुए थे। पुष्यमित्र का रुआँसा स्वर सुना तो वह स्तब्ध रह गये। क्या हुआ है यह देखने के लिए वह आगे बढ़े। और जो हुआ था उसे देखकर वह वहीं नीचे बैठ गये। उन्होंने सुमित्र का सिर अपनी गोद में ले लिया।

परन्तु सुमित्र के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे ।

तभी पुष्यमित्र का शोकाकुल स्वर पुनः सुनाई दिया—अरे, मित्रदेव ! यह तूने क्या कर डाला ! हाय, मुझे जीवित ही नर्क में ढकेल दिया ! अब मैं अग्निमित्र को क्या मुँह दिखाऊँगा ? कितना भयंकर आघात किया है तूने ?

लेकिन मित्रदेव के मुँह से कोई शब्द न निकला । वह शोकमग्न सिर झुकाये चुप खड़ा रहा । फिर उसने झुककर सुमित्र की नाड़ी पर हाथ रख दिया । नाड़ी की गति बन्द हो चुकी थी !

वह आँखों में आँसू भरे उसकी ओर देखता रहा ।

२६ : मित्रदेव, तू भाग जा !

गुरुदेव पतंजलि शोक-सन्तप्त चेहरे से सुमित्र की ओर देखते रहे । भिषगाचार्य सर्वदेव उसे बचा सकेंगे, ऐसी कोई आशा नहीं रह गई थी । सब-कुछ इतनी शीघ्रता से हुआ था कि क्या किया जाये और क्या न किया जाये, इतनी बुद्धि भी किसी में रह नहीं गई थी । सब-के-सब स्तब्ध ही रह गये थे ।

थोड़ी ही देर में उस सन्नाटे को भंग करता हुआ भगवान् पतंजलि का शान्त, स्पष्ट, वेदना-भरा स्वर सुनाई दिया । वह स्वर शोक-विह्वल होने के साथ ही मनोनिग्रह और दृढ़ता से भी परिपूर्ण था । उन्होंने कहा—सेनापति पुष्यमित्र, ऐसे अवसर पर, जब तत्काल निर्णय करना हो, जो शोक करने बैठता है उसे शासन करने का अधिकार गँवाना पड़ता है । इतना ही नहीं, वह शत-सहस्र लोगों को हानि भी पहुँचाता है, उनके प्राण-नाश का कारण बनता है । इस समय शोक करने का समय तुम्हारे पास नहीं है । अनिर्णय का समय भी नहीं । सुमित्र गया । लेकिन उसके लिए शोक करके सान्त्वना पाने का समय भी नहीं है । इस समय यह तुम्हारी दुर्बलता समझी जायेगी । दुर्बलता ही नहीं, यह तुम्हारा विलास होगा । समय बड़ा ही विकट है । तत्काल निर्णय करो । मित्रदेव ने जो किया वह तो हो ही गया । वर्षों से उसके हृदय में यह जो भावना थी कि मगधराज को मारा नहीं जा सकता, वही इस समय विजयी हुई । उससे जो वार किया उसे अब लौटाया तो जा नहीं सकता ।

प्रतिहारियो, दौड़ो, भिषग्वर को इसी समय बुला लाओ। हमें तत्काल निर्णय करना होगा।

प्रतिहारी यह सुनते ही भिषगाचार्य को बुलाने के लिए दौड़ पड़े। जो स्तब्धता छायी हुई थी और जिसके कारण सब निष्क्रिय-से हो गये थे, वह भंग हो गई।

'लेकिन यह किया किसने? उस यूनानी यवनी ने? वह कहाँ गई?'

'मगधपति कहाँ हैं?'

'महामात्य कहाँ हैं?'

'पुष्यमित्र, इन प्रश्नों के उत्तर तो बाद में भी मिल जायेंगे। परन्तु थोड़ी ही देर के पश्चात् सवेरा हो जायेगा। सैन्य-महोत्सव आरम्भ होने के पहले ही हमें निर्णय कर लेना चाहिए। मित्रदेव को यहाँ खड़े हुए इस महाजव अश्व पर सवार होकर भाग जाने दो।'

'लेकिन उसे भागकर कहाँ जाने दें? वह कहाँ जायेगा और क्या करेगा! उसने तो भयंकर अपराध किया है, उसे दंड मिलना चाहिए! बन्दीगृह में डाल दो इसे!'

'पुष्यमित्र, इसे तो अभी भाग ही जाने दो; और कुछ नहीं हो सकता। यह जिधर इसका मन चाहे, दौड़कर चला जाये। फिर तुम इसके पीछे अपने सैनिक दौड़ा दो। अभी तो यही घोषणा करवाओ कि इसने ऐसा जघन्य कृत्य किया है और देश से बाहर चला गया है। वैसे यह भागकर जाये कलिंगपति के यहाँ।'

'कलिंगपति के यहाँ क्यों? वहाँ क्या है? भगवन्, यह तो उल्टा चोर कोतवाल को दण्डवाला न्याय हो गया। हमें इसे बन्दी बना लेना चाहिए; और आप कह रहे हैं कि इसे भाग जाने दो!'

'वहाँ जो है, वह मैं बताता हूँ।' भगवान् पतंजलि ने सुमित्र के मृत चेहरे को बड़ी बारीकी से देखते हुए कहा, 'पुष्यमित्र! महाबलाधिकृत! हमने इसे तो खो ही दिया है। शोक करने का समय हमारे पास नहीं है। प्रतिशोध लेने का भी समय नहीं है। हमें तो तत्काल निश्चय करना होगा। जो ऐसे समय निर्णय नहीं करता वह फिर कभी निर्णय नहीं कर सकता। अपने असमंजस

के कारण वह समस्त देश को विपत्ति के गर्त में ढकेल देता है, और देश उस गर्त से कभी निकल नहीं पाता। इसलिए जैसा मैंने कहा उसी के अनुसार अविलम्ब डिंडिमिका-घोष करवाया जाये। और तुम इस बात को यों समझ लो कि मित्रदेव ने सुमित्र की हत्या की है और भाग गया है। उसे पकड़ने के लिए मगध के सैनिक पीछा कर रहे हैं। सभी सीमाओं की नाकेबन्दी कर दी जाये। घोषणा भी इसी आशय की करवाई जाये। सोच-विचार में समय गँवाने के बदले तत्काल प्रतिहारियों को बुलवाओ।'

'परन्तु भगवन्, अपने पौत्र के शव पर मैं यह सब कैसे....'

'कैसे करूँ, यही न ? लेकिन करना पड़ेगा पुष्यमित्र। राजनीति इसी का नाम है। देखो भगवान् रामचन्द्र की ओर। उन्हें सीता का भी परित्याग करना पड़ा था। कितनी वेदना हुई होगी उन्हें ? उस तुलना में तुम्हारी अपनी वेदना क्या है ? राज-शासन की राह ऐसी ही कंटकाकीर्ण होती है, महाबलाधिकृत ! जो होना था वह तो हो ही गया। अब यदि इससे लाभ नहीं उठाया तो तुम्हारे-जैसा कोई मूर्ख नहीं। अवसर से चूकना आत्महत्या करने के ही समान है।'

'यह आप क्या कह रहे हैं ? मैं इससे लाभ उठाऊँ ! अपने पौत्र की भयंकर हत्या से लाभान्वित होने की इच्छा करूँ ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ ! मेरी तो बुद्धि ही काम नहीं करती प्रभु !'

भगवान् पतंजलि का स्वर और भी मन्द तथा विषाद-विजड़ित हो उठा—सेनापति, समय नहीं है। सबसे पहली बात तो यह है कि मित्रदेव भागकर यहाँ से कलिंग चला जाये। तुम जानना चाहते हो कि क्यों चला जाये ? तो सुनो, वह वहाँ जाकर आपबीती कहेगा। किसी को उसके कहे पर सन्देह भी नहीं होगा। तुम्हीं ने मुझे बताया है कि मगध के राजकोष में भगवान् महावीर की एक अनुपम नीलम प्रतिमा है। वह प्रतिमा बड़ी पुरानी, राजा नन्द के समय की और अत्यधिक मूल्यवान है। कलिंगपति भगवान् महावीर का उपासक है। जब वह मित्रदेव के मुँह से इस प्रतिमा के बारे में सुनेगा तो उसे प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठेगा। तब वह निश्चित ही यहाँ दौड़कर आना चाहेगा। परन्तु इधर आने से पहले उसे शातकर्णी को इधर बढ़ने से रोकना

होगा। इस प्रकार दोनो में संघर्ष छिड़ जायेगा और शातकर्णी का विदर्भ और अवन्ती पर इस समय जो दबाव है वह अपने-आप कम हो जायेगा, उसे उधर से हटना होगा। अग्निमित्र वहाँ है ही। उसे अवसर मिल जायेगा। वह विदर्भ पर आक्रमण कर सकेगा। इस समय यह नितान्त आवश्यक है कि विदर्भ प्रदेश तत्काल मगध के शासन के अन्तर्गत आ जाये। इसका बड़ा ही व्यापक प्रभाव होगा। मगध के शासक का गौरव इसी प्रकार बढ़ सकता है। क्योंकि यह तो ध्रुव सत्य है कि तुम शातकर्णी और कलिंग का सामना नहीं कर सकते। इसलिए कह रहा हूँ कि शीघ्रता करो। संक्षेप में कही बात को विस्तार में समझ लो। अनायास ही अवसर मिल गया है; इसमें लाभ उठाओ। किसी को सन्देह भी नहीं होगा। उधर उन दोनों की सेनाएँ आपस में भिड़ रही होंगी और तुम उससे लाभ उठा सकोगे। अवन्ती को इसी तरह मुक्त किया जा सकता है। इसी तरह अश्वमेध-यज्ञ भी किया जा सकता है। ऐसा करके ही तुम मध्यमिका नगरी की ओर बढ़ रहे यवन यूनानियों को पीछे हटने के लिए विवश कर सकते हो। मत भूलो कि हम शातकर्णी और कलिंग से सीधे संघर्ष किये बिना ही अश्वमेध को सफल करना चाहते हैं। पुष्यमित्र, इतनी सब बातें कहने का भी समय नहीं है, परन्तु तुम्हारे असमंजस को देखकर मुझे यह सब कहना पड़ रहा है। इसलिए मित्रदेव को तत्काल यहाँ से भाग जाने दो। कलिंग का राजा उसकी बात सुनकर इधर आने के लिए अवश्य लालायित हो उठेगा....

'यह तो अपने ही हाथों उसे युद्ध का निमंत्रण देना हुआ, देव !'

'इस भय का प्रतिकार हम समय आने पर कर लेंगे। उस समय कोई-न-कोई मार्ग निकल ही आयेगा। परन्तु अभी तो कलिंग और आन्ध्र के पारस्परिक संघर्ष के बिना तुम्हारी कोई मुक्ति नहीं। तुम एक बित्ता भी आगे नहीं बढ़ सकते। मगध का महान् साम्राज्य आज चुल्लू बराबर भी नहीं रह गया है। उतना ही अधिकार तुम्हारा होगा। परन्तु महाबलाधिकृत,' भगवान् पतंजलि ने सुमित्र के शव को अपनी गोद से उतारकर नीचे पृथ्वी पर रख दिया। वह उठकर खड़े हो गए। उनके वस्त्र शोणित से भीगे हुए थे। उनकी ओर देखते भी डर लगता था। उन्होंने आगे कहा, 'समय नहीं है। एक क्षण भी

हमारे पास नहीं है। तुम्हारे हाथों महान् कार्यों की भूमिका बाँधी जाने को है। और सभी महान् कार्य बलिदान माँगते हैं। इस कार्य के आरम्भ में ही तुम्हें यह हृदय-विदारक शोक मिला है। इसे सह लो महाबलाधिकृत! दूसरा कोई उपाय नहीं है।'

भगवान् पतंजलि ने नीचे झुककर मित्रदेव का रक्तरंजित खड्ग, जो वहाँ पड़ा हुआ था, हाथ में उठा लिया और बोले—यह खड्ग तुम अपने हाथों मित्रदेव को दे दो। और मित्रदेव, तुम अब यहाँ से भाग जाओ। यह महा-जव अश्व खड़ा है। इस पर सवार होकर चल दो। तुम्हें कहाँ जाना है, यह तो मैंने बतला ही दिया है। यहाँ की सब बातें यहीं भूल जाओ। तुम मगध के महान् गौरव को पुनः-स्थापित करने जा रहे हो, केवल इतना याद रखो। अधिक कहने और समझने-समझाने का समय नहीं है। भागो मित्रदेव, भागो! यहाँ से अविलम्ब भाग चलो!

'प्रभु, मैं भागूँगा नहीं। मैंने अपराध किया है। महाबलाधिकृत मुझे दंड दें। मेरा वध करें!'

'मित्रदेव, शोक करने का यह समय नहीं। मैं कहता हूँ, तुम भाग जाओ!'

तभी पुष्यमित्र स्वयं आगे बढ़ आया। उसने मित्रदेव का खड्ग उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—मित्रदेव, मैं भी यही कहता हूँ कि तुम भाग जाओ। और उस समय लौटना जब वसुमित्र सेना लेकर यहाँ से प्रस्थान करे। जाओ भागो! समय नहीं है। देखो कोई आ रहा है। सम्भवतः प्रतिहारी ही हों।

शोक से भरा मित्रदेव अपने शिथिल पाँवों को घसीटता हुआ आगे बढ़ा। अश्व के समीप पहुँचकर उसकी पीठ थपथपाकर वह उस पर सवार हो गया। लेकिन जैसे ही वह अश्व की पीठ पर बैठा, अश्व तड़ित् वेग से भाग चला और देखते-देखते आँखों से ओझल हो गया।

उसके ओझल होते ही पुष्यमित्र उच्च स्वर से पुकार उठा—प्रतिहारियो! दौड़ो, दौड़ो! मित्रदेव भागा जा रहा है, उसे पकड़ो! शीघ्रगामी अश्व लेकर उसके पीछे जाओ। डिंडिमिका-घोष करवाओ! अग्रहार कहाँ है? उसे बुलाओ! मित्रदेव को पकड़ने के लिए अग्रहार को उसके पीछे दौड़ाओ!

पलक मारते ही वहाँ हलचल आरम्भ हो गई। अश्व आये, अश्वारोही

आये। भिषग्वर आये। सुमित्र के शव को औषधियों में रखने की व्यवस्था की गई। उसकी मृत देह को थोड़े समय सुरक्षित रखना आवश्यक समझा गया।

अश्वारोही, जिस दिशा में मित्रदेव गया था, उस ओर दौड़ पड़े।

और वातावरण में डिंडिमिका का घोष गूँज उठा : 'मित्रदेव भाग गया है। उसने सुमित्र की हत्या की है। वह जिस किसी को जहाँ भी दीख जाये वही उसे तत्काल रोक ले। बन्दी बना ले। नगरवासीगण सुनें! इस घोषणा को सुनें....'

इसके साथ-ही-साथ नरसिंहे, रणभेरियाँ, तूर्य और शंख बज उठे। धनुषों की टंकार सुनाई पड़ने लगी। सर्वत्र हलचल होने लगी। सैन्य-महोत्सव की घोषणा भी की जाने लगी। पदाति, अश्वारोही, गजपति और रथी मैदान की ओर जाते हुए दिखाई पड़ने लगे।

अग्रहार वहाँ आया। दुर्वाक भी दिखाई दिया।

'अग्रहार!' पुष्यमित्र ने उसे डपटकर कहा, 'तुम इसी प्रकार गुहा-द्वार की रक्षा करते हो? यह है तुम्हारा सुरक्षा-प्रबन्ध? तत्काल राजमहल में जाकर पता लगाओ कि मगधपति कहाँ हैं? सैन्य-महोत्सव की घोषणा हो रही है। महाराज से जाकर कहो कि वह सैन्य-महोत्सव के लिए बाहर आयें।'

और पहाड़-जैसे शोक के बोझ को अपनी छाती में समाकर पुष्यमित्र शिथिल पग वहाँ से आगे बढ़ा।

३० : महामात्य का अन्त

घाव कितना गहरा लगा है, यह पता चलता है दर्द से; और दर्द होता है, घाव लगने के समय नहीं, घाव लगने के बाद। पुष्यमित्र सैन्य-महोत्सव का आयोजन कर रहा था। सवेरे ही सैन्य-महोत्सव होने को था। और उसके हृदय में अपार शोक था। कितनी विचित्र स्थिति थी उसकी!

जैसा अपार शोक था उसके मन में, वैसा ही अपार क्रोध भी था। वह चाहता था कि किसी की हत्या कर डाले, बिना हत्या किये क्रोध शान्त नहीं होगा! परन्तु क्रोध को निकालने का भी कोई मार्ग नहीं था। मन के क्रोध को मन में ही पीकर रहना होगा। भगवान् पतंजलि ने ठीक ही कहा था;

यदि सुमित्र के हाथ से मगधपति मारा जाता तो समस्त लोग-समुदाय पुष्य-मित्र के विरुद्ध हो जाता। लोगों की भावना भी बड़ी विचित्र होती है। जिस वस्तु को लोग चाहते हैं उसे यदि थोड़ा-सा जल्दी या उनके मनचीते ढंग के विपरीत कर दिया जाये तो वे उत्तेजित हो उठते हैं। लेकिन यदि उसी काम को ठीक समय पर और जरा चतुराई से कर दिया जाये तो लोग अभि-नन्दन करने लगते हैं।

सुमित्र ने यदि मगधपति की हत्या कर दी होती तो इस समय सारे पाटलि-पुत्र नगर में उथल-पुथल मच जाती और लोग पुष्यमित्र को ही हत्यारा मानकर उसके नाम पर थूकने लगते।

यह सच है कि मगधपति बृहद्रथ को कोई चाहता न था। सब यही चाहते थे कि उसका पतन हो जाये। यदि कोई उसका वध कर भी डालता तो किसी के कान पर जूँ न रेंगती। उसने अपने कृत्यों से देश को बहुत ही नीचा दिखाया और मगध के गौरव को अपार क्षति पहुँचाई थी। यह सब होते हुए भी यदि सुमित्र के हाथों उसका वध हुआ होता तो लोग उसका यही अर्थ लगाते कि महाबलाधिकृत पुष्यमित्र ने ही ऐसा करवाया है। इसलिए सुमित्र की विफलता पुष्यमित्र के हित में ही थी। स्वयं पुष्यमित्र भी यही चाहता था। लेकिन सुमित्र की मृत्यु तो वह कदापि नहीं चाहता था। उसके लिए यह कोई सामान्य आघात नहीं था। उसकी वेदना की कोई सीमा न थी। अग्निमित्र को पता चलेगा तो क्या होगा? धारिणीदेवी की क्या दशा होगी? हाय! अपने ही कुटुम्ब में वह चाण्डाल समझा जायेगा। परिवार में भयंकर कलह उत्पन्न हो जायेगा।

अच्छा ही हुआ कि भगवान् पतंजलि ने मित्रदेव को भगा दिया और वह भी भाग गया। यदि यहाँ रहता तो वसुमित्र उसे कभी जीवित न रहने देता। अवश्य उसका वध कर देता। इस तरह तो हत्याओं की एक परम्परा ही चल पड़ती, जिसे रोकना असम्भव हो जाता।

लेकिन मित्रदेव का भगवान् पतंजलि ने क्या ही खूब उपयोग किया! ऐसी बात तो केवल भगवान् कौटिल्य ही सोच सकते थे।

परन्तु वह माद्री भी तो भाग गई। अवश्य ही वह सारी बातें यूनानी

आक्रमणकारियों को बतला देगी। मगधपति की मूर्खताएँ....इस मूर्ख को तो अब सदा के लिए विदा ही कर देना चाहिए।

लेकिन किया कैसे जाये बन्दीगृह में रखने का अर्थ है, यूनानी आक्रमण-कारियों को पाटलिपुत्र पर चढ़ आने का निमंत्रण देना। कलिंग और शात-कर्णी भी उसे मुक्त करने के बहाने आ धमकेंगे। बन्दी बनाने का अर्थ तो मगध का विनाश ही होगा।

तो क्या उसे मुक्त रहने दिया जाये ? लेकिन विनाश तो तब भी रुक न सकेगा। वह मूर्ख किसी की भी छाँह में जा बैठेगा। अपनी ही हत्या करनेवाले की ठकुरसुहाती कहने लगेगा।

जो किसी काम के नहीं, उनका मारा जाना ही इस सृष्टि का सनातन धर्म है। कीट-पतिंगों के जीवित रहने में कोई लाभ नहीं होता। सृष्टि का क्रम भी यही कहता है कि कीट-पतिंगों और जन्तुओं को तत्काल नष्ट कर दिया जाये। तो यही हो। मगधपति को ही विनष्ट होना चाहिए।

पुष्यमित्र ने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया।

*

गुहा-द्वार पर सुमित्र का धक्का लगते ही मगधपति पुनः गुहा के अन्दर चला जाना चाहता था। लेकिन वह तत्काल कोई निर्णय नहीं कर सका। दृढ़ निश्चय का आदमी तो वह कभी था ही नहीं। इसलिए दो क्षण सोचता रहा कि आगे बढ़ूँ या लौट चलूँ। अन्त में वह पुनः गुहा में पहुँच गया।

भागकर अन्दर आते हुए उसने महामात्य कौंडिन्य से भी लौट जाने को कहा—कौंडिन्य, हमारे समझने में कहीं कोई भूल हो गई है। लोग एक-दूसरे को समझ नहीं पाते। यही तो सारी कठिनाइयों का मूल कारण है। मैं तो कहता हूँ कि हम इस गुहा में ही क्यों न बैठे रहें!

'महाराज, इस गुहा में बैठे रहे तो हम नष्ट ही हो जायेंगे। हम पर यही अभियोग लगाया जायेगा कि हम भागना चाहते थे, देश के साथ द्रोह करना चाहते थे। वह यवनसुन्दरी हमारे साथ थी और वह भाग गई है। सुनिए, महाराज सुनिए....'

बाहर डिंडिमिका-घोष हो रहा था और उसकी प्रतिध्वनि गुहा के अन्दर भी सुनाई दे रही थी :

'सुनें, सब नगरजन सुनें ! महाराज का अंगरक्षक हत्या करके भागा है ! उसने कुमार सुमित्र की हत्या की है। यूनानी यवनसुन्दरी माद्री भी भागी है। दोनों ही हत्यारे हैं। दोनों ही देशद्रोही हैं। जिस किसी को ये दोनों जहाँ भी मिल जायें वह उन्हें वहीं रोक ले, बन्दी कर ले। सेनापति पुष्यमित्र यह घोषणा करवाते हैं। नगरजन सुनें, सब सुनें ! मगध के राजप्रासाद में ही यह हत्याकाण्ड हुआ है। मगधपति का भी पता नहीं है !'

'महाराज, हमें प्रकट हो ही जाना चाहिए।'

'अरे, तो हम प्रच्छन्न ही कहाँ हैं ? प्रकट तो हैं ही ? कौडिन्य, हम तो पारस्परिक समझ उत्पन्न करना चाहते हैं। तुम देखना तो सही, कल सवेरे बहुत करके तो पुष्यमित्र यही घोषणा करवायेगा....जानते हो क्या घोषणा करवायेगा ?'

'नहीं महाराज ! क्या घोषणा करवायेगा ?'

'सभी सुनकर चकित रह जायेंगे। वह भिक्खु बन जायेगा। वही हमसे कहेगा कि पारस्परिक समझ उत्पन्न होनी चाहिए। वह इस आघात को सह नहीं सकता।'

कौडिन्य बिना उत्तर दिये आगे बढ़ता रहा। उसे मगधपति की मूर्खतापूर्ण बातों में कोई रुचि न थी। उसे तो अपने भविष्य की चिन्ता सता रही थी। वह सोच रहा था कि अब तो विदर्भ भी कुछ कर न पायेगा। उसे रह-रहकर यह बात काँटे की तरह खटकने लगी कि इस मूर्ख राजा का पहले ही वध क्यों न कर दिया। यदि मार डाला होता तो आज यह दिन क्यों देखना पड़ता ? दुष्ट आप तो मरा, मुझे भी मार चला। सच ही कौडिन्य अर्द्धमृत हो गया था। उसे अपना भविष्य स्पष्ट दिखाई दे रहा था—अग्निमित्र विदर्भ को आक्रमण करके रौंद देगा और स्वयं मुझे सदा के लिए बन्दीगृह में रहना पड़ेगा !

उसने एक दृष्टि राजा की ओर डाली। सहसा उसे यह विचार आया कि क्यों न अभी ही अपने हाथों इस मूर्ख की हत्या कर डाले और 'पुष्यमित्र ने राजा की हत्या की है' ऐसा शोर मचाता हुआ बाहर दौड़ा जाये ! तब सम्भवतः हारी बाजी जीती जा सके और विदर्भ को भी कुछ करने का अवसर

मिल जाये। उसने इधर-उधर देखा। लेकिन बाहर जाने के सब द्वार बन्द हो गये थे। गुहा के बाहर राजप्रासाद में चारों और सशस्त्र प्रतिहारी संचरण कर रहे थे। पुष्यमित्र का नाम लगाने पर बाहर के लोग तो जब सुनेंगे तभी जान पायेंगे परन्तु उसके पहले तो वह स्वयं ही मार डाला जायेगा। अब तो बन्दीगृह के अतिरिक्त कोई मार्ग उसके लिए रह नहीं गया था।

उसने कहा—महाराज, चलिए। हम शीघ्रता से राजप्रासाद में पहुँच जायें। हमारा भविष्य निश्चित हो गया है। दीर्घकाल तक हमें बन्दीगृह में रहना होगा। चलिए! जिससे बचना चाहिए उसी का हाथ थाम लेने पर जो परिणाम होता है वही हुआ!

'अरे कौंडिन्य, तुम व्यर्थ ही चिन्तित हो रहे हो। बन्दीगृह ऐसा क्या बुरा है! हम वहाँ दीर्घकाल तक शान्तिपूर्वक रह सकते हैं। और तुम देखोगे कि हमारे इस कृत्य से भी सर्वत्र पारस्परिक समझ ही उत्पन्न होगी।'

कौंडिन्य जोर से हँस दिया, परन्तु हृदय उसका रो रहा था।

'कुछ लोग हैं जो कभी समझना ही नहीं चाहते!' उसने मन-ही-मन कहा और राजमहल में प्रवेश करने के लिए कदम आगे बढ़ाये।

जैसे ही उसने राजमहल में प्रवेश किया, प्रतिहारी अग्रपाल सामने खड़ा मिल गया। उसने नंगी तलवार से दोनों का अभिवादन करते हुए कहा—महामात्य, आपको इस ओर जाना है, भूगर्भ-द्वार के समीप। कुमार वसुमित्र वहाँ आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप उस ओर पधारिए और महाराज, आप मेरे साथ।

'कहाँ चलना होगा, अग्रपाल?'

'मरने! जा मूर्ख, जा!' कौंडिन्य ने मन-ही-मन बड़बड़ाकर कहा।

'हमें चलना है महाराज, सैन्य-महोत्सव में। आप तैयार हो जाइए।'

'अरे, तो क्या पुष्यमित्र अन्त में भिक्खु बन ही रहा है? यही बात है न अग्रपाल? अन्ततः आदमी समझता ही है—कोई आरम्भ में समझता है, कोई अन्त में, और कोई-कोई मध्य में भी समझते हैं। चलो, हम चलने की तैयारी करें।'

मगधपति के इन मूर्खतापूर्ण शब्दों को सुनकर कौंडिन्य ने अपना माथा

पीट लिया। परन्तु स्वयं उसके लिए तो कारागृह ही प्रतीक्षा कर रहा था। शोक से भरा अपने थके पाँवों को घसीटता हुआ वह उसी ओर आगे बढ़ा।

३१ : मगधपति को मार डाला!

मगधपति पाटलिपुत्र नगर के बाहर लगभग एक कोस के अन्तराल पर बने हुए विशाल मैदान की ओर चल दिया। सैन्य-महोत्सव यहीं आयोजित किया जा रहा था। प्रतिहारी अग्रपाल उसके साथ था। उसने राजा को अश्व पर आरूढ़ भी नहीं होने दिया। पैदल चलाता हुआ ही वहाँ तक लाया। वहाँ का दृश्य देखकर एक क्षण तो मगधपति भी दंग रह गया। पाटलिपुत्र में ऐसा दृश्य उसने पहले-पहल ही देखा था। वहाँ सैकड़ों हाथी, रथ, अश्वारोही, पदाति, धनुर्धर नारियाँ, आटविक, यवनियाँ आदि मिलाकर एक शक्तिशाली सेना खड़ी थी। उसने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा। उस मैदान में सर्वत्र पट्टकुटियाँ फैली हुई थीं। स्थान-स्थान पर सैनिक पाँतें बनाये खड़े थे। कहीं शंखनाद हो रहा था, कहीं तूर्य बज रहे थे, कहीं रणभेरियाँ फूँकी जा रही थीं। डिंडिमिकाओं का घोष हो रहा था। सैनिकों को सूचनाएँ दी जा रही थीं। भाँति-भाँति की घोषणाएँ की जा रही थीं। उस मैदान में शस्त्र एवं शस्त्रधारियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता था। राजा ने वहाँ पर एक विशाल मंडप भी देखा। उन दोनों को उसी मंडप में जाना था। अग्रपाल ने आगे होते हुए कहा—चलिए महाराज, हमको वहीं चलना है।

अब प्रथम बार राजा को अपनी विवशता एवं निःसहायता का बोध हुआ। लेकिन वह कर भी क्या सकता था! बात उसके हाथ से निकल गई थी। वह सोचने लगा कि सैन्य-महोत्सव की घोषणा करवाना ही गलत था। यदि उसी समय सर्वत्र प्रतिहारी भेजकर इस महोत्सव को रुकवा दिया होता तो युद्ध की ये घोषणाएँ कभी न उठतीं, युद्ध मृतप्रायः ही हो जाता। अब तो युद्ध का स्वर जाग उठा है। महाराज अशोक का शान्ति का महान् स्वप्न छिन्न-भिन्न हो जायेगा। ब्राह्मण यहाँ पर राज्य करेंगे। उस पतंजलि-जैसे विप्र यहाँ पर अपना अधिकार जमायेंगे

उसे रह-रहकर यह विचार कष्ट देने लगा कि अरे, बड़ा धर्मद्रोह हो गया। मैं ही मगध में युद्ध लाने का निमित्त बना। कौंडिन्य होता तो कोई परामर्श देता। परन्तु वह तो बन्दीगृह में पड़ा है। युद्ध को टालने ही के लिए तो वह विदर्भराज को यहाँ बुलाना चाहता था। लेकिन अब तो बात हाथ से निकल गई। बृहद्रथ को आशा थी कि वह विदर्भराज को समझा सकेगा; और उसकी शक्तिशाली सेना देखकर पुष्यमित्र भी अपना दुराग्रह छोड़ देगा, और इस प्रकार युद्ध किये बिना ही धर्म-घोषणाएँ प्रचारित होती रह सकेंगी।

बृहद्रथ तो यही मानता था कि उसकी धर्म-घोषणाओं के कारण ही देश में शान्ति और सुख था। देश की शान्ति और सुख के सम्बन्ध में उसे किसी प्रकार का सन्देह नहीं था। वह यह भी मानता था कि यूनानी यवनों को भी उसकी धार्मिकता के प्रति श्रद्धा थी। यदि वे यहाँ आ भी गये तो धर्म-सभाएँ और धर्म-यात्राएँ ही करेंगे। उस मूर्ख को राज्यव्यापी असन्तोष और अव्यवस्थाएँ दीखती नहीं थीं। जिस तरह चींटा अपने मुँह में गुड़ पकड़ लेता है और मुँह टूट जाने पर भी उसे नहीं छोड़ता, उसी प्रकार इस जिद्दी मूर्ख ने धर्म के आडम्बर की दुम पकड़ रखी थी। शासन और व्यवस्था में भी उसने धर्म को पूरी तरह घुसेड़ रखा था। जब लोगों की व्यक्तिगत जीवन में ही धर्म के प्रति श्रद्धा और विश्वास न हो उस समय शासन में धर्म को घुसेड़ना देश के लिए कितना हानिकारक हो जाता है! हुआ भी वही। देश सर्वनाश के कगार पर आ खड़ा हुआ था।

जब भी धर्म का अतिरेक होता है, देश का विनाश निश्चित हो जाता है। सम्राट् अशोक ने भी धर्म में अतिरेक किया, परन्तु उन्हें राधागुप्त-जैसा महामात्य मिल गया। इसलिए देश और शासन दोनों ही बच गये। राजा सम्प्रति ने भी अतिरेक किया, परन्तु वह संन्यासी हो गये और देश बच गया। अनार्य देशों में उन्होंने धर्म-प्रचारक भेजने की बातें कीं। परन्तु उनके बाद तो राज्य का लोभ इतना बढ़ गया कि उत्तराधिकारी एक-दूसरे की हत्या करने लगे। साथ ही मौर्य-वंश को विनष्ट करनेवाली 'अधार्मिक धार्मिकता' भी बहुत बढ़ गई। यह अधार्मिक धार्मिकता बड़ी ही भयंकर प्रमाणित हुई। धर्म को समझा जा सकता है। अधर्म को भी समझा जा सकता है। परन्तु अधार्मिक

धार्मिकता समझ में आने-जैसी वस्तु नहीं है। यह प्रजा का नाश कर देती है। देश में दम्भ, अनाचार और अनीति फैलाती है; और यह सब होता है धर्म की ओट में। बृहद्रथ ने इसी अधार्मिक धार्मिकता की नीति का अवलम्बन करके प्रजा को ह्रासोन्मुख और देश को पतित कर दिया था।

और वही बृहद्रथ इस समय धार्मिक अधार्मिकता की मूर्खतापूर्ण बातें सोचता हुआ सैन्य-महोत्सव के मंडप की ओर चला जा रहा था। पुष्यमित्र ने महोत्सव को बड़ा ही भव्य रूप देने का प्रयत्न किया था। शत सोपान ऊँचा एक रंग-मंच बनाया गया था। उसे रंग-बिरंगे चिनांशुकों से सजाया गया था। मंच पर विदर्भ प्रदेश का सोने-चाँदी के तारों से बुना हुआ मूल्यवान हस्तिदन्त-वस्त्र बिछाया गया था। उस वस्त्र की कारीगरी को देखकर देखनेवाले चकित रह जाते थे। देश-विदेश में उसके-जैसा कोई वस्त्र कहीं पर भी नहीं था। इसी शानदार मंच पर पहुँचने के लिए मगधपति सोपान-श्रेणी के समीप आया। परन्तु सीढ़ियाँ चढ़ते समय उसका दुराग्रही मन दुविधा में पड़ गया।

उसे यह देखकर अतीव आश्चर्य हुआ कि सीढ़ियों पर चढ़ते देखकर भी लोगों ने उसके नाम का जयघोष नहीं किया। लेकिन चिन्ता उसे इस बात की हो रही थी कि आज उसने अपनी धर्मवादिता को खो दिया है। यदि धर्म ही नहीं रहा तो और सब-कुछ रहने से भी कोई लाभ नहीं। यह तो कन्दमूल खाने के बाद जैन बनने और अन्त्यज को छूने के बाद हिन्दू-धर्म की डींग हाँकने-जैसी बात हुई। उसके इस तरह सोचने का कारण यह था कि वह धर्म के वास्तविक स्वरूप को तो कभी पहचान नहीं पाया था। उसने धर्म के बाह्य रूप को ही देखा और उसी को गले लगा रखा था।

धर्म जब बाह्य आडम्बर का रूप ले लेता है और उसकी आत्मा, मूल-विचार नष्ट हो जाता है तो वह बड़ा ही क्रूर रूप धारण कर लेता है। यह धार्मिक क्रूरता दूसरों का ही नहीं, स्वयं उसे माननेवाले का भी नाश कर देती है; व्यक्ति का तेज नष्ट हो जाता है और आत्म-प्रवंचना उत्पन्न हो जाती है। मगधपति भी धर्म के ऐसे ही बाह्य आडम्बर में विचरण करनेवाला व्यक्ति बन गया था। यह उस काल की विशेषता भी थी। अन्दर चाहे हलाहल विष ही क्यों न हो, ऊपर से दोनो हाथ जोड़कर, आँखें अर्द्धोन्मीलित करके कोई भी

भदन्त बन जाना था। बस हो गई धार्मिकता। फिर नैतिकता भले ही भाड़ में जाये। प्रजा का ऐसा नैतिक पतन कभी नहीं हुआ था। रह गया था केवल धर्म का आडम्बर और सब-कुछ नष्ट हो गया था। यहाँ तक कि प्रजा भी असत्य हो गई थी, सच रह गया था केवल धर्म का आडम्बर।

धर्म के ऐसे ही आडम्बर का पुरस्कर्ता राजा बृहद्रथ, जो मगधपति था, सीढ़ियाँ चढ़कर मंच के ऊपर आया। उसके ठीक सामने चन्द्रगुप्त-सभा थी। सभा के पीछे सहस्रों की संख्या में सैनिक खड़े थे। अश्वारोहियों की पाँतों पर पाँतें वहाँ शोभा पा रही थीं। गजसेना के हाथी सूँड उठाकर उसका अभिवादन कर रहे थे। अपने जीवन में कभी नहीं देखा ऐसा सामरिक दृश्य वह अपनी आँखों के आगे देख रहा था। चारों ओर धनुष धारण किये हुए यवनियाँ खड़ी थीं। प्रजाजन भी सहस्रों की संख्या में वहाँ आये हुए थे। सब ने सुन रखा था कि मगधपति महाराज बृहद्रथ विशाल चतुरंगिणी सेना का निर्माण करने जा रहे हैं। सभी के हृदय में उत्साह था। युवकों का खून उछल रहा था। पाटलिपुत्र पर कोई आक्रमण अब कर नहीं सकता, ऐसा विश्वास चारों ओर फैलने लगा था। सभी के मुँह पर पुष्यमित्र का नाम और उसके लिए प्रशंसा के दो शब्द थे। सब यही कहते थे कि वह मगध के विनष्ट गौरव को पुनर्जीवित कर रहा है।

परन्तु इस सारे दृश्य को देखकर उस पर मुँह बिचकाने और निन्दा करनेवालों की भी वहाँ कोई कमी नहीं थी। ऐसे लोग इसे आसुरी और पाशविक बल का प्रदर्शन कहकर कड़ी भर्त्सना कर रहे थे। ऐसे लोगों में सैकड़ों बौद्ध-भिक्खु और उनके अनुयायी थे। उनके मन यह सब बड़ा भयंकर कार्य हो रहा था। परन्तु न जाने क्यों इस समय वे सब शान्त थे। शायद यही समझकर चुप थे कि यह सब अधार्मिक शठता है और इसका विरोध न करना ही अच्छा।

वहाँ के वातावरण में कुछ इस तरह का भाव था कि या तो सैन्य-महोत्सव की घोषणाओं के द्वारा सिर उठानेवाले सभी प्रदेशपतियों को वश में किया जाये या मगधपति चुपचाप अलग हट जाये। किसी प्रकार की द्विधा के लिए वहाँ स्थान नहीं था।

राजा के मंच पर आ जाने के थोड़ी देर बाद महाबलाधिकृत पुष्यमित्र

वहाँ आया। उसके साथ महामुनि पतंजलि भी आकर एक आसन पर बैठ गये। कुछ अन्तेवासी भी वहाँ थे। राज्य के मुख्य कर्मचारियों को भी निमंत्रित किया गया था। प्रतिहारी अग्रहार मंच के प्रवेश-द्वार पर ही खड़ा था। कोई अनामंत्रित मंच पर चढ़ न जाये, इसकी रोक-थाम के लिए धनुष-बाण धारण किये हुए यवनियाँ हाथ में नंगी तलवारें लिये चारों ओर खड़ी थीं।

पुष्यमित्र उठकर अपने स्थान पर खड़ा हुआ और उपस्थित समुदाय को सम्बोधित कर उसने कहा—सदस्यगण, पहले महाराज मगधपति चन्द्रगुप्त-सभा को सम्बोधित करेंगे। तत्पश्चात् सैन्य-महोत्सव प्रारम्भ होगा। देश पर आक्रमणकारियों के भय को निर्मूल करने के लिए महाराज मगधपति चतुरंगिणी सेना का निर्माण कर रहे हैं। चन्द्रगुप्त-सभा महाराज के इस साधु कार्य का अभिनन्दन करे। महाराज की इस राजनीति को सभी विजय-घोषणा के द्वारा स्वीकार करें। आक्रान्ता मगध की पवित्र भूमि का उल्लंघन करें, हमारे देश को छिन्न-भिन्न करें, प्रदेशपति एक केन्द्रीभूत शासन-सत्ता की उपेक्षा करें, ऐसी स्थिति का आज से अन्त होता है। मगध के महान् बल की जय हो! परमभट्टारक महाराज मगधपति की जय हो!

'परमभट्टारक महाराज मगधपति की जय!' चारों ओर से गगनभेदी नाद उठा : 'मगध के महान् बल की जय हो!'

जैसे ही सहस्रों कंठों से यह घोष उठा, राजा बृहद्रथ चौंक पड़ा। वह अपने स्थान से उठकर आगे आया और सब सुन सकें ऐसे स्पष्ट और उच्च स्वर में उसने कहा :

'महाराज प्रियदर्शी अशोक ने कलिंग का अन्तिम युद्ध किया। वहाँ के युद्ध में धन-जन का जो विनाश हुआ उसे देखकर महाराज प्रियदर्शी संत्रस्त हो उठे थे, उनका हृदय करुणा से भर आया। और वही युद्ध उनके लिए अन्तिम हो गया। फिर उन्होंने मगध के लिए प्रेम और शान्ति की राजनीति प्रवर्तित की। मगध के लिए आज भी वही नीति है। महाराज अशोक ने जिस कृपाण को म्यान में रख दिया था, उसे मैं खींचकर बाहर निकालूँ और देश में युद्ध और रक्तपात की नीति को प्रचलित करूँ, इससे बड़ी अधार्मिकता और कोई नहीं हो सकती। प्रजाजन इस अधार्मिकता से मेरी रक्षा करें। मैं युद्ध के मार्ग

पर कभी चला नहीं हूँ और चल सकूँगा भी नहीं। महाबलाधिकृत पुष्यमित्र जो चाहें कहें, परन्तु मैं तो यही कहता हूँ कि जिस भाँति कलिंग का युद्ध महाराज अशोक के लिए अन्तिम हुआ, उसी भाँति आज का यह सैन्य-महोत्सव, शस्त्रास्त्रों के प्रदर्शन को अन्तिम विदा देनेवाला उत्सव बन जाये। अपने प्रजा-जनों के नाम मेरी यही विज्ञप्ति है। शस्त्रास्त्रों का यह प्रदर्शन अन्तिम हो। आज के बाद कोई आयुधों को हाथ में न ले, शस्त्रों में किसी की श्रद्धा न रहे, कोई शस्त्रों की भाषा में बात न करे, कोई शस्त्रास्त्र धारण न करे। आज से सब प्रजाजन शस्त्रास्त्र शब्द को ही भूल जायें। इसी लिए आज का यह सैन्य-महोत्सव आयोजित किया गया है। यह उत्सव अन्तिम है। महाभारत युद्ध के पश्चात् जिस प्रकार सभी शस्त्रास्त्रों को जल में प्रवाहित कर दिया गया था, उसी भाँति आज गंगा और हिरण्यवती के संगम पर इन शस्त्रों को हम प्रवाहित करेंगे, इसी लिए मैं आज यहाँ आया हूँ....'

एक क्षण तो किसी की समझ में ही नहीं आया कि मगधपति क्या कह रहा है। सारी चन्द्रगुप्त-सभा चित्र-लिखित-सी रह गई। सैनिक भी सुनकर दंग रह गये।। तभी किसी ने उच्च स्वर में घोषणा कर दी—'शस्त्रास्त्र के परित्याग का यह महोत्सव मंगलमय हो! मगधपति की जय! धर्म की जय!'

यह सुनते ही पुष्यमित्र झपटकर आगे आया और अपना दाहिना हाथ ऊँचा उठाकर उसने राजा बृहद्रथ को चुप करते हुए आदेशपूर्वक कहा—महाराज मगधपति! जो राजा अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता वह राजा नहीं है, वह नीच और अधम है। महाराज, आप अपनी प्रतिज्ञा को भुलाये दे रहे हैं।

'क्या कहते हो पुष्यमित्र! मैं अपनी प्रतिज्ञा को भुलाये दे रहा हूँ? मैं तो अपने जीवन-भर के धर्म का पालन कर रहा हूँ। भूलते तुम हो। क्या तुम्हें याद नहीं कि राजा मैं हूँ, और तुम केवल सेनापति हो। क्या तुम्हें याद नहीं कि शस्त्र का परित्याग मगध की अटल राजनीति है और वह अटल रहेगी। इस अटल नीति की घोषणा करने के ही लिए तो हमने आज का यह महोत्सव आयोजित किया है। चतुरंगिणी सेना का संचालन करने का हमारा कोई उद्देश्य या कोई अभिलाषा नहीं है। हम तो यही चाहते हैं कि हमारी प्रजा

आज अन्तिम बार शस्त्रास्त्रों का प्रदर्शन देख ले और तब सदा के लिए शस्त्रों का परित्याग कर दिया जाये। अब आगे मगध में युद्ध तो नहीं ही होगा, परन्तु शस्त्र भी कहीं देखने को नहीं मिलेंगे। लोहकार शस्त्र नहीं गढ़ेंगे। योद्धा शस्त्र नहीं रखेंगे। महाशस्त्र तो मनुष्य की वाणी है।'

'महाराज!' पुष्यमित्र ने उत्तेजित होकर कहा, 'आप दुर्बलप्रतिज्ञ हैं। आपकी अपने ही शब्दों में श्रद्धा नहीं। कुसुमपुर की रक्षा करने की आप में सामर्थ्य नहीं। युद्ध, धर्म या शस्त्र इन तीनों शब्दों में से एक को भी आपने समझा नहीं है। आक्रमणकारियों एवं आततायियों से देश की रक्षा करने के लिए जो लोग तैयारियाँ कर रहे हैं उनके प्रति आपके मन में कोई आदर-मान नहीं है। दुर्बलप्रतिज्ञ राजा राजा होता ही नहीं....कहाँ है यवनी जय-सेना?'

पुष्यमित्र ने धनुर्धारिणी यवनियों की ओर दृष्टि डाली। उसकी उस दृष्टि में दृढ़ निश्चय और तत्काल कुछ कर गुजरने के भाव थे। यवनी आगे बढ़ आई। वह अपने हाथ में नंगी तलवार लिये हुए थी। पुष्यमित्र ने कहा—यवनि! तुम खड़ी रहो। मैं चन्द्रगुप्त-सभा का मन्तव्य भी पूछ देखूँ।

यवनी एक ओर खड़ी हो गई।

पुष्यमित्र ने चन्द्रगुप्त-सभा के सदस्यों को सम्बोधित कर बोलना आरम्भ किया :

'मगध के राजा ने अपनी प्रतिज्ञा को भंग किया है। सैन्य-महोत्सव की घोषणा करके अब वह कहता है कि सेना की आवश्यकता नहीं, शस्त्र निरर्थक हैं। आक्रमणकारियों से देश और प्रजा की रक्षा करने की उसे कोई चिन्ता नहीं। उसे केवल वाग्वितण्डा और वाणि-विलास चाहिए। भन्ते सदस्य-गण! चन्द्रगुप्त-सभा स्वयं ही न्याय करे। दुर्बलप्रतिज्ञ राजा राजा नहीं होता। आक्रमणकारी हमारे चारों ओर मँडरा रहे हैं। प्रजा की रक्षा करने का दायित्व हमारे ऊपर है। वाणि-विलास का यह समय नहीं। यह समय तो तत्काल निर्णय करने और उस निर्णय को अविलम्ब कार्यान्वित करने का है। कुसुमपुर एक बार विदेशी आक्रान्ताओं के द्वारा पददलित किया जा चुका है। आप लोगों को उसकी याद भूली न होगी। आज जैसी परिस्थिति है उसे चलने

दिया, रोका न गया तो यह नगर एक बार पुनः रौंद दिया जायेगा। इसलिए भन्ते सदस्यगण, चन्द्रगुप्त-सभा ही मगधपति का न्याय करे। अपने वचन का पालन करने के लिए दशरथ-जैसे राजा को भी प्राणत्याग करना पड़ा था—भारतवर्ष की यही संस्कृति और परम्परा है। इसलिए चन्द्रगुप्त-सभा तत्काल निर्णय करे !

'चन्द्रगुप्त-सभा निर्णय करती है कि इस राजा को कारा....'

कारागृह में डालने का निर्णय होते देख पुष्यमित्र ने बीच में ही रोककर कहा—कोई निर्णय करने से पहले, चन्द्रगुप्त-सभा को यह भी विचार कर लेना चाहिए कि यह राजा यूनानी और शक यवन राजाओं के द्वारा भारतीय धर्म के प्रति प्रदर्शित की जानेवाली बातों को अत्यधिक महत्व देता रहा है। यह उन्हें यहाँ बुलाकर धर्म-चर्चा करना चाहता था। स्वयं भी वहाँ जाकर उनसे मिलना चाहता था। इसी लिए यह राजा आज हिरण्यगुहा के मार्ग से बाहर भागा जा रहा था। एक क्षण का भी विलम्ब हो जाता तो यह यूनानी यवनों के साथ जा मिलता। इस समय यहाँ न होता, यूनानी यवनों के शिविर में होता। चन्द्रगुप्त-सभा को राजा के इस देशद्रोह का भी निर्णय करना चाहिए। यूनानी यवनसुन्दरी माद्री के साथ भागते हुए यह पकड़ा गया है। महामात्य कौंडिन्य भी इन लोगों के साथ था। वह भी पकड़ा गया और इस समय बन्दीगृह में है। इस देशद्रोही राजा को बन्दीगृह में डालने से देश पर नयी विपत्ति आ जायेगी। चन्द्रगुप्त-सभा इसे पदभ्रष्ट करे परन्तु पदभ्रष्ट करके इसे रखा कहाँ जायेगा ? यूनानी यवन इसे मुक्त करने के लिए आकाश-पाताल एक कर देंगे; क्योंकि युद्ध और सेना से विमुख राजा उनके हित में ही होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यहाँ युद्ध आरम्भ हो जायेगा। आप न्याय करें। इसे कारागार में डालने का अर्थ यही होगा कि पाटलिपुत्र पर हमेशा तलवार लटकती रहेगी।

अब भगवान् पतंजलि अपने स्थान से उठे और आगे आकर उन्होंने चन्द्रगुप्त-सभा को उद्देश्य कर कहा—नगरजन सुनें ! यदि पूर्व-गौरव प्राप्त करना है तो एक बार चतुरंगिणी सेना लेकर आप लोगों को दिग्विजय के लिए निकलना ही होगा। यह अनिवार्य है। यहाँ अश्वमेध-यज्ञ सम्पन्न किया

जायेगा। पाटलिपुत्र से चतुरंगिणी सेना निकलेगी। वह सौराष्ट्र, शाकल, सिन्धु, भृगुकच्छ, अवन्ती, विदिशा, मध्यमिका—सभी स्थानों में जायेगी। यूनानी यवनों और शकों की गृद्ध-दृष्टि इन स्थानों पर लगी हुई है। इन स्थानों पर विदेशियों के आक्रमण हो सकते हैं। अतएव इन स्थानों को हमें सबसे पहले सुरक्षित करना होगा। मगध को महान् बनाने का और साम्राज्य को स्थिरता प्रदान करने का केवल यही एक मार्ग है, अन्य कोई नहीं; यह अप्रिय लगे, प्रिय लगे, रुचिकर लगे, अरुचिकर लगे, परन्तु मार्ग यही है और इसी का आपको अवलम्बन करना होगा। सच्ची राजनीति भी यही है। इस राजनीति के अन्तर्गत आपको कुछ वस्तुओं का त्याग करना होगा। तो नगरजन सुनें कि तत्काल किन-किन वस्तुओं का त्याग करना होगा—अप्रवक्तारमाचार्यम्, अनधीयान ऋत्विजम्, अरक्षितारम् राजानं और दूसरे भी बहुत-से लोगों का तत्काल त्याग करना पड़ता है। जह्यात् भिन्नानावमिवार्णवे—समुद्र में टूटी हुई नौका को जिस प्रकार छोड़ दिया जाता है उसी प्रकार अयोग्य आचार्य, अनुपयुक्त ऋत्विज और रक्षा करने में असमर्थ राजा को भी तत्काल त्याग देना चाहिए। इसका निर्णय करने के लिए समय की नहीं, साहस की आवश्यकता है....

'त्याग दो! त्याग दो! इस मगधपति को त्याग दो! हमें नहीं चाहिए ऐसा राजा।'

'इसे कारागृह में डालो!'

'इसका वध कर दो!'

'इसे हमारे हवाले कर दो!'

'लाओ इस पर पथराव करें—हम इसे मार डालना चाहते हैं। यह क्रूर है। इसने हमारे बालकों, भगिनियों, माताओं, पत्नियों, बन्धुओं, स्वजनों और हमारे सर्वस्व को लूट ले जानेवालों को दण्ड नहीं दिया। इस मूर्ख की हमें कोई आवश्यकता नहीं। हम तो ऐसा शासन और ऐसा शासक चाहते हैं जो आततायियों को दंड दे, उनसे हमारी रक्षा करे। युद्ध से हम नहीं डरते। युद्ध होना है तो हो। मूर्ख राजा के शासन में तिल-तिलकर मारे जाने से तो कहीं अच्छा है युद्ध में काम आ जाना। मार डालो, महाबलाधिकृत, मार डालो इसे!'

'मगधपति महाराज !' पुष्यमित्र ने राजा के बिलकुल समीप आकर कहा, 'चन्द्रगुप्त-सभा का यही निर्णय है। तुमने इसे सुना। लेकिन मैं तुम्हें एक अवसर और देता हूँ। यदि तुम चतुरंगिणी सेना के प्रयाण की घोषणा करो और अश्वमेध-यज्ञ करने के लिए भगवान् पतंजलि से निवेदन करो तो प्राण बच सकते हैं। युग बदल गया है। उसके साथ हमें भी बदलना होगा....'

'पुष्यमित्र, तू मूर्ख है। कुछ भी नहीं समझता। मगध आज जितना महान् है उतना पहले कभी न था !' मगधपति ने दम्भपूर्वक कहा, 'तुम समझते नहीं, यह दूसरी बात है !'

मगधपति के इस दुराग्रह को देखकर चन्द्रगुप्त-सभा के सदस्य क्रोधोन्मत्त हो उठे। कई उपहास से भरी हँसी हँसने लगे। कइयों ने कहा :

'ओहो, यह तो अभी तक आसमान में ही घूम रहा है !'

'महाबलाधिकृत इसे नीचे ढकेल दो....'

'राजा अवध्य होता है महाबलाधिकृत ! तुम राजा का वध कर नहीं सकते....'

'यह बात ऐसे क्षुद्र राजाओं पर लागू नहीं होती। महान् पौरवराज-जैसों के लिए यह बात है, उन्हे तो अलिकसुन्दर भी नहीं मार सका था।'

अश्वमेध की घोषणा करो। मगध इसी तरह जीवित रह सकता है, स्थिर हो सकता है, तभी प्रदेशपति उसकी सत्ता को स्वीकार कर सकते हैं।'

लेकिन यह सुना तो बृहद्रथ बहुत ही उत्तेजित हो गया और पुष्यमित्र को उद्देश्य कर बोला—अरे ब्राह्मण सेनापति, जानता भी है कि तू क्या कर रहा है ? तू तो सारे देश को रक्त-रंजित कर देगा। जानता नहीं, जो युद्ध को निमंत्रित करता है वह स्वयं भी युद्ध में ही मारा जाता है। मैं तुझे श्राप देता हूँ, तू युद्ध मे भी नहीं मरेगा, हत्यारे तेरा वध करेंगे; तू शस्त्र से नहीं कुमौत मारा जायेगा। अश्वमेध के मोह में ही तेरा वध होगा। तूने मगध के साथ विश्वासघात किया है। सम्राट् अशोक के स्वप्न को छिन्न-भिन्न कर डाला है। मैं एक बार पुनः घोषणा करता हूँ, यहाँ उपस्थित सब सैनिकगण सुनें ! सुनो सैनिकगण, सुनो ! अपने सभी शस्त्रास्त्रों का परित्याग कर दो। शस्त्र-युग अब समाप्त हुआ। प्रतिहारियो, जाओ, सबके शस्त्र ले लो। सब शस्त्रों को हम

गंगा में प्रवाहित कर देंगे। सुनो सैनिको, सुनो! अपने सभी शस्त्रों का परित्याग कर दो और भिक्खु हो जाओ। जो भी भिक्खु बनेगा यह मगधपति स्वयं आकर उसे प्रणाम करेगा। बोलो, कौन-कौन भिक्खु बन रहे हैं? जो बनना चाहें वे हाथ ऊँचा उठा दें....

सैनिकों में इक्के-दुक्के हाथ ऊँचे उठते दिखाई दिये। पुष्यमित्र को अब स्थिति बड़ा भयंकर रूप ग्रहण करती हुई प्रतीत हुई।

तभी किसी ने भय, भ्रान्ति अथवा उपहास से यह घोषणा कर दी—भागो-भागो! यूनानी यवनों के अश्व दिखाई दे रहे हैं। भागो, प्राण बचाना हो तो भागो। वे आ रहे हैं....

यह सुनना था कि समस्त जन-समुदाय भय-कंपित हो उठा। वर्षों पहले के विदेशी आक्रमण की स्मृति लोगों के मन में सजग हो गई। तत्काल चारों ओर अव्यवस्था फैल गई। जो बैठे थे वे खड़े हो गये, जो खड़े थे वे भागने लगे। किसी ने शस्त्र सँभाले और किसी के हाथों से शस्त्र नीचे जा गिरे।

उसी समय पुष्यमित्र का घन-गम्भीर स्वर गूँज उठा—नगरजनो! यह सब हो रहा है मगधपति के पाप के कारण। सब शान्त हो जायें, निराकुल हो जायें! कुछ भी नहीं है। कोई नहीं है। मगधपति, तुम नीचे उतर जाओ। तुम पदभ्रष्ट किये जाते हो। चन्द्रगुप्त-सभा की यही आज्ञा है....

'देखी-देखी तेरी चन्द्रगुप्त-सभा! और देखी तेरी रण-साज-सज्जित सेना भी।' राजा बृहद्रथ के शब्द अब अविवेकपूर्ण ही नहीं, रोषपूर्ण भी हो उठे थे, 'मुझे नीचे उतारनेवाले! तुझे मैं आदेश देता हूँ कि तू ही नीचे उतर जा। मैं ही तुझे सेनापति-पद से च्युत करता हूँ। सैनिको, पकड़ लो इस पुष्यमित्र को। इसे भिक्खु बना दो। कम-से-कम इसका उद्धार तो हो जायेगा....'

भगवान् पतंजलि ने पुष्यमित्र की ओर आदेशात्मक दृष्टि से देखते हुए कहा—पुष्यमित्र! अरक्षितारम् राजानं भिन्नानावमिवार्णवे!

यह सुनते ही पुष्यमित्र वेगपूर्वक राजा बृहद्रथ की ओर झपटा और दृढ़ता से उसकी गरदन पकड़कर बोला—राजा बृहद्रथ, तुम पदभ्रष्ट किये गये, चन्द्रगुप्त-सभा का यही आदेश है। आदेश की अवहेलना करनेवाले को मैं स्वयं उठाकर फेंक दूँगा। मगध में चन्द्रगुप्त-सभा ही सर्वोच्च और सर्वोपरि है।

'अरे, देखी तेरी चन्द्रगुप्त-सभा। यहाँ चन्द्रगुप्त-सभा कुछ नहीं, धर्म ही सर्वोच्च और सर्वोपरि है। मैं....'

परन्तु पुष्यमित्र ने उसे अपनी बात पूरी करने का अवसर ही नहीं दिया। एक जोर के धक्के से उसे रंगमंच पर ढकेल दिया। धकियाता हुआ राजा बृहद्रथ मंच के एक किनारे जा लगा। पुष्यमित्र तलवार खींचकर उसके पीछे लपका और पूरी शक्ति से जनोइया वार किया। मगधपति ने पैंतरा बदलकर वार बचा लिया। तब पुष्यमित्र ने जोर का पाद-प्रहार करके उसे रंगमंच के नीचे गिरा दिया। एक शत सोपान ऊँचे रंगमंच से नीचे गिरते ही बृहद्रथ की हड्डी-पसली एक हो गई। वह ऐसा गिरा कि फिर उठने का नाम न लिया। चन्द्रगुप्त-सभा के सभी सदस्य उस पर चढ़ दौड़े।

तभी भगवान् पतंजलि ने उच्च स्वर में सभी को शान्त करते हुए कहा—बस, अब बहुत हुआ। कोई मगधपति के मृत शरीर का निरादर न करे। मृतात्मा पवित्र होती है; कोई उसका अपमान न करे। हमें राजोचित सम्मान के साथ इसकी अन्त्येष्टि करनी चाहिए। यह समाप्त हुआ और इसके साथ इसका युग भी पूरा हुआ। आज पुष्यगुप्त-सभा का जन्म होता है। चन्द्रगुप्त-सभा का स्थान आज से पुष्यगुप्त-सभा लेती है। हमारे पास समय नहीं है। हमें आक्रमणकारियों का निवारण करने के लिए सेना लेकर प्रयाण करना है। बोलो महाराज पुष्यगुप्त....

'बलाधिकृत पुष्यगुप्त....' किसी ने कहा।

'हाँ, महाबलाधिकृत पुष्यगुप्त की जय हो! पुष्यगुप्त-सभा की जय हो!'

गगनभेदी घोषणाओं पर घोषणाएँ होने लगीं। और उन्हीं घोषणाओं में बृहद्रथ मौर्य का नश्वर शरीर विलीन हो गया।

३२ : एक नया संकट

मगधपति मारा न जाता तो मगध मर जाता। मगधपति बृहद्रथ के मारे जाने की बात शीघ्र ही सारे भारतवर्ष में फैल गई। विद्युत-वेग से यह समाचार भारतव्यापी हो गया। इसलिए अब प्रश्न यह था कि पुष्यमित्र को अपना घर व्यवस्थित करने के लिए समय मिल भी पायेगा या नहीं। स्वयं पुष्यमित्र को

भी इसी बात की चिन्ता थी। वह पाटलिपुत्र पर होनेवाले आक्रमण को रोकना चाहता था। लेकिन इस घटना से तो आक्रमण सिर पर ही आ खड़ा हुआ था। अब यूनानी यवन ही नहीं, कलिंगराज और शातकर्णी भी मगध पर आक्रमण करने के लिए लालायित हो सकते थे। मगधपति की निर्बलता देश में किसी से छिपी हुई नहीं थी। बृहद्रथ की मूर्खतापूर्ण नीति सर्वत्र ही उपहास का विषय बन चुकी थी। ऐसे समय में पुष्यगुप्त-सभा की स्थापना करके शक्तिशाली बनने का ढोंग एकदम निरर्थक होता। इससे तो पुष्यगुप्त-सभा का महत्त्व ही नष्ट हो जाता। मगधेश्वर के पद के प्रति किसी के मन में कोई सम्मान नहीं रह गया था। इसी लिए पुष्यमित्र ने अपना राज्याभिषेक करवाना अस्वीकार कर दिया। मगध के विना बराबर राज्य का क्या तो राजा और क्या उसका राज्याभिषेक !

तब सारा राज-काज महाबलाधिकृत पुष्यमित्र के नाम पर ही चलाने का निश्चय किया गया। सर्वत्र यह बात घोषित कर दी गई कि महाबलाधिकृत पुष्यमित्र जब तक मगध को महान् नहीं बना लेंगे, अपना राज्याभिषेक नहीं करेंगे। मगध पर तीन दिशाओं से होनेवाले आक्रमणों को निरस्त करके ही वह अपना राज्याभिषेक करेंगे।

पुष्यमित्र को भी चैन नहीं था। वह बैठा अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। चारों ओर से उसके गुप्तचर आ-आकर समाचार देते थे। कलिंगपति की शक्तिशाली गजसेना, अश्वसेना और पदाति सेना ने आन्ध्रपति को घबराहट में डाल दिया था। दोनों के बीच संघर्ष अनिवार्य होता दिखाई देता था। आन्ध्रपति शातकर्णी की स्थिति बड़ी विषम हो गई थी। वह न आगे बढ़ सकता था और न पीछे हट सकता था। वह अपने प्रतिष्ठानपुर में मोर्चेबन्दी किये अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन इतना तो निश्चित था कि अश्मक जनपद में से उसे पीछे हटना ही होगा।

ऐसी स्थिति में पुष्यमित्र के लिए एक ही मार्ग था और वह था, जैसा कि भगवान् पतंजलि ने निर्देश किया था, अश्वमेध-यज्ञ करना। अश्वमेध-यज्ञ की घोषणा करते ही एक साथ कई बातें बन जाती थीं—सबसे पहली तो यह कि मगध चुनौती देनेवालों को अब स्वीकार नहीं कर सकता; दूसरी यह कि मगध

अपने प्रदेशों और अपने सीमान्तों की रक्षा के लिए प्रस्तुत ही नहीं सन्नद्ध भी है। तीसरी यह कि जो भी पाटलिपुत्र की ओर आँख उठाकर देखेगा उसकी आँख निकाल ली जायेगी। अश्वमेध की घोषणा में, बिना कहे ही, इन सभी बातों का समावेश हो जाता था।

इसलिए पुष्यमित्र ने धूमधाम से अश्वमेध-यज्ञ की तैयारी कर दी। भगवान् पतंजलि ने पाटलिपुत्र के बाहर एक विशाल यज्ञशाला का निर्माण किया। देखते-देखते वहाँ बड़ी चहल-पहल मच गई। धनुर्धारियों, अश्वारोहियों, गज-सेनानियों के आवागमन का ताँता लग गया। यज्ञ के अश्व की रक्षा के लिए एक शत राजकुमार मगध में से बुलाये जाने की घोषणा की गई। उनको सहायतार्थ एक सौ रथियों और एक सौ अश्वारोहियों का चयन भी किया जाने को था। इन सब को मर मिटना होगा, पर किसी को भी वे अश्व को पकड़ने न देंगे; और पकड़ लिया तो वे छुड़ाकर ही रहेंगे। इन वीरों को प्राण हथेली पर लेकर चलना होगा। मृत्यु से अपना स्वयंवर रचाना होगा। देश में जो परम वीर हों, वीरों में जो श्रेष्ठ वीर हों वही इस कार्य के लिए आगे आयें!

परन्तु उधर अग्निमित्र ने जबसे यह सुना कि मित्रदेव ने सुमित्र का वध किया, उसके क्रोध का पार न था। उसने मित्रदेव का पता लगाने के लिए आकाश-पाताल एक कर रखा था। अपने श्रेष्ठ अश्वारोहियों को उसका पता लगाने के लिए उसने चारों ओर दौड़ा रखा था। पुष्यमित्र के नाम उसने कई सन्देश भी भेजे। इधर से पुष्यमित्र ने सब बातें उसे समझाने के लिए अग्रपाल प्रतिहारी को भेजा। इसके बाद वसुमित्र भी अपने पिता के पास हो आया। परन्तु अग्निमित्र का किसी भी प्रकार समाधान नहीं हुआ। वह अपने प्रिय पुत्र सुमित्र के हत्यारे को दंड देना चाहता था। तभी उसे यह समाचार मिला कि मित्रदेव कलिंगराज खारवेल के यहाँ आश्रय लिये पड़ा है। उसका दिल खट्टा हो गया। यह विचार कि वह अपने पुत्र के हत्यारे को दंड नहीं दे सकता, उसे दिन-रात व्यग्र किये रहता। पुत्र-शोक की अग्नि अहर्निश उसके हृदय में धधकती रहती थी। उसे अपना जीवन भारी और असह्य लगने लगा।

इस प्रकार पुष्यमित्र के परिवार मे गृह-कलह और क्लेश का बीजारोपण हो गया। पुष्यमित्र अपनी स्थिति को समझा नहीं सकता था। वह यह भी नहीं बतला

सकता था कि मित्रदेव को उसी ने भाग जाने दिया। यदि अग्निमित्र को यह बात मालूम हो जाती तब तो वह अपने पिता का ही नहीं, मगध देश का भी शत्रु बन जाता। इस विषम स्थिति में से निकलने का सिर्फ एक ही मार्ग था और वह यह कि जैसे भी हो मित्रदेव को कलिंगराज के यहाँ से वापिस बुला लिया जाये। परन्तु अभी तो यह भी असम्भव ही था। मित्रदेव को यह सूचना पहले ही दे दी गई थी कि जब अश्वमेध-यज्ञ की सेना प्रयाण करे तब उसे आ जाना चाहिए। परन्तु अग्निमित्र के क्रोध को देखते हुए उसे बुलाना निरापद नहीं था। उसके आते ही पुनः हत्याकाण्डों का सिलसिला आरम्भ हो जाता।

अन्त में बहुत सोच-विचारकर उसने यही निश्चय किया कि अश्वमेध-यज्ञ का सम्मान अग्निमित्र को ही प्रदान करना चाहिए। एक ब्राह्मण के हाथ उसने अग्निमित्र के नाम यह सन्देशा भेजा कि अग्निमित्र पाटलिपुत्र आकर अश्वमेध-यज्ञ करे, पुष्यमित्र विदिशा में जाकर उसका कार्यभार सँभाले और वसुमित्र यज्ञ के अश्व के रक्षणार्थ सेना के साथ जाये; और अश्वमेध-यज्ञ के पश्चात् अग्निमित्र को ही मगधेश्वर के पद पर अभिषिक्त किया जाये।

परन्तु अग्निमित्र इसके लिए भी प्रस्तुत नहीं हुआ। सभी बातों का उसने एक यही उत्तर दिया कि मुझे सुमित्र के बिना कुछ भी नहीं सुहाता।

लेकिन सोच-विचार के लिए अधिक समय भी तो नहीं था। निष्क्रियता से मगध की ही हानि होती। इसलिए पुष्यमित्र ने स्वयं ही तत्काल अश्वमेध-यज्ञ आरम्भ कर दिया। इसी समय उसे यह समाचार भी मिले कि शातकर्णी और कलिंगराज खारवेल के बीच मन-मुटाव हो गया है और दोनो में संघर्ष छिड़ जाने की पूरी सम्भावना है। यह स्थिति पुष्यमित्र के अनुकूल ही थी। कलिंगराज खारवेल का पाटलिपुत्र पर बढ़ता हुआ दबाव इस घटना-चक्र से कुछ तो अवश्य कम हो गया था।

तब पुष्यमित्र सब ओर से विचारों को मोड़कर अश्वमेध-यज्ञ के कार्य में प्रवृत्त हो गया।

३३ : नीलम प्रतिमा

मित्रदेव ने जब कलिंगराज के यहाँ पहुँचकर यह समाचार दिये कि मगधपति मार डाला गया, और पाटलिपुत्र में मगधपति का कोई व्यक्ति सुरक्षित नहीं, और इसी लिए वह स्वयं वहाँ से भाग आया है, और सभी वहाँ से भाग जायेंगे, तो यह सुनकर एक क्षण के लिए तो सभी स्तम्भित रह गये।

कलिंगराज खारवेल बड़ा ही शक्तिशाली पुरुष था। उसकी सेना भी उतनी ही शक्तिशाली थी। परन्तु वह जितना बलशाली था उतना ही संयमी भी था। पाटलिपुत्र के समाचार सुने तो वह वहाँ आक्रमण करने के लिए लालायित तो अवश्य हुआ, परन्तु फिर भी एकदम दौड़ा न गया, क्योंकि वह जानता था कि कलिंग की राजधानी से पाटलिपुत्र बहुत दूर था; और वहाँ आक्रमण करने से पहले कलिंग में सर्वत्र शान्ति और सुव्यवस्था नितान्त आवश्यक थी। और इस समय कलिंग को सबसे अधिक भय आन्ध्रपति शातकर्णी से ही था।

आन्ध्रपति शातकर्णी का एक नाम मल्लकर्णी भी था। उसे अपने बाहुबल में विश्वास था। उसकी रानी नायानिका लाट की रहनेवाली थी। लाट देश के निवासी झुकना जानते ही न थे। नायानिका अपने साथ यही विरासत लेकर आन्ध्र देश आई थी। शातकर्णी और नायानिका ने अपने पुत्र का नाम रखा था शक्तिश्री। और ये नाम निरे नाम नहीं थे। इन नामों को धारण करनेवाले अपने नामों के अर्थ को चारितार्थ करके भी दिखाते थे।

ऐसे ही सार्थक नामवाला एक दूसरा व्यक्ति काश्मीर का जालौक था। वह भगवान् शंकर के रुद्र-रूप और जगदम्बा शक्तिदेवी का उपासक था। उसने शकों और यूनानी आक्रमणकारियों को काश्मीर की सीमा में घुसने नहीं दिया था। अहिंसा धर्म को वह मूर्खता की पराकाष्ठा समझता था।

प्रतिष्ठानपुर का शातकर्णी भी उसी की भाँति ब्राह्मण-धर्म का उपासक था। वह भी समझता था कि जब तक बाहुबल का प्रदर्शन न किया जायेगा और एक शक्तिशाली सेना न होगी यूनानियों और शकों का आगे बढ़ना रोका नहीं जा सकेगा।

उन दिनों भारतवर्ष में तीन शक्तिशाली सेनापति थे—एक कलिंगराज

खारवेल, दूसरा आन्ध्रपति शातकर्णी और तीसरा मगध का महाबलाधिकृत पुष्यमित्र। ये तीनों अपने देश के गौरव थे, परन्तु साथ ही यह भय भी था कि कहीं तीनों आपस में न टकरा जायें। यदि इनमें संघर्ष छिड़ जाता तो यूनानियों का आगे बढ़ने का रास्ता साफ हो जाता। साकल का राजा सेनापति मिनेण्डर तो अपनी सेना लिये आक्रमण के लिए तैयार खड़ा ही था। जब राजा बृहद्रथ का वध हुआ, वह मध्यमिका नगरी को घेरने की तैयारियाँ कर रहा था। यह भी एक कारण था जिससे कलिंगराज ने सहसा पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया। लेकिन यह भय उसे अवश्य था कि कहीं पुष्यमित्र ही कलिंग पर आक्रमण न कर दे। इसलिए उसने एक सेनापति के साथ थोड़े-से सैनिकों का दल मगध-सेना की गतिविधि का पता लगाने के लिए पाटलिपुत्र की ओर भेजने का निश्चय किया।

मित्रदेव ने जब ये तैयारियाँ देखीं तो कलिंगराज को उभारने के लिए उसने मगध के राजकोष में संग्रहित भगवान् महावीर की नीलम प्रतिमा के बारे में उससे कहा। कलिंगराज खारवेल इस प्रतिमा के बारे में पहले भी सुन चुका था। लोगों के मुँह उसने सुन रखा था कि यह प्रतिमा पुराने समय में मगध का हिरण्यनन्द कलिंग से ही उठा ले गया था। जब मित्रदेव ने उस प्रतिमा का वर्णन किया तो कलिंगराज खारवेल के विस्मय की सीमा न रही।

मित्रदेव ने कहा—महाराज, मेरे पास तो एक क्षण का भी समय नहीं था। यदि अधिक रुकता तो निश्चय ही मेरा वहाँ वध कर दिया जाता। चारों ओर सैनिक खड़े हो गये थे। हिरण्यगुहा के अतिरिक्त पलायन का कोई मार्ग ही नहीं रह गया था। यदि तनिक-सा भी अवसर मिलता तो मैं उस प्रतिमा को उठाकर अवश्य ले आता। कितनी सुन्दर वह प्रतिमा है! उसके नीलम का मैं आपके सामने क्या वर्णन करूँ। सारी पृथ्वी पर ऐसा नीलम कहीं ढूँढ़े नहीं मिलेगा। और मूर्तिकार ने मूर्ति बनाने में तो अपनी सारी कला ही समाप्त कर दी है! इतनी शान्त, सौम्य वह मूर्ति है कि आपसे क्या कहूँ! मुख पर किसी प्रकार का संकल्प नहीं, विकल्प नहीं, चिन्तन नहीं, प्रार्थना नहीं, अहंकार नहीं, विनम्रता नहीं—एकदम निर्विकार, निर्विकल्प, नित्यानन्द वह मूर्ति है। अनन्त का साक्षात्कार करती हुई उस प्रतिमा को देखकर दर्शक

के मन में भी वैसी ही शान्ति और कालातीत चिन्तन का प्रादुर्भव होने लगता है। फिर विशेषता यह है कि उस एक मूर्ति को देखते-देखते आपको उसके पीछे दूसरी मूर्ति और दूसरी के पीछे तीसरी और तब चौथी और पाँचवीं और छठवीं और फिर सातवीं और इस प्रकार अनन्त मूर्तियाँ दिखाई देने लगती हैं। उस एक मूर्ति को देखने के पश्चात् किसी और मूर्ति को देखने की इच्छा ही शेष नहीं रह जाती। महाराज, वह मूर्ति वर्णन करने की नहीं देखने की ही वस्तु है।

मित्रदेव के मुँह से महावीर की नीलम प्रतिमा का वर्णन सुनकर कलिंग-राज खारवेल उसे प्राप्त करने के लिए आतुर हो उठा। अब वह अपने स्थान पर बैठा न रह सका। उठकर खड़ा हो गया और अपने प्रकोष्ठ में चक्कर लगाने लगा। उसके हाव-भाव से ऐसा प्रतीत होता था मानो वह किसी निश्चय पर पहुँचने के लिए संकल्प-विकल्प कर रहा हो। उसे इस प्रकार उत्तेजित होते देख मित्रदेव को बड़ी चिन्ता हुई। वह डरा कि कहीं खारवेल अभी ही मगध पर आक्रमण करने का आदेश न दे दे। यदि उसने ऐसा किया तब तो पुष्यमित्र की सारी योजना ही निष्फल हो जायेगी। भगवान् पतंजलि ने तो यही कहा था कि जब तक मगध अपनी स्थिति को सुदृढ़ न कर ले कलिंग और आन्ध्र के बीच संघर्ष बनाये रखना होगा।

इसलिए उसने कहा—परन्तु महाराज, एक बात है। उतावली करने से काम बिगड़ सकता है। यदि आप उस प्रतिमा को प्राप्त करने लिए आक्रमण करें तो हो सकता है कि मगधवाले उसे अदृश्य ही कर दें। फिर तो आपको अपने अभीष्ट की उपलब्धि न होगी। आप जिस प्रतिमा को प्राप्त करना चाहते हैं वही आपको मिलेगी नहीं। और आप अनार्य तो हैं नहीं कि नगर को लूटकर और स्त्री-बालकों की हत्या करके अपने क्रोध को शान्त करें। हमारा काम तो तभी बन सकता है जब यहाँ कलिंग में सर्वत्र शान्ति रहे और महा-राज की चतुरंगिणी सेना पाटलिपुत्र के दुर्ग के समीप जा पहुँचे। फिर उस ब्राह्मण सेनापति को भी यह विश्वास हो जाना चाहिए कि एक प्रतिमा की रक्षा में तो सारा देश ही पददलित कर दिया जायेगा; तभी वह झुकने को तैयार होगा। इसलिए अभी तो, मेरी समझ में, यही सन्देश भेजना उचित

होगा कि मगध में नन्दराज के समय की जो नीलम प्रतिमा है वह कलिंग से ही वहाँ ले जाई गई है; वह नीलम प्रतिमा हमें प्रत्येक रात दिखाई देती है और कहती है कि हे कलिंगराज, यदि तू ही हमें अपने मूलस्थान में नहीं ले गया तो कौन ले जायेगा ?

'वाह मित्रदेव, वाह ! तुम्हारी कल्पना के क्या कहने ! कवियों को भी मात कर दिया तुमने तो !'

'परन्तु महाराज, मेरी इस कल्पनाप्रवणता ने ही तो मुझे धोखा दिया और यही देश से मेरे निर्वासन का कारण भी बनी। यह तो भला हो उस यवनसुन्दरी माद्री का कि उसने पहले ही से दो पवनपंखी अश्वों का प्रबन्ध कर रखा था। अनायास ही मुझे एक अश्व का उपयोग करने का सुअवसर मिल गया ! एक पर बैठकर माद्री भाग गई और दूसरे पर बैठकर मैं आपकी शरण में चला आया, नहीं तो मेरी कवि-कल्पना ने तो मेरा सत्यानाश ही कर दिया था। इस समय या तो बन्दीगृह में होता या शूली पर टँगा होता। इसी लिए तो कह रहा था देव, कि मगध में इस समय कोई सुरक्षित नहीं। यूनानी मध्यमिका पर आक्रमण करने के लिए दौड़े चले आ रहे हैं; फिर भी मगध में किसी के कान पर जूँ नहीं रेंगती। मेरा तो अनुमान है कि आज की परिस्थिति में सम्भवतः सन्देश से ही काम निकल जाये। तो आप सन्देश भेज ही दीजिए। और साथ में उपहार-स्वरूप यहाँ से एक मूल्यवान स्वर्ण-शिल्प भी भेजिए।

कलिंगराज को भी मित्रदेव की यह बात विचारणीय प्रतीत हुई। हो सकता है कि सन्देश से ही काम निकल जाये। मित्रदेव प्राण बचाकर मगध से भागा था, वृद्ध था, इसलिए लगता नहीं था कि विश्वासघात करेगा; और करेगा भी क्यों ? कुछ देर सोचते रहने के पश्चात् कलिंगराज ने पुकारा— कौन है द्वार पर ?

'महाराज की जय हो ! मैं यशदेव उपस्थित हूँ।' एक प्रतिहारी ने दौड़े आकर अभिवादन किया।

'जाओ, सेनापति हस्तिसिंह को बुला लाओ।'

प्रतिहारी अभिवादन कर चला गया।

कलिंगराज ने कहा—मित्रदेव, तुम हस्तिसिंह के साथ वहाँ जा सकोगे?

'महाराज! मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? मैं वहाँ रहा तो सेनापति को नीलम प्रतिमा का निश्चित पता-ठिकाना बता सकूँगा। परन्तु यह भी विचारणीय है कि वहाँ भयंकर अराजकता है और उन्होंने मुझे वहीं रोक लिया, तो? क्या इससे कलिंग का अपमान नहीं होगा? तब तो सारे भरतखण्ड में कलिंग का उपहास होने लगेगा।'

'परन्तु क्या वहाँ राजनीतिक रीति-नीति का इतना अधिक अधःपतन हो गया है कि वे सन्देशवाहक को भी रोक लेंगे?'

'अधःपतन तो, महाराज, इससे भी अधिक हो गया है। वे लोग तो अश्वमेध की भी बातें करने लगे हैं। जाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं, परन्तु उस ब्राह्मण सेनापति पर जरा भी विश्वास नहीं किया जा सकता।'

कलिंगराज को मित्रदेव का यह कथन तथ्यपूर्ण और विचारणीय लगा।

थोड़ी ही देर में सेनापति हस्तिसिंह वहाँ आ गया। वह काले रंग का ऊँचा और शरीर से हृष्ट-पुष्ट आदमी था। उसके चेहरे पर हजारों तलवारों की धार का पैनापन था।

कलिंगराज ने उससे कहा—हस्तिसिंह, तुम्हें मगध जाना होगा। हम चाहते हैं कि तुम स्वयं वहाँ जाओ। अपने साथ एक सहस्र अश्वारोही और एक स्वर्ण शिविका भी लेते जाओ। वहाँ जाकर सेनापति पुष्यमित्र से हमारा यह सन्देश कहना। सन्देश को भली प्रकार ग्रहण कर लो।

जब सेनापति हस्तिसिंह सतर्क हो गया तो खारवेल ने आगे कहा—वहाँ जाकर हमारी ओर से कहना कि मगध में तो अब हत्या और मार-काट की परम्परा चल पड़ी है। इसकी प्रतिक्रिया और प्रभाव दूसरों पर भी अवश्य होगा। परन्तु फिर भी हमारा यह विश्वास है कि आप वैर को प्रोत्साहन नहीं देंगे। आपके यहाँ नन्दराज के समय से भगवान् महावीर की एक नीलम प्रतिमा चली आती है। नन्दराज उसे कलिंग से ही ले गये थे। जब तक आपके यहाँ शान्ति और अहिंसा की नीति का अवलम्बन किया जाता रहा तब तक उस मूर्ति के मगध में रहने से कोई हानि नहीं थी; परन्तु अब वातावरण बदल गया है, इसलिए वह मूर्ति पाटलिपुत्र में शोभा नहीं पा सकती।

मैं, कलिंगराज खारवेल, भगवान् महावीर का अनुयायी हूँ। आप उस प्रतिमा को आदर-सहित हमें लौटा दें। इससे हमारे पारस्परिक सम्बन्ध और भी दृढ़ होंगे। आप पर यूनानियों के आक्रमण का भय भी मँडरा रहा है। ऐसे समय भगवान् महावीर की उस नीलम प्रतिमा का मगध में रहना उचित नहीं प्रतीत होता। हम अपनी ओर से एक सहस्र अश्वारोही उसे लेने के लिए भेज रहे हैं। आप भी साथ में एक शत सेनानियों को भेजें। यदि अभी प्रतिष्ठान-पुर के राजा को शस्त्रों से समझाना न होता तो हम स्वयं ही भगवान् महावीर की उस प्रतिमा को लेने आते। हमारे इस सन्देश को आप मैत्री का ही सन्देश समझें। आपके यहाँ का मित्रदेव सम्प्रति हमारे यहीं है। हम उसी को भेजते, परन्तु वृद्धावस्था के कारण वह इतनी लम्बी यात्रा का श्रम सहन नहीं कर सकेगा। फिर शरणागत को यदि क्षत्रिय लौटाने लगे तो देश में अनार्यता का बोलबाला हो जायेगा, और क्षात्र-धर्म रसातल को पहुँच जायेगा। वैसे हम चाहते तो यही थे कि मित्रदेव स्वयं जा सकता, क्योंकि वह जानता है कि मूर्ति कहाँ पर रखी हुई है। परन्तु हमें विश्वास है कि मूर्ति का सही स्थान तो आपको भी अवश्य ज्ञात होगा। हम अपने सेनानायक हस्तिसिंह को स्वयं अपनी राजमुद्रा देकर वहाँ भेज रहे हैं। व्यर्थ का युद्धोन्माद आपको सर्वनाश की ओर प्रेरित न करे, इसलिए हम इतना विस्तृत सन्देश भेज रहे हैं। हमें विश्वास है कि आप भगवान् महावीर की प्रतिमा को लौटाने का ही निर्णय करेंगे। वैसे हम यह भी बता देना उचित समझते हैं कि कलिंग की सेना के गजराज भगवती भागीरथी में स्नान करने की कभी से प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह बताने की तो आपको आवश्यकता ही नहीं है कि जिस राजा के गजराज भागीरथी और कावेरी में स्नान कर लेते हैं वह अमर हो जाता है। हम इस बात पर विशेष बल देते हैं कि इस समय कलिंग और मगध के बीच मैत्री-सम्बन्ध वर्तमान हैं। उन सम्बन्धों को दृढ़ करने का यह एक अवसर अनायास ही आपको उपलब्ध हो रहा है। यदि आपने अवसर से लाभ नहीं उठाया तो उसका प्रायश्चित्त बड़ा ही कठोर हो जायेगा। फिर स्वयं हमीं को उस प्रतिमा को लेने के लिए वहाँ आना पड़ेगा। बस, हस्तिसिंह, हमारा इतना ही सन्देश है।

दूसरे ही दिन हस्तिसिंह श्रेष्ठतम अश्वारोहियों और स्वर्ण मण्डपिका के साथ पाटलिपुत्र के लिए चल पड़ा। आटविकों से बचने के लिए उसने सुरक्षित मार्ग ग्रहण किया था। चलते-चलाते एक दिन वह पाटलिपुत्र भी पहुँच गया। वहाँ नगर के बाहर एक उद्यान में उसने डेरे डाले और पुष्यमित्र के पास अपने आगमन का सन्देश भेजा। यह सुनते ही कि वह कलिंगराज का सन्देश लेकर आया है उसे मिलने के लिए तत्काल बुलाया गया।

३४ : अश्वमेध-यज्ञ

पुष्यमित्र तो जानता ही था कि हस्तिसिंह क्यों आया है। उसी ने मित्रदेव से कहा था कि वह कलिंगराज को महावीर की नीलम प्रतिमा के बारे में बताये। पुष्यमित्र इस समय कलिंगराज से बिगाड़ नहीं करना चाहता था। न वह उसे उत्तेजित करना चाहता था, न निराश। जब तक अश्वमेध-यज्ञ सम्पन्न नहीं हो जाता, मगध-साम्राज्य की सीमाएँ निर्धारित नहीं हो जातीं, उसके गौरव को प्रदेशपति स्वीकार नहीं कर लेते, पुष्यमित्र किसी से भी संघर्ष नहीं करना चाहता था। एक बार मगध के बल का निर्धारण हो जाये, उसके बाद किसी से भी निपटा जा सकता था। अभी कलिंग से संघर्ष में उलझना मगध के सर्वनाश का ही कारण हो जाता। अभी तो यही देखना उचित था कि कलिंग इस ओर रुख न करे। इसलिए पुष्यमित्र ने दुहरी राजनीति अपनाने का निश्चय किया।

पुष्यमित्र ने जिस क्रान्ति को प्रारम्भ किया था उसकी पूर्णाहुति के लिए भी उसे समय की आवश्यकता थी। मगध की प्रजा में धीरे-धीरे प्राण संचरित होने लगा था। मगध के निर्वीर्य राजाओं ने भगवान् तथागत की अहिंसा-नीति का दुरुपयोग करके सारे देश की जनता को भेड़-बकरी बना दिया था। प्रजा इतनी निर्बल हो गई थी कि आततायियों का प्रतिरोध करने की भी बात उसके मन में नहीं आती थी। अपने ही नेत्रों के सम्मुख अपने प्रियजनों की हत्या या उनका अपहरण होते देखकर भी उसके कान पर जूँ नहीं रेंगती थी। और इस कायरता को अहिंसा का नाम दिया जाता था। पुष्यमित्र ने इसी कायरता को अश्वमेध-यज्ञ के द्वारा जड़-मूल से उखाड़ने का निश्चय किया था।

सबसे पहले तो उसने राजनीति और शासन में से धर्म और धार्मिकता को निकाल बाहर किया। उसने घोषित किया कि राजा और शासन का कोई एक धर्म नहीं हो सकता। प्रजा के समस्त धर्म ही राजा के धर्म होते हैं। निश्चय ही राजा का अपना व्यक्तिगत धर्म भी हो सकता है, परन्तु उसे राजधर्म नहीं कहा जा सकता और न राज-शासन में उसके लिए कोई स्थान हो सकता है। उसने यह भी घोषित किया कि प्रजारंजन ही राजा का सबसे बड़ा धर्म है।

इसी महाबलाधिकृत पुष्यमित्र ने भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग गुप्तयुग की नींव डाली। परमभागवत गुप्तों के शासन की यही विशेषता थी कि उन्होंने किसी भी एक धर्म को अत्यधिक महत्त्व और प्रमुखता नहीं दी। उन्होंने शासन को भी धर्म-निरपेक्ष रखा। अपने व्यक्तिगत धर्म को शासन में प्रवेश न करने दिया। वे विवेकी थे। प्राज्ञ थे। व्यवहारकुशल थे। वे जानते थे कि शासन किस प्रकार करना चाहिए। उनके राजधर्म की पहली संहिता थी आततायियों को वश में रखना। उन्होंने महान् पराक्रम किये। उनके समय में भारतीय विद्या, कला, वैभव और पराक्रम चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुए। उन्होंने महान् साम्राज्यों की स्थापना की। उनके आदर्श भी महान् थे। उनके शासन-काल में भारतीय जनता की चहुँमुखी प्रगति हुई। व्यापार, वाणिज्य, साहित्य, शिल्प, कला, कारीगरी, राजनीति एवं अर्थनीति का जैसा उत्कर्ष उस युग में हुआ वैसा फिर कभी नहीं हुआ। सबसे उल्लेखनीय बात तो यह हुई कि उस युग में जन-साधारण के रहन-सहन और रीति-नीति का, व्यवहार और आचरण का एक स्तर निर्धारित हो गया, जिससे नीचा स्तर मनुष्य होने के लिए स्वीकार ही नहीं किया जाता था। गुप्त राजाओं की भारतीय इतिहास और मानवता को यही सबसे बड़ी देन थी।

और इन सब का बीजारोपण किया था सेनापति पुष्यमित्र ने। उसने सच्चे अर्थों में राजनीति में आर्य-परम्परा को प्रस्थापित करने का प्रयत्न किया था। उसका अश्वमेध-यज्ञ इसी परम्परा का प्रतीक था। वह इस बात का संकेत था कि भारतीय इतिहास नया मोड़ ले रहा था, नये युग का प्रारम्भ हो रहा था।

हस्तिसिंह ने पाटलिपुत्र आकर इसी नये युग का मंगलाचरण देखा। उसने पाटलिपुत्र का सारा वातावरण ही बदला हुआ पाया। यह देखकर

उसे अतीव आश्चर्य हुआ कि राजा बृहद्रथ के मारे जाने का किसी को भी शोक न था। उसने चारों ओर सैनिक चहल-पहल देखी। उसे स्थान-स्थान पर सशस्त्र सैनिकों की पाँतें धनुर्विद्या का अभ्यास करती दिखाई दीं। कहीं हाथियों के समूह खड़े थे तो कहीं अश्वारोही अश्व-संचालन कर रहे थे। सारी प्रजा उत्साह में विभोर हो रही थी। आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करने की उमंग सर्वत्र दिखाई देती थी। साधु-संन्यासियों और भिक्खुओं की संख्या पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई थी। हस्तिसिंह यह सब देखता हुआ मगध महाराज के सुगंगप्रासाद में पहुँचा।

उसे आशा थी कि पुष्यमित्र महाराजाधिराज की गरिमा में पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठा दिखाई देगा। हस्तिसिंह यह सोचता जा रहा था कि अन्यायपूर्वक सिंहासन पर अधिकार करनेवाले का वह कितना और कैसे सम्मान करे, सम्मान करे भी या नहीं? परन्तु राजाप्रसाद में पहुँचकर उसने जो देखा तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही।

मगध का राजसिंहासन बिलकुल खाली पड़ा था। उस पर कोई बैठा हुआ नहीं था। सिंहासन के समीप एक साधारण आसन्दी पर पुष्यमित्र उसे बैठा दिखाई दिया। चकित होकर हस्तिसिंह ने दूसरी ओर दृष्टि घुमाई तो वहाँ महामुनि पतंजलि को बैठे पाया। समीप ही कुछ विश्वस्त सचिव भी बैठे हुए थे। दूर द्वार पर यवनियाँ और द्वारपाल मौन खड़े थे। वातावरण में शान्ति और गम्भीरता थी। ऐसा लग रहा था मानो नये उत्तरदायित्व ने सभी को गम्भीर कर दिया हो।

राजप्रासाद की साज-सज्जा में भी प्रचुर परिवर्तन परिलक्षित होता था। पहले के ठाठ-बाट और वैभव का अब कहीं नाम भी नहीं था। नृत्य, नाटक और संगीत की गोष्ठियाँ बन्द कर दी गई थीं। स्वर्णपिंजर खाली पडे थे। उनमें बैठकर चहकनेवाले पक्षी और शुक उड़ा दिये गये थे। नृत्य करनेवाले मयूर भी अब दिखाई नहीं देते थे। राग-रंग और गायन-वादन के स्थान पर सर्वत्र मौन और शान्ति थी। परन्तु यह मौन शुष्क और उदास नहीं एक नूतन गम्भीरता से भरा-पूरा था। इस मौन में भी नये युग के प्राणों का स्पन्दन सुनाई पड़ रहा था।

भी पहुँचाती हैं। यह इसी बात का संकेत है कि युग बदल चुका है। हम अभी तक पशु-पक्षियों को अभय प्रदान करने में मनुष्यों को ही भूल गये थे परन्तु अब युग बदल गया है। राजनीति भी बदल गई है। शासन की प्रणाली भी बदली है। अब शासन-कार्यों में धर्म और धार्मिकता का प्रवेश और हस्तक्षेप निषिद्ध कर दिया गया है। अब शासन अपने शुद्ध रूप में केवल शासन ही है। प्रजारंजन और प्रजा का रक्षण ही शासन का धर्म, शासन का न्याय और नीति है। अब शासक का व्यक्तिगत धर्म शासन पर आच्छादित नहीं हो सकता। अब मगध की यही घोषित राजनीति है। अश्वमेध-यज्ञ इसी नीति का प्रतीक है। और अश्वमेध-यज्ञ यह भी जानने के लिए किया जा रहा है कि मगध के कितने प्रदेशपति मगध के गौरव को स्वीकार करते हैं। आप हमारी ओर से कलिंगराज से जाकर कहें कि अश्वमेध-यज्ञ सम्पन्न होते ही हम उनकी अभिलाषा को सम्मानित करेंगे। तब तक उनकी यह बात हमारे हृदय में आदर के साथ प्रतिष्ठित रहेगी।'

हस्तिसिंह सोच-विचार में पड़ गया। पुष्यमित्र का प्रत्युत्तर दो अर्थोंवाला था। सम्मानित करने का अर्थ शस्त्र से सम्मानित करना भी हो सकता था। वह क्या समझे ? उसने कहा—परन्तु मुझे तो कलिंगराज ने स्पष्ट आज्ञा दी है कि नीलम प्रतिमा को लेकर ही लौटूँ।

'कलिंगराज की आज्ञा है, पर नीलम प्रतिमा मगधराज की है और इसलिए उसे मगधराज़ ही दे सकते हैं। कलिंगराज का गौरव भी इसी में है कि वह मगधराज के द्वारा ही लौटाई जाये।'

'तो क्या आप....'

'नहीं, मैं मगधराज नहीं, केवल मगध का सेनापति हूँ। मैंने मगध की रक्षा करने का भार स्वेच्छा से स्वीकार किया है। मगध देश को उसके पुरातन गौरव पर पुनः प्रतिष्ठित करने का मैंने प्रण किया है। मगधपति तो तब होगा जब पहले-जैसा मगधराज तो स्थापित हो जाये। राज्य के बिना राजा कैसा और राजा के गौरव के बिना राज्य कैसा ? हम अभी मगध के गौरव को पुनः-जीवित करने में लगे हैं। अपने इस अनुष्ठान में हम कलिंगराज से सहायता की अपेक्षा रखते हैं। मगध जीवित रहा तो भारतवर्ष भी जीवित रह सकेगा,

अन्यथा नहीं। हम यूनानी, शक, हूण आदि यवन आक्रमणकारियों को भारत से निष्कासित करने में लगे हैं। हम तो भारत के द्वारपाल हैं, प्रहरी हैं। इस समय आपको हमारी सहायता करनी चाहिए। हम आपसे यही याचना करते हैं। यदि हम ही लड़ने लगे तो विदेशियों की बन आयेगी और हम नष्ट हो जायेंगे।'

'मैंने निवेदन किया तो है कि नीलम प्रतिमा हमारी मैत्री को दृढ़ करेगी।'

'उसका प्रत्युत्तर तो मैंने आपको दे ही दिया है। प्रश्न समय का है। समय देना या न देना यह आपके निर्णय करने की बात है। कलिंगराज से आप हमारा यह सन्देश कह दें।'

'लेकिन प्रतिमा तो अभी ही मिलनी चाहिए।'

'इसमें न हमारा गौरव है, न आपका; और न प्रतिमा का ही।'

'कलिंगराज के सन्देश के अन्तिम शब्द तो मैंने अभी आपसे कहे ही नहीं।'

'तो अब कह दीजिए। सामर्थ्यपूर्ण शब्द कभी भी क्यों न कहे जायें उनकी समर्थता बनी ही रहती है। बताइए क्या हैं उनके अन्तिम शब्द?'

'जिसके गजराज भगवती भागीरथी और कावेरी में स्नान करते हैं वह अमर हो जाता है....'

इन शब्दों का अभिप्राय समझ में आते ही पुष्यमित्र किंचित् उत्तेजित हो उठा। आवेश में आकर वह प्रत्युत्तर देने जा ही रहा था कि भगवान् पतंजलि ने हाथ उठाकर उसे रोक दिया। पुष्यमित्र शान्त हो गया। अब भगवान् पतंजलि ने स्वयं प्रत्युत्तर दिया:

'सेनापति, यह तो तुम मगध के महान् भविष्य की रूपरेखा अकस्मात् ही कह गये। हम जिस अश्वमेध-यज्ञ को कर रहे हैं वह निश्चय ही पाटलिपुत्र की गजसेना के गजराजों को दोनो सरिताओं के जल में स्नान करने का अवसर प्रदान करेगा। मैं इस भविष्य को अपने नेत्रों के सम्मुख सूर्य के प्रकाश की भाँति स्पष्ट देख रहा हूँ।'

यह सुन कुछ विस्मित और कुछ उत्तेजित होकर हस्तिसिंह ने कहा—लेकिन कब?

'जब मैं न रहूँगा, तुम भी न रहोगे, तब । बीज एक ही दिन में वृक्ष नहीं हो जाता, सेनापति !'

सहसा नीचे से एक सुन्दर स्वरूपवान राजकुमार दौड़ता हुआ ऊपर आया। वह नख-शिख शस्त्रास्त्रों से सज्जित, देवकुमार की भाँति शोभा पा रहा था। उसके नेत्रों में अद्भुत आलोक था। उसका रोम-रोम उत्साह और उल्लास से थिरक रहा था। हस्तिसिंह उसकी तेजस्विता को देखता ही रह गया।

'दादाजी, चलिए, शीघ्र नीचे चलिए।' उसने उत्तेजित स्वर में कहा, 'अश्वराज आ गया है।'

'आ गया है ? तो अन्ततः हमें सफलता मिल ही गई ?'

सब उठ खड़े हुए और अश्वराज को देखने के लिए नीचे गये।

हस्तिसिंह ने नीचे राजप्रासाद के विशाल प्रांगण में सैकड़ों रथ खड़े देखे। प्रत्येक रथ पर एक-एक योद्धा बैठा हुआ था। सभी योद्धा एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर थे। उनके चेहरों पर विशुद्ध क्षत्रिय तेज दिखाई देता था। हस्तिसिंह को आश्चर्य हुआ। मगध की तो सारी हवा ही बदल गई थी। कितना शीघ्र परिवर्तन हुआ था। युद्ध से कतरानेवाला, शत्रुओं के सामने झुकनेवाला और केवल नाम-मात्र का मगधराज बनकर सन्तोष कर लेनेवाला मगध का राजा अब भूतकाल की बात हो गया था।

उस प्रांगण में हस्तिसिंह ने रथारोहियों की ही भाँति अश्वारोहियों को भी देखा। एक ओर गजसेना के मत्त मातंगों की पंक्ति सूँड ऊँची किये अभिवादन करती हुई खड़ी थी। चारों ओर सैनिक अनुशासन, व्यवस्था और अवसर के उपयुक्त गम्भीर शान्ति थी। हस्तिसिंह को विश्वास हो गया कि बिना युद्ध के यहाँ से नीलम प्रतिभा प्राप्त होने की नहीं। उसे चारों ओर शस्त्रास्त्रों की खनखनाहट सुनाई दे रही थी।

फिर उसने सबसे परे हटकर खड़े हुए अश्वराज को देखा। ऐसा सुन्दर अश्व उसने इससे पहले कभी नहीं देखा था। वह स्वयं अश्व-विद्या में पारंगत था। अपने जीवन में उसने सैकड़ों नहीं हजारों अश्व देखे और उनकी परीक्षा भी ली थी। परन्तु ऐसा सुन्दर अश्व उसने कहीं नहीं देखा था।

उस अश्व का सारा शरीर बादलों के रंग-जैसा मेघवर्ण था। कहीं एक

रेखा भी किसी दूसरे रंग की नहीं थी। उसकी रोमावली में मानो बिजली भरी थी। उसकी मोती-जैसी आबदार आँखों मे अद्‌भुत तेजस्विता थी। ऊँच, सशक्त, सुन्दर और सुडौल उस अश्व को देखकर हस्तिसिंह को यही लगा कि यह एक ऐसा अश्व है जो महाराज्यों के भविष्य को बना और बिगाड़ भी सकता है।

अब मुनि पतंजलि उस अश्व के पास आये। उन्होंने उसके चारों ओर घूम-फिरकर तीक्ष्ण दृष्टि से उसके एक-एक अवयव को परखा। उसकी आँखें देखीं। फिर उन्होंने कहा—महाबलाधिकृत पुष्यमित्र, अश्वमेध-यज्ञ का ही यह अश्व है। अब हमें शीघ्रता करनी चाहिए। कल ही मुहूर्त है। आज यज्ञवेदी की रचना करो। तुम सवेरे दीक्षा लेकर यज्ञ में बैठ जाओ। फिर अश्व को पृथ्वी-पर्यटन के लिए छोड़ दो। परन्तु इस अश्व की रक्षा कौन करेगा? अग्निमित्र कहाँ है?

पतंजलि के इस प्रश्न ने सभी को व्यथित कर दिया। अग्निमित्र ने रोष से भरा हुआ सन्देश भेजा था कि सुमित्र को तुमने मार डाला है। अब मुझे भी मरा हुआ ही समझ लेना। इसी लिए मैंने विदर्भराज को आधा राज्य देकर उससे सन्धि कर ली है और अपना मित्र बना लिया है। जरासन्ध जिस भूमि में हुआ वहाँ पौत्र-वध के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है! मैं अब उस भूमि में कभी पाँव नहीं रखूँगा। मगध का राज्य मुझे नहीं चाहिए। यहाँ से कोई तुम्हारे अश्वमेध-यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए नहीं आयेगा।

पुष्यमित्र को इस समय अग्निमित्र का यह रोष-भरा सन्देश याद हो आया और वह उद्विग्न हो उठा। उसने वसुमित्र की ओर देखते हुए कहा—भगवन्, इस समय मेरे पास इस कोमल कुमार के अतिरिक्त और कोई नहीं है। मुझी को इस वृद्धावस्था में सारा भार उठाना है। स्वयं ही जितना हो सके करना होगा। सुमित्र मारा ही गया। इसे हम भेज रहे हैं। अब तो लाज भगवान् के ही हाथ है।....परन्तु भगवन्, मेरा दिल खट्टा हो गया है। राज-काज की उग्रता को देखता हूँ तो जी करता है कि भिक्खु हो जाऊँ।

'पुष्यमित्र, आर्यों का आदर्श तो शत शरद तक जीवित रहना है। और

जब तक जीवित रहें पराक्रम करते रहना ही आर्यत्व है। फल मिले न मिले, परन्तु पराक्रम करते रहना, प्रयत्नों से कभी विमुख न होना, यही आर्यत्व है। समस्त प्रजाजन वैभवपूर्ण हों, यह आर्यत्व है। तुमने आर्यत्व को पुनर्जीवित करने का व्रत लिया है। अब निराश हुए तो वह अनार्यता होगी। वसुमित्र नन्हा अवश्य है, परन्तु है तो सिंह-शावक ही। वह सिंह-जैसे पराक्रम करेगा। उसी का अभिषेक करो। उसी को महाबलाधिकृत-पद पर प्रतिष्ठित करो।'

और अनेक सरिताओं का पावन जल स्वर्ण-कलश में लिये ब्राह्मणों का दल आगे बढ़ आया। वेदमन्त्र ध्वनित होने लगे।

अनेक वर्षों के पश्चात् आज मगध के आँगन में रणध्वज आरोपित हो रहा था।

३५ : राजधर्म की पराकाष्ठा

दूसरे ही दिन से अश्वमेध-यज्ञ की तैयारी जोर-शोर से आरम्भ हो गई। पुष्यमित्र मन-प्राण से यज्ञ के कार्यों में संलग्न हो गया। यज्ञ के लिए विविध प्रकार की सामग्री आने लगी। पुष्यमित्र स्वयं उस सामग्री को देखने-रखवाने लगा। उसका प्रत्युत्तर लेकर कलिंग का सेनापति हस्तिसिंह लौट गया था। पुष्यमित्र जानता था कि स्वर्ण शिविका को खाली आया देख कलिंगराज खारवेल पर भयंकर प्रतिक्रिया होगी और उसका परिणाम मगध के लिए अनिष्टकर होगा। परन्तु अभी तो वह समय चाहता था। और इस तरह उसने समय पा भी लिया था। फिर वह यह भी जानता था कि जब तक शातकर्णी प्रतिष्ठानपुर में बैठा है कलिंग मगध की ओर बढ़ने का साहस नहीं कर सकता। वह मन-प्राण से अपने कार्य में लगा था, परन्तु फिर भी अन्दर-ही-अन्दर, मन की गहराई में, एक तीव्र वेदना उसे कुरेदती रहती थी। जैसा कि उसने भगवान् पतंजलि से कहा था, कभी-कभी उसके मन में आता था कि सब छोड़-छाड़कर भिक्खु हो जाये।

अग्निमित्र का वह सन्देश शूल की भाँति अहर्निश उसके हृदय में खटकता रहता था। सुमित्र के मारे जाने की बात उसे भुलाये न भूलती थी। वह सुन्दर-सुशोभन किशोर छोटे से बड़ा उसी के पास हुआ था। पथ-भ्रष्ट

अवश्य हो गया था, परन्तु उसकी देह मे एक सुन्दर आत्मा का निवास था। आगे चलकर वह अवश्य ही प्रसिद्धि प्राप्त करता। हो सकता है कि एक अनुपम नर्तक के रूप में ख्याति प्राप्त करता, अप्रतिम अभिनेता होता या कवि ही बन जाता। यह बात रह-रहकर पुष्यमित्र को सालती रहती थी। फिर यह बात भी उसे नहीं भूलती थी कि उसने मगधपति के साथ विश्वासघात किया। मगधपति का शाप मूर्तिमन्त बना प्रतिक्षण उसके सामने खड़ा दिखाई देता था। उसे निरन्तर ऐसा आभास होता रहता था मानो वह अकेला रण में किसी अदृष्ट हाथ से मारा जा रहा हो। अग्निमित्र का विमुख होना तो उसके लिए और भी असहनीय हो उठा था।

रानी धारिणीदेवी तो अपने पुत्र के हत्यारे को चाण्डाल ही समझती थी। मगध की ओर वह आँख उठाकर देखना भी नहीं चाहती थी। सुमित्र से सूने पाटलिपुत्र में तो वह कभी पाँव भी नहीं रखेगी। और यह पुष्यमित्र के भाग्य की विडम्बना ही तो थी कि वह स्वजनों-परिजनों से विहीन, तिरस्कृत एवं उपेक्षित अकेला इतना महान् उत्सव आयोजित कर बैठा था। बचाने चला था मगध के महाराज्य को, परन्तु ऐसी अग्नि प्रज्वलित हुई कि सारा घर ही जल उठा और कोई उसके समीप नहीं रह गया। वह स्वयं मगध के सिंहासन पर बैठना नहीं चाहता था। जिसे सिंहासनासीन किया जा सकता था वह युवराज सुमित्र पहले ही चल बसा था। अग्निमित्र को जरासन्ध की भूमि भयंकर लगती थी। वह इस बर्बर-भूमि पर अपना पाँव भी नहीं रखना चाहता था। अवन्ती में ही उसके लिए संस्कृति का दीप आलोकित था। वहाँ नृत्य, संगीत, साहित्य, शिल्प सभी कुछ था। यहाँ क्या था? केवल काषाय वस्त्र! और एक कोमलमति किशोरवय का तरुण वसुमित्र, दूसरा जर्जर वृद्ध पुष्यमित्र! अग्निमित्र यहाँ आकर क्या करता?

पुष्यमित्र जानता था कि वसुमित्र में अपार शक्ति, अत्यधिक उल्लास और महान् पराक्रमों की सामर्थ्य है, परन्तु फिर भी वह अनुभवहीन बालक ही तो था। और विधि की लीला देखिए कि वही इस समय मगध के महा-बलाधिकृत-पद पर प्रतिष्ठित किया गया था।

लेकिन वास्तव में तो अश्वमेध-यज्ञ शान्ति के लिए ही किया जा रहा

था। उसके रक्षक योद्धाओं को कड़ी ताकीद कर दी गई थी कि वे स्वयं होकर किसी से युद्ध न करें, कोई आक्रमण कर भी दे तो उसे शान्तिपूर्वक समझा-बुझाकर काम निकालें। भारत में पहले जो दो अश्वमेध-यज्ञ हुए थे—एक महाराज रामचन्द्र का और दूसरा महाराज युधिष्ठिर का—उनमें भी इसी नीति का अवलम्बन किया गया था। उन यज्ञों में चक्रवर्ती के विजय-गर्व की ध्वनि नहीं थी, विदेशी आक्रमणकारियों के निष्कासन, प्रजा के संरक्षण और लोक-समस्त को निर्भय करने के पुनीत ध्येय से ही वे यज्ञ किये गये थे। आज पुष्यमित्र भी वर्षों बाद—महाभारत के युद्ध के पश्चात् पहली ही बार पाटलि-पुत्र में इस तरह का यज्ञ कर रहा था।

यज्ञ वह कर रहा था, होता बनकर बैठा भी था, परन्तु मन में उसके जरा भी शान्ति नहीं थी। एक दुधमुँहे बच्चे को अश्वमेध-यज्ञ के अश्व की रक्षा करने की बात उसे निरन्तर कष्ट देती रहती थी। पता नहीं कब क्या हो जाये, भरतखण्ड के किसी कोने से मगध को चुनौती देनेवाला कोई निकल आये तो पुष्यमित्र अग्निमित्र को क्या मुँह दिखायेगा। यदि अग्निमित्र भी अश्व के साथ होता तो पुष्यमित्र को कोई चिन्ता न रहती। परन्तु सेनापति का धर्म बड़ी कड़वी घूँट होती है और उसे अकेले और चुपचाप ही पीना पड़ता है।

कड़वी घूँट वह पी तो लेगा, परन्तु पितामह के हृदय को क्या करे? हृदय किसी तरह मानता नहीं था। कहीं कठोर संग्राम हो गया और उसमें वसुमित्र मारा गया तो....इस विचार-मात्र से उसकी आँखों से चौधार आँसू बहने लगे। ब्राह्मण सेनापति अन्त समय में द्रवित हो ही गया। पौत्र का वियोग वह सह न सकेगा। उसे महाभारत का युद्ध याद हो आया। गुरु द्रोणाचार्य ने भी यह सुनकर कि 'अश्वत्थामा हत इति' हथियार छोड़ दिये थे और आँखें मूँद-कर, सिर झुकाकर रणक्षेत्र में निःस्पन्द बैठे रह गये थे। पुष्यमित्र भी उन्हीं की भाँति आँखें मूँदकर यज्ञ की वेदी पर बैठा रह गया और पौत्र का सम्भवित. वियोग उसके नेत्रों से सावन-भादों की वर्षा करने लगा।

गुरु पतंजलि ने यह देखा और वह शीघ्रतापूर्वक यज्ञवेदी छोड़कर पुष्य-मित्र के पास आ गये। हाथ में लिया हुआ स्वर्ण स्फय (सोने की तलवार) उन्होंने एक ओर रख दिया। स्वर्ण कूर्च को भी वहीं रख दिया और पुष्य-

मित्र को उद्बोधित करते हुए बोले—यह क्या कर रहे हो महाबलाधिकृत ? तुम्हें हो क्या गया है ? दो घटिका के पश्चात् तो हमें कुमार वसुमित्र को बिदा करने की मंगलविधि को सम्पन्न करना है। ऐसे समय में तुम्हारे नेत्रों से ये अमागलिक आँसू कैसे ? इस भाँति तो हमारा परिहास ही होगा। सर्वत्र निरुत्साह व्याप्त हो जायेगा। अकेला युद्ध करनेवाला वीर नहीं होता। धैर्यशाली पुरुष ही सच्चा वीर है। यह तो सोचो कि हमने कितना महान कार्य सम्पन्न करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया है। युग-परिवर्तनकारी कार्य है यह। तुम्हारी जरा-सी दुर्बलता सारी सेना के उत्साह पर पानी फेर देगी। निरुत्साही तो आधा पराजित होता ही है। वह क्या लड़ेगा और क्या रक्षा करेगा? अभी तो तुम्हें सभी की हिम्मत बँधाना है, उत्साहित करना है।

'परन्तु भगवन्, यह भी तो सोचिए कि हम एक दुधमुँहे बालक को, जिसके माता-पिता भी यहाँ नहीं, इतने बड़े उत्तरदायित्व का कार्य देकर संकटों के मुँह में भेज रहे हैं। कहीं स्वार्थ ने हमें अन्धा तो नहीं कर दिया ? इससे तो अच्छा है कि मैं ही चला जाऊँ और वसुमित्र यहीं रहे। पता नहीं कल को क्या हो जाये !'

'पुष्यमित्र, अब यह नहीं हो सकता। जाना तो वसुमित्र को ही होगा। वह युद्ध की सभी कलाओं में निष्णात है। उसी को जाने दो !'

'परन्तु भगवन्, मैं उसके कपाल पर मंगल-तिलक किस भाँति कर पाऊँगा ? हाय, अपने इन बूढ़े हाथों से मुझी को अपने किशोर पौत्र के भाल पर विजय-तिलक लगाना होगा ! कैसा समय है और कैसा यह धर्म है ? आज उसकी जन्म देनेवाली, माता भी यहाँ नहीं। धिक्कार है मुझ कुटुम्बद्रोही को। किस मुँह से मैं देशरक्षक का पद धारण कर सकता हूँ ? जो स्वजनों की ही रक्षा नहीं कर सकता, वह देश की रक्षा क्या कर सकेगा ?'

'पुष्यमित्र, आत्मा को हीन माननेवाला अनार्य है। हम तो नवयुग के सन्देशवाहक हैं, निर्माता हैं। वेदना हमीं को सहनी होगी और हम सहेंगे। स्वजनों की अपेक्षा देशजन ही हमारे अधिक निकट हो सकते हैं। अश्वमेध-यज्ञ हमीं को करना है। और वसुमित्र को ही यज्ञ के अश्व की रक्षा करनी है। युद्ध तो होंगे ही। कठिन और कठोर युद्ध भी अवश्य होंगे। यवन भी

इस अश्व की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। वे अवश्य ही इसमें विघ्न डालेंगे, पर विजय भी हमारी ही होगी। अब किसी को निरुत्साहित होने का, उद्विग्न होने का, निराशा प्रदर्शित करने का, द्विधा मे रहने का अधिकार नहीं—तुमको तो कदापि नहीं। अन्तिम विजय हमारी होगी और निश्चयेन होगी।'

भगवान् पतंजलि के इन शब्दों को सुनकर पुष्यमित्र के हृदय में पुनः उत्साह का संचार हुआ, परन्तु फिर भी उसने शोकाकुल वाणी में कहा—देव, यदि इसकी माता आ जाती और प्रयाण-वेला में अपने हाथों इसके भाल पर कुंकुम का टीका लगाकर अक्षत चढ़ा देती तो....मेरे इन बूढ़े हाथों में अक्षत-कुंकुम शोभा नहीं देता....मेरा यह हाथ....

परन्तु पुष्यमित्र की यह बात अधूरी ही रह गई। उसी समय दूर से एक अश्वारोही क्षिप्रवेग से वहाँ आता दिखाई दिया। निकट आने पर लोगों ने देखा कि अश्वारोही पुरुष नहीं नारी थी। वह बड़ी तेजी से दौड़ी चली आ रही थी। लोग आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे कि यह नारी कौन है। इतने में तो वह बिलकुल समीप आ गई। पुष्यमित्र के बिलकुल समीप ही उसने अश्व को रोका और शीघ्रता मे नीचे कूद पड़ी। वह नख-शिख आयुधों से सजी हुई थी। एकबारगी तो लोग उसे पहचान ही नहीं पाये। तभी उसने तीखे स्वर में कहा—मैं विदर्भ से आ रही हूँ। अपने पुत्र को लेने आई हूँ। जिसने मेरे एक पुत्र को मार डाला वह अपनी कीर्ति के लिए मेरे दूसरे पुत्र को मृत्यु के मुख में ढकेल रहा है, यह सुनते ही मैं विदर्भ से दौड़ी आई हूँ। कहाँ है मेरा पुत्र? उसे रण में भेजने का अधिकार मेरे अतिरिक्त किसी को भी नहीं। उसके दादा को भी नहीं। कहाँ हैं विद्वान ब्राह्मण देवता पतंजलि? राजाओं की कीर्ति-पताका को फहराने के लिए क्या वह ऐसे दुधमुँहे बालकों की बलि चढ़ा देंगे? मैं पूछती हूँ, कहाँ हैं महामुनि पतंजलि? कहाँ हैं अश्वमेध-यज्ञ के रचयिता महाबलाधिकृत पुष्यमित्र?

अब लोगों ने उस नारी को पहचाना। वह वसुमित्र की माता महारानी धारिणीदेवी थी। शस्त्रास्त्रों से सजी रहने के कारण लोग-बाग उसे सहसा पहचान नहीं पाये थे।

महामुनि पतंजलि ने उसके शब्दों को सुना तो उन्हें आशंका होने लगी

कि कहीं सारा किया-कराया मिट्टी मे न मिल जाये। इसलिए वे उसके सामने आ खड़े हुए और प्रेम-भरे शब्दों मे उन्होंने शान्तिपूर्वक कहा—ओहो, वेटी धारिणी, यह तुम हो ? मैं तो तुम्हे सहसा पहचान ही न सका। धन्य है तुम्हारा साहस ! क्या इतनी दूर अकेली ही आई हो ? साथ में कोई सैनिक नहीं ?

'नहीं, कोई सैनिक नहीं। मैं अकेली आई हूँ। अपने पुत्र को लेने के लिए आई हूँ। कहाँ है मेरा वसुमित्र ?'

'क्या अग्निमित्र भी आया है ?'

'नहीं। आये नहीं और आयेंगे भी नहीं। मैं अकेली ही आई हूँ। पुत्र मेरा है। पुत्र की वेदना को माता का हृदय ही समझ सकता है। और कौन समझेगा ? कहाँ है वसुमित्र ?'

ठीक उसी समय, एक सर्वांग श्वेत उत्तुंग अश्व पर देवकुमार की भाँति शोभायमान वसुमित्र वहाँ आता दिखाई दिया। धारिणीदेवी एक क्षण मुग्ध होकर उसकी ओर देखती रही। ओह, कितना स्वरूपवान था उसका बेटा ! लेकिन दूसरे ही क्षण इसी विचार ने उसे विह्वल कर दिया और वह धाड़ मारकर रो उठी।

महामुनि पतंजलि ने यह दृश्य देखा तो चिन्तित हो उठे। वह डरे कि रोने-धोने मे कहीं मुहूर्त ही न टल जाये। वह जानते थे कि जरा-सी दुर्बलता लोगों को निरुत्साहित कर देगी और बड़े-बड़े योद्धा भी हतोत्साह हो उठेंगे। यदि ऐसा हुआ तो जगहँसाई होगी। वह धारिणी के और भी समीप खिसक आये और स्नेह-पगे शान्त स्वर मे कहने लगे—बेटी धारिणी, भारतवर्ष में यह तीसरा अश्वमेध-यज्ञ हो रहा है। पहला यज्ञ भगवान् रामचन्द्र ने किया था और उसमें वीर लक्ष्मण ने अश्व की रक्षा की थी। दूसरा अश्वमेध यज्ञ महाराज युधिष्ठिर ने किया था और उसमें वीर अर्जुन अश्व के रक्षक थे। तीसरा अश्वमेध कई वर्षों के पश्चात् आज महाबलाधिकृत पुष्यमित्र कर रहे हैं। बड़े भाग्य से यह अवसर आया है। वसुमित्र को इस यज्ञ के अश्व की रक्षा करने का सौभाग्य मिल रहा है। यह सामान्य गौरव की बात नहीं। तुमने क्षात्र-धर्म का वरण किया है। अब यदि अन्तिम घड़ी में विह्वलता दिखाई तो यावच्चन्द्रदिवाकरौ तुम्हारे नाम पर कलंक की कालिमा पुती रहेगी। इस तरह तो तुम देश

को भयंकर बवण्डर में फँसा दोगी। हम मगध की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि वह विफल हो गई तो सारा देश विदेशी आक्रमणकारियों के पंजे में चला जायेगा।

'मैंने एक पुत्र को खोया, अब दूसरे पुत्र को खोना नहीं चाहती।'

'यह तुम नहीं, तुम्हारा मातृत्व बोल रहा है। परन्तु भूलो मत कि तुम केवल माता नहीं, केवल रानी नहीं, केवल राजमाता नहीं, मगध देश के एक महान् रक्षक की पुत्रवधू भी हो। वह रक्षक तुमसे मगध की रक्षा के लिए तुम्हारा पुत्र माँगता है। तुम उसे मना नहीं कर सकती। तुम्हारे परिवार ने ब्राह्मण होते हुए भी क्षात्रधर्म को स्वीकार किया है। क्षत्रिय बनकर उस परिवार ने सारी प्रजा की रक्षा करने का देश को आश्वासन दिया है। आज तुम और हम उस आश्वासन से विमुख नहीं हो सकते। तुम समस्त मगध देश के रक्षक हो। रक्षा के विश्वास को यदि आज अन्यथा किया तो तुमसे बड़ा कायर और भीरु कोई नहीं होगा। मत भूलो कि कायर और भीरु अनार्य होता है, उसका जीवन व्यर्थ होता है, वह देह से मनुष्य होते हुए भी मनुष्य नहीं होता। धारिणीदेवी, तुम मगध के रक्षक पुष्यमित्र के आदेश का उल्लघंन नहीं कर सकती।'

'परन्तु देव, मैं माता हूँ। मुझे राज्य नहीं चाहिए, अपना पुत्र चाहिए। मैं अपने वसु को राजा नहीं बनाना चाहती।'

'प्रश्न राजा बनाने का नहीं, राजधर्म के पालन का है। क्या रामचन्द्र का उदाहरण भूल गई? सीता का परित्याग करने के बदले क्या वह राज्य का परित्याग नहीं कर सकते थे? आज तुम भी राजधर्म को छोड़ नहीं सकती, भिक्खु बन नहीं सकती। इस संसार को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए ही नया विचार, एक नयी परम्परा प्रारम्भ हो रही है। तुम उससे विमुख नहीं हो सकती। बेटी धारिणी, राजधर्म का तुम परित्याग नहीं कर सकती।'

धारिणीदेवी बड़ी देर तक टक लगाये देखती रही। कोई क्रूरतम पुरुष ही ऐसे सुन्दर सुशोभन किशोर को युद्ध में भेजने की बात सोच सकता था। वह विदर्भ से उसे युद्ध में जाने से रोकने के लिए ही तो दौड़ी चली आई थी। परन्तु यहाँ आकर उसने एक नयी ही बात देखी। अब क्या करे? वह सोच-विचार में पड़ गई।

उसे सोच-विचार में पड़े देख भगवान् पंतजलि ने उसके माथे पर प्रेम-पूर्वक हाथ फेरते हुए कहा—बेटी, सच है कि वह तेरा पुत्र है। परन्तु मेरा तो वह जीवन-सर्वस्व है—मेरे स्वप्नों को सार्थक करनेवाला। यदि उसका एक बाल भी बाँका हुआ तो मेरे सारे स्वप्न, सारे आदर्श निष्फल हो जायेंगे। सैकड़ों वर्षों के पश्चात् आज हम युग को करवट बदलते देख रहे हैं। नये युग के सन्देश स्फुरित होते दिखाई दे रहे हैं। यदि इस अवसर को यों ही बीत जाने दिया तो पता नहीं इतिहास का रथ फिर कब लौट कर आये। कदाचित् न भी आये। और हमने अवसर गँवा दिया तो यह महान् भारत देश छिन्न-भिन्न हो जायेगा। इसकी संस्कृति नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगी। यह देश ही नहीं, सारा विश्व अकिंचन और दरिद्र हो जायेगा। विधाता ने तेरी कोख से जिस पुत्र को जन्म दिया है वह युग का निर्माता है। तू उसकी माता है, यह तेरा अहोभाग्य है। महान् भविष्य और इतिहास के देवता तेरी आरती उतारने के लिए खड़े हैं। ऐसा अवसर बार-बार नहीं आया करता धारिणी। सोच ले,' तू क्या चाहती है....

धारिणीदेवी आगे बढ़ी और उसने कुंकुम-अक्षत का थाल अपने हाथ में ले लिया। फिर उसने रोली का मंगल-तिलक वसुमित्र के प्रशस्त भाल पर अंकित कर दिया। उसके तिलक लगाते ही चारों ओर से गगनभेदी नाद उठा और गूँजता चला गया :

'सेनापति पुष्यमित्र की जय हो! राजकुमार वसुमित्र की जय हो!'

भगवान् पतंजलि ने अपना हाथ उठाकर वसुमित्र को आशीर्वाद देते हुए कहा—मगधेश्वरों के महान् भविष्य की गौरव गाथा तेरे हाथों निर्मित हो। तू कह सके

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरीस्वैरिणी कुतः॥

देश के वायुमण्डल में आज से ये विचार और शब्द प्रतिध्वनित हों"

वसुमित्र का अश्व आगे बढ़ा। रण शंख बजने लगे।